Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
ISSN-2582-5976

94251-01132

Supported by:
Kisaan Helpline
+91-7415538151

गौरवपूर्ण प्रकाशन-द्वितीय दशक की ओर अग्रसर

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

वर्ष-21 अंक-3 | ग्वालियर, जून -2026 | मूल्य 30 रुपए

काजू से मिल रहे अनेक आर्थिक लाभ

काजू का उपयोग मिठाई, नमकीन और ड्राई फ्रूट के रूप में बड़े पैमाने पर किया जाता है। इसके साथ ही काजू के छिलकों से औद्योगिक तेल भी तैयार किया जाता है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय का अवसर मिलता है। काजू के व्यापार और निर्यात से किसानों की आर्थिक स्थिति लगातार मजबूत हो रही है।

जशपुर का काजू बना किसानों की समृद्धि की नई पहचान

छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्रीविष्णु देव साय के नेतृत्व में जशपुर जिला खेती और बागवानी के क्षेत्र में लगातार नई ऊंचाइयों को छू रहा है। पारंपरिक खेती के साथ अब किसान नगदी एवं फल फसलों की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। सेब, नाशपाती, स्ट्रॉबेरी और काजू जैसी फसलें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई मजबूती दे रही हैं। इनमें काजू उत्पादन किसानों के लिए आय का मजबूत और भरोसेमंद साधन बनकर उभरा है।

धान की खेती के विकल्प के रूप में औषधीय पौधों की खेती अपनाने किसान प्रेरित

छत्तीसगढ़ आदिवासी, स्थानीय स्वास्थ्य परंपरा एवं औषधि पादप बोर्ड द्वारा राज्य वन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, रायपुर के परिसर में आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला का सफलतापूर्वक समापन हुआ।

उत्कृष्ट कार्य करने वाली आशा कार्यकर्ताओं को निशुल्क इलेक्ट्रिक साइकिल भेंट

मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने उज्जैन में उत्कृष्ट कार्य करने वाली आशा कार्यकर्ता ,एएनएम और आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को निशुल्क इलेक्ट्रिक साइकिल भेंट की।

श्री गणेशाय नमः

श्री सॉवलिया सेठ

किसान कृषि सेवा केन्द्र

Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com

7692967419 9109726855

हमारी सेवाएँ:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौंप, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर,कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।

उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

An ISO 9001:2008 Certified Company

कृषि दर्शन®

खेत-खलिहान का राजा

1988

थ्रेशर 35HP हापर मॉडल

हडम्बा कटर थ्रेशर

ऑटोफीडिंग थ्रेशर

मक्का थ्रेशर

मिनी कम्बाईन थ्रेशर

रेज बेड सिड ड्रील

स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल

मोटर लिफ्टर

सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

इस समय चौतरफा महंगाई का डोज

सरकारी आंकड़ों से पता चला कि एक माह के भीतर ही थोक महंगाई दर दोगनी हो गई है। जो कि पिछले 42 महीनों के उच्चतम स्तर पर जा पहुंची है। पेट्रोल व डीजल तथा सीएनजी के दामों में वृद्धि ने आम आदमी को व्यथित कर दिया। जाहिर है पेट्रोल-डीजल के दामों में वृद्धि से न केवल यातायात महंगा हो जाता है बल्कि मालभाड़ा बढ़ने से हर चीज के दामों में उछाल आ जाता है। वहीं रोजमर्रा का सामान बनाने वाली कंपनियां दुहाई दे रही हैं कि पेट्रोलियम पदार्थों के दामों में वृद्धि से उनकी उत्पादन लागत में दस से बीस फीसदी की वृद्धि हुई है। फलतः इन कंपनियों ने छूट व प्रचार खर्च में कटौती करके भंडारण क्षमता व आपूर्ति श्रृंखला को मजबूत करना प्राथमिक लक्ष्य बनाया है। अतः देश की एफएमसीजी रोजमर्रा के सामान की लागत बढ़ने व मुनाफे पर बढ़ते दबाव को कम करने के लिये चरणबद्ध तरीके से वस्तुओं के दाम बढ़ाने की तैयारी कर रही हैं। यह भी हकीकत है कि पिछली तिमाही में ये एफएमसीजी पहले ही तीन से पांच प्रतिशत की वृद्धि वस्तुओं की कीमतों में कर चुकी हैं। फलतः आम उपभोक्ता को अभी और महंगाई को झेलने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह भी एक हकीकत है कि रुपये के गिरते मूल्य ने भी कीमतें बढ़ाने का दबाव बनाया है। कंपनियां अपना मुनाफा बनाये रखने के लिये कीमतें बढ़ाने और पैकेटबंद उत्पादों की मात्रा घटाने की रणनीति पर काम कर रही हैं। आशंका जतायी जा रही है कि पेट्रोल व डीजल के दामों में तीन-तीन रुपये की वृद्धि के बाद टेलीकॉम कंपनियां रिचार्ज प्लान बढ़ा सकती हैं। उनका दावा है कि मोबाइल टॉवर को चलाने में आने वाला 40 फीसदी खर्च सिर्फ पेट्रोल और बिजली पर होता है। यह खर्चा टैरिफ बढ़ाकर ग्राहकों पर डाला जा सकता है। वहीं सरकारी तेल कंपनियां कह रही हैं कि होर्मुज स्ट्रेट बाधित होने से कच्चे तेल की कीमतों में भारी वृद्धि के बाद उन्होंने मामूली वृद्धि पेट्रोल व डीजल के दामों में की है।

रूस से मिलने वाला सस्ता कच्चा तेल हमें अस्थायी राहत ही प्रदान करता है। लेकिन यह मार्ग भी प्रतिबंधों, शिपिंग रुकावटों और कूटनीतिक दबावों के प्रति संवेदनशील बना हुआ है। यह संकट भारत को दीर्घकालीन ऊर्जा रणनीति बनाने के लिये बाध्य करता है। हमारी प्राथमिकता सार्वजनिक परिवहन विस्तार, इलेक्ट्रिक वाहनों का प्रयोग व नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग बढ़ाने की होनी चाहिए।

निश्चित रूप से पश्चिम एशिया संकट के चलते उपजे हालात ने बताया है कि भारत को ऊर्जा सुरक्षा नीति पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। प्रधानमंत्री द्वारा ईंधन की खपत को कम करने के आह्वान के कुछ दिन बाद ही पेट्रोल, डीजल व सीएनजी के दामों में बढ़ोतरी की गई है। यह बढ़ोतरी चार साल से अधिक समय में पहली बार की गई है।

'नाशपाती की खेती से बदल रही किसानों की तस्वीर'

रायपुर। छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले में किसानों को पारंपरिक खेती के साथ-साथ फलोत्पादन के लिए निरंतर प्रोत्साहित किया जा रहा है। प्राकृतिक रूप से अनुकूल जलवायु और शासकीय योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के कारण जिले में नाशपाती की खेती किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत बनती जा रही है। विशेष रूप से सन्ना तहसील क्षेत्र के किसान बड़े पैमाने पर नाशपाती की खेती कर बेहतर आमदनी अर्जित कर रहे हैं।

जशपुर के करडीह पंचायत के ग्राम केराकोना निवासी किसान अनिल एक्का ने बताया कि उन्होंने छत्तीसगढ़ शासन एवं नाबार्ड की योजनाओं का लाभ लेकर अपनी लगभग 4 से 5 एकड़ निजी भूमि में नाशपाती का बाग विकसित किया है। योजनाओं के अंतर्गत उन्हें खेत में कुआं और मोटर पंप जैसी सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराई गई, जिससे खेती करना आसान हुआ। श्री एक्का ने बताया कि कृषि वैज्ञानिकों द्वारा समय-समय पर खेतों का निरीक्षण कर उन्नत उत्पादन तकनीकों की जानकारी एवं आवश्यक सलाह दी जाती है। आधुनिक तकनीकों और बेहतर प्रबंधन के कारण उनके नाशपाती उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है। इससे उनकी आय में भी उल्लेखनीय बढ़ोतरी हुई है।

'दूसरे राज्यों में भी बढ़ी मांग'

जशपुर की नाशपाती अपनी गुणवत्ता और स्वाद के कारण छत्तीसगढ़ के बड़े शहरों के साथ-साथ पड़ोसी राज्यों में भी काफी पसंद की जा रही है। किसानों को स्थानीय बाजारों के अलावा बाहरी राज्यों में भी अच्छे दाम मिल रहे हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063

***

नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453

बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732

पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678

***

हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है। -संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
0751-4070802

▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750
▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 21 ▪ अंक 03 ग्वालियर, जून 2026 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय

***

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

***

डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर (म.प्र.)

***

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण), डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

***

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर

***

डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

***

डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प.)

***

तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

***

बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)

***

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542

***

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

अंदर के पन्नों पर

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

- पार्थेनियम घास की विषाक्तता 08
- भारत में फल उत्पादन की वर्तमान स्थिति और भविष्य 09
- सहजन के पत्तों की खेती 10
- सुरक्षित तरीके से कीटनाशकों का उपयोग 11
- बकरियों के सामान्य रोग कारण, लक्षण और बचाव 12
- नैनो केमिकल्स से लेकर ट्राइकोडर्मा तक: ... 13
- रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कृषि में जैविक ... 14
- खेतों की गहरी जुताई: .. 15
- नील हरित शैवाल किसानों के लिए लाभकारी जैव उर्वरक 16
- नवजात बछड़े के लिए पहले दूध कोलेस्ट्रम का महत्व 17
- केले की टिशू कल्चर खेती में 'ग्रैंड नैन (जी-9)' किस्म... 18
- ऑयस्टर मशरूम की खेती 19
- फॉस्फेटिक उर्वरकों की बचत के प्रभावी उपाय 20

उत्तर प्रदेश

- 'सूखे से अवसर की ओर: बुंदेलखंड क्षेत्र में जीरा की खेती... 21
- पशुओं के स्वास्थ्य और विकास में स्पिरुलिना का योगदान 22
- खाद्य उत्पाद : आधुनिक जीवनशैली में पोषण, स्वाद ... 23
- रोजेला: औषधीय, पोषण एवं आर्थिक महत्व की बहुउपयोगी फसल 24
- क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव का प्रबंधन एवं महत्व 25
- कृषि स्थिरता को बढ़ावा देने में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका 26
- हरसिंगार के फूल से रंग बनाने की प्रक्रिया 27
- गांठ गोभी की उन्नत खेती: उत्पादन एवं गुणवत्ता.. 28
- अजोला उत्पादन की आधुनिक तकनीक एवं उपयोगिता 29
- फील्ड पर प्रयोगात्मक फसल 30
- खेती और पशुपालन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं 31
- फफूंदी जनित रोग 32
- तिल में एकीकृत कीट प्रबंधन 33
- प्राकृतिक संसाधनों और मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण 34

राजस्थान

- वृक्षायुर्वेद आधारित मशरूम की वैज्ञानिक खेती 35
- 'बकरियों की जनन समस्याएं: रोकथाम और उपचार 36
- आधुनिक टिण्डा उत्पादन तकनीक अपनाएं,.. 37
- कीटनाशक नियम और किसानों के अधिकार :... 38
- सब्जियों की पौध तैयार करते समय ध्यान रखने ... 39
- मक्का (बेबी कॉर्न) की आधुनिक एवं उन्नत ... 40
- छोटे किसानों की समृद्धि का रास्ता: ... 41
- जैविक कीट नियंत्रण रसायन मुक्त .. 42

हरियाणा

- आधुनिक रिश्तों में बदलाव और जीवन-शैली पर प्रभाव 43
- वस्त्र हस्तशिल्प उद्योग में जूट रेशे का उपयोग 44
- वर्मी कम्पोस्ट: टिकाऊ एवं लाभकारी जैविक खेती का आधार 45

नई दिल्ली

- कृषि जैव विविधता संरक्षण का महत्व 46

बिहार

- फसल विविधीकरण: जलवायु परिवर्तन ... 47
- डेयरी गायों के शारीरिक अवस्था की स्कोरिंग 48
- औषधीय पौधों का लघु-स्तरीय प्रसंस्करण .. 49

झारखण्ड

- तराई क्षेत्र के थारू समुदाय का सामाजिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य:.. 50
- बायोचार: सतत मृदा प्रबंधन एवं उच्च पैदावार... 51

हिमाचल प्रदेश

- विदेशी सब्जियां: भारतीय बाजारों में उभरते रुझान 52
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में कृषि शिक्षा: ... 53

जम्मू कश्मीर

- अज़ोला पिन्नाटा: पानी पर तैरने वाला 'हरा सोना' 54

पंजाब

- मानसून पूर्व टीकाकरण के लिए दिशा निर्देश 55

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
समाचार

कृषि रथ गांव-गांव पहुंच कर कृषि वैज्ञानिकों के माध्यम से किसानों को दी तकनीकी जानकारी

ई-विकास प्रणाली से ई-टोकन बुक कराने एवं संतुलित उर्वरक के उपयोग की दी गई सलाह

छिंदवाड़ा। छिंदवाड़ा सांसद विवेक बंटी साहू, शेषराव यादव एवं अपर कलेक्टर धीरेन्द्र द्वारा जिले के प्रत्येक विकासखंड में प्रारंभ किए गए कृषि रथों को हरी झंडी दिखाकर कलेक्टर कार्यालय परिसर से रवाना किया गया। शासन द्वारा वर्ष 2026 को कृषक कल्याण वर्ष के रूप मे मनाये जाने के उपलक्ष्य में कृषि एवं संबंद्ध विषयों जैसे कृषि, कृषि अभियांत्रिकी, पषुपालन, उद्यानिकी, सहकारिता, मत्स्यपालन आदि पर किसानों एवं कृषि वैज्ञानिकों के मध्य सीधा संपर्क कायम कर नवीन एवं वैज्ञानिकी तकनीकी सुधार की जानकारी कृषकों तक पहुंचाने के उद्देश्य से खरीफ फसलों की बुआई के पूर्व प्रत्येक विकासखंड में 10 दिवसीय कृषि रथ चलाए गए, जिनमें किसानों को खेती से संबंधित उन्नत तकनीकी जानकारी प्रदान की गई।

कलेक्टर हरेंद्र नारायन द्वारा निर्धारित रूटचार्ट के अनुसार प्रत्येक विकासखंड में ग्राम पंचायत/ सेवा सहकारी समितियों में भ्रमण करेगा, जिसमें कृषि वैज्ञानिक, कृषि अभियांत्रिकी, पशुपालन, उद्यानिकी, सहकारिता, मत्स्यपालन, राजस्व विभाग के पटवारी उपस्थित होकर किसानों को तकनीकी जानकारी, विभागीय योजनाओं की जानकारी उपलब्ध कराई गई। प्रत्येक विकासखंड में एक कृषि रथ 10 दिनों तक रोज 3 से 4 ग्राम पंचायतों और सेवा सहकारी समितियों तक पहुंचा। कृषि रथ के साथ कृषि वैज्ञानिक, विभाग के अधिकारी, कर्मचारी एवं प्रगतिशील किसान भी मौजूद रहे, जो किसान से सीधे रूबरू होकर, खेती, उर्वरक, बीज, रोग और उत्पादन की जानकारी किसानों दी गई। शासन द्वारा किसानों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उर्वरक प्राप्त करने के लिए मोबाईल एप्लीकेशन बलराम का लांच भी किया गया है। किसान स्वयं अपने मोबाईल में प्ले स्टोर में जाकर बलराम एप्लीकेशन डाउनलोड कर उर्वरक प्राप्त करने के लिए ई-टोकन बुक कर सकते हैं। कृषि रथ में कृषि वैज्ञानिक एवं अधिकारियों द्वारा खरीफ पूर्व तैयारी की तकनीकी जानकारी, प्राकृतिक खेती की जानकारी, उर्वरकों के संतुलित उपयोग की जानकारी, मृदा स्वास्थ्य के संबंध में मिटटी नमूना लेकर मिट्टी की जांच कराकर मृदा स्वास्थ्य कार्ड की अनुशंसा के अनुसार ही उर्वरकों का उपयोग करने, फसल विविधीकरण एवं समन्वित खेती (खेती के साथ उद्यानिकी एवं पशुपालन को अपनाने) के द्वारा आय बढ़ाने आदि विषयों पर जानकारी दी गई। कृषि रथ के शुभारंभ कार्यक्रम के अवसर पर एसडीएम छिंदवाडा सुधीर जैन, उप संचालक कृषि जितेन्द्र कुमार सिंह, उप संचालक पशुपालन डॉ. एचजीएस पक्षवार, उप संचालक उद्यानिकी एमएल उइके, कृषि विज्ञान केन्द्र चंदनगांव के प्रमुख वैज्ञानिक डॉ. आर.के. झाडे, संजय सक्सेना, संजय पटेल, संतोष पटेल, रामाराव लाडे, संदीप रघुवंशी, दिनेश कांत मालवीय, बलवान चौरिया, सहायक महाप्रबंधक जिला सहकारी बैंक अजय राठौर, सहायक संचालक कृषि धीरज ठाकुर, नीलकंठ पटवारी, दीपक चौरासिया, श्रीमती प्राची कौतू, कृषि उप यंत्री अश्विनी सिंह, वरिष्ठ कृषि विकास अधिकारी सी.एम. अवस्थी, डी.एस. घाघरे सहित कृषि विभाग का समस्त मैदानी अमला एवं कृषकगण उपस्थित थे।

ज़री-जरदोजी और टेक्सटाइल क्षेत्र में बढ़ायें रोजगार के अवसर

भोपाल। कलेक्टर की अध्यक्षता में कलेक्टर कार्यालय सभाकक्ष में जिला निर्यात कार्ययोजना के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समीक्षा बैठक आयोजित की गई। बैठक का उद्देश्य जिले के स्थानीय उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देना तथा रोजगार के नए अवसर सृजित करना रहा। बैठक में कलेक्टर ने स्थानीय उत्पादों, विशेषकर लघु स्तर के उत्पादन जैसे ज़री-जरदोजी की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस पारंपरिक शिल्प क्षेत्र में रोजगार की व्यापक संभावनाएं निहित हैं। उन्होंने विशेष रूप से महिला रोजगार को बढ़ावा देने पर जोर देते हुए कहा कि इससे स्थानीय महिला शिल्पकारों को आर्थिक रूप से सशक्त एवं आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885
मै. माँ उर्वरक केन्द्र

अमित राय
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता

पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

भीषण गर्मी और लू से दुधारू पशुओं को बचाएं वैज्ञानिकों द्वारा जारी की सम-सामयिक सलाह

टीकमगढ़। वर्तमान में पड़ रही भीषण गर्मी और लू (हीट वेव) का सीधा प्रभाव दुधारू पशुओं के स्वास्थ्य और उनकी दूध उत्पादन क्षमता पर पड़ रहा है। पशुओं में गर्मी के तनाव को कम करने और उन्हें स्वस्थ रखने के उद्देश्य से कृषि विज्ञान केंद्र, टीकमगढ़ के पशुधन प्रभारी एवं मत्स्य वैज्ञानिक डॉ. सतेंद्र कुमार ने केंद्र के प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ. बी.एस. किरार के मार्गदर्शन में पशुपालकों के लिए महत्वपूर्ण तकनीकी सलाह जारी की है। ठंडा वातावरण पशुओं को सीधे धूप से बचाने के लिए छायादार स्थान पर रखें। पशुशाला की छत पर पुआल, घास या बोरी की परत बिछाएं और दिन में 2-3 बार पानी का छिड़काव करें।वेंटिलेशन (हवादार खिड़की) पशुशाला में हवा का संचार उत्तम होना चाहिए। बड़े पशुओं के लिए पंखे, कूलर या फॉगर्स का उपयोग किया जा सकता है। नहलाना पशुओं को दिन में कम से कम 2-3 बार ठंडे पानी से नहलाएं। इससे उनके शरीर का तापमान नियंत्रित रहता है। पर्याप्त पेयजल पशुओं को हमेशा स्वच्छ और ठंडा पानी उपलब्ध कराएं। गर्मी के दिनों में पशुओं को सामान्य से अधिक पानी की आवश्यकता होती है। आहार का समय पशुओं को भारी चारा (भूसा/हरा चारा) सुबह और शाम के ठंडे समय में खिलाएं। दोपहर की चिलचिलाती धूप में उन्हें चारा देने से बचें, क्योंकि इससे शरीर में गर्मी बढ़ती है। खनिज मिश्रण पशुओं के आहार में संतुलित खनिज मिश्रण और नमक अवश्य शामिल करें, जिससे उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बनी रहे।लक्षणों पर ध्यान यदि पशु सुस्त हो, खाना-पीना कम कर दे, लार टपकाए या तेज हांफने लगे, तो यह हीट स्ट्रोक के लक्षण हो सकते हैं। कृषि विज्ञान केंद्र टीकमगढ़ के विशेषज्ञों ने जिले के सभी पशुपालकों से आग्रह किया है कि वे इस भीषण गर्मी में अपने पशुओं की विशेष देखभाल करें। पशुओं के खान-पान और रहने की व्यवस्था में थोड़ा सा बदलाव करके न केवल उनकी जान बचाई जा सकती है, बल्कि दूध के उत्पादन को भी गिरने से रोका जा सकता है।

प्लांट डॉक्टर किसानों के लिए AI आधारित स्मार्ट समाधान पौधों के रोगों की पहचान कर देता है उपचार की सलाह

जबलपुर। हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कुछ किसान फसल रोगों की सही पहचान और समय पर उपचार के अभाव में हर वर्ष भारी आर्थिक नुकसान उठाते हैं। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह समस्या और गंभीर हो जाती है। कई बार बीमारी की गलत पहचान होने से किसान गलत दवाइयों का छिड़काव कर देते हैं, जिससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है और फसल को दोहरा नुकसान होता है। इसी समस्या का समाधान खोजने के उद्देश्य से जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर के एम.टेक के छात्र आर्यन चंद्रा ने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और एम्बेडेड सिस्टम आधारित एक स्मार्ट डिवाइस विकसित की है। लगभग 10 महीने की मेहनत और शोध के बाद तैयार इस डिवाइस का नाम "प्लांट डॉक्टर" रखा गया है। क्या है प्लांट डॉक्टर प्लांट डॉक्टर एक पोर्टेबल स्टैंडअलोन एआई डिवाइस है, जो बिना इंटरनेट के खेतों में काम कर सकती है। यह डिवाइस 10 प्रमुख फसलों की 56 प्रकार की बीमारियों की पहचान करने में सक्षम है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे उपयोग करने के लिए किसी तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। डिवाइस का उपयोग बेहद आसान है। किसान सबसे पहले टारगेट फसल का चयन करता है। इसके बाद कैमरे से प्रभावित पत्तियों या फसल की फोटो क्लिक की जाती है। कुछ ही सेकंड में डिवाइस एआई आधारित डायग्नोस्टिक रिपोर्ट तैयार कर देती है। रिपोर्ट में बीमारी की पहचान के साथ उपचार और दवाई संबंधी सुझाव भी दिए जाते हैं। बिना इंटरनेट के भी करता है काम ग्रामीण क्षेत्रों और खेतों में अक्सर इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क की समस्या बनी रहती है। इसे ध्यान में रखते हुए प्लांट डॉक्टर को पूरी तरह ऑफलाइन मोड पर डिजाइन किया गया है। यानी यह डिवाइस बिना इंटरनेट के भी पूरी क्षमता के साथ कार्य करती है। कम कीमत में उपयोगी तकनीक प्लांट डॉक्टर की कुल लागत लगभग 8500 रुपये है, जिससे इसे ब्लॉक स्तर या सामुदायिक स्तर पर आसानी से उपयोग किया जा सकता है। कम लागत में तेज और सटीक फसल रोग पहचान सुविधा उपलब्ध कराने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास माना जा रहा है। 99 प्रतिशत तक सटीक परिणाम एआई आधारित यह डिवाइस अलग-अलग फसलों में 88 प्रतिशत से लेकर 99 प्रतिशत तक एक्यूरेसी प्रदान करती है। अधिकतम 99 प्रतिशत तक की सटीकता इसे किसानों के लिए बेहद उपयोगी बनाती है। कृषि क्षेत्र में नई संभावना प्लांट डॉक्टर जैसे नवाचार भारतीय कृषि को आधुनिक तकनीक से जोड़ने का प्रभावी उदाहरण हैं। यह डिवाइस न केवल किसानों का समय और पैसा बचा सकती है, बल्कि गलत दवा उपयोग को कम कर उत्पादन बढ़ाने में भी सहायक साबित हो सकती है। ग्रामीण भारत में एआई आधारित ऐसी तकनीकें भविष्य की स्मार्ट खेती की दिशा तय कर रही हैं, जहाँ किसान अपने खेत में ही तुरंत फसल रोग की पहचान कर समाधान प्राप्त कर सकेगा।

कृषि विश्वविद्यालय के छात्र ने 10 महीने में तैयार की स्मार्ट मशीन

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

मछली पालन से पोषण एवं आय मे वृद्धि

केवीके दतिया द्वारा मत्स्य पालन पर पांच दिवसीय कौशल विकास प्रशिक्षण

दतिया। कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया एवं आई.सी.ए.आर.-राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ द्वारा संयुक्त तत्वाधान में, मिशन नवशक्ति- एस.सी.एस.पी. योजनान्तर्गत वित्त पोषित "मीठे पानी की मछली पालन हेतु वैज्ञानिक तकनीकें- स्टॉकिंग से कटाई तक का प्रबंधन" विषय पर, पॉच दिवसीय कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम 4 से 8 मई 2026 तक प्रशिक्षण प्रभारी डॉ. वाय.सी. रिखाड़ी के तकनीकी निर्देशन में आयोजित किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मीठे जल में मछली पालन को एक उन्नत और व्यावसायिक उद्यम के रूप में बढ़ावा देना एवं मत्स्यपालकों को आधुनिक तकनीकों से परिचित कराकर उनकी उत्पादन क्षमता और आर्थिक स्थिति को मजबूत करना रहा। प्रशिक्षण कार्यक्रम में अर्ध-शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए अंतर्राष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान झांसी एवं कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया द्वारा बुन्देलखण्ड क्षेत्र अन्तर्गत आने वाले झांसी एवं दतिया से 30 किसानों का चयन किया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्घाटन 4 मई 2026 को मुख्य अतिथि, प्रो. प्रमोद कुमार पाण्डे, अधिष्ठाता मात्स्यिकी महाविद्यालय-रा.ल.के.कृ.वि.वि. झांसी, डॉ. पूनम जयंत सिंह वरिष्ठ वैज्ञानिक व नोडल ऑफिसर एस.सी.एस.पी., भा.कृ.अनु.प.-रा.म.आ.सं. ब्यूरो, लखनऊ की अध्यक्षता व डॉ. वाय.पी. सिंह, निदेशक विस्तार सेवायें, रा.वि.सिं.कृ.वि.वि. ग्वालियर के मार्गदर्शन में किया गया। उद्घाटन सत्र में सर्वप्रथम सरस्वती पूजन के पश्चात केन्द्र प्रमुख डॉ. अवधेश सिंह द्वारा प्रशिक्षण में आये हुये प्रशिक्षणार्थी एवं अतिथियों का स्वागत उद्बोधन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. प्रमोद पाण्डेय, अधिष्ठाता, पशुपालन चिकित्सा महाविद्यालय नौनेर, दतिया ने प्रशिक्षणार्थियों को संबोधित करते हुये कहा कि यह प्रशिक्षण चार संस्थानों के आपसी मेल मिलाप द्वारा आयोजित किया जा रहा है। कार्यक्रम की अध्यक्ष डॉ. पूनम जयंत पाण्डेय, वरिष्ठ वैज्ञानिक भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ द्वारा अपने उद्बोधन में कहा गया कि यह प्रशिक्षण सिर्फ दतिया या झांसी जिले के किसानों के लिये ही नहीं बल्कि संपूर्ण बुन्देलखण्ड के किसानों के लिये लाभदायक सिद्ध होगा। ICRISAT झांसी से आये हुये विशाल सिंह एवं शैलेन्द्र द्वारा किसानों को संबोधित करते हुये कहा कि किसान भाई उक्त प्रशिक्षण में पूरी लगनता से सहभागिता करें और प्रशिक्षण से प्राप्त तकनीकी जानकारी को अपनाकर अपने तालाबों में मछली पालन का कार्य वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में प्रारंभ करें। कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया के अन्य वैज्ञानिकों डॉ डॉ ए. के. सिंह ने मत्स्य पालन कीट रोग प्रबंधन एवं डॉ रुपेश जैन ने एकीकृत मत्स्य पालन प्रणाली अंतर्गत विभिन्न पशुपालन तकनीकी विषयों पर जानकारी दी।

छात्र-छात्राओं द्वारा वन स्टॉप सेंटर धार में एक्सपोजर विजिट किया

धार। जिला कार्यक्रम अधिकारी महिला एवं बाल विकास विभाग श्री सुभाष जैन के निर्देशन एवं में वन स्टॉप सेंटर धार में हब फॉर इम्पावर मेंट ऑफ़ वुमन एवं वन स्टॉप सेंटर द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता, गतिविधियों एवं कार्य शैली को

जानने समझने हेतु उत्कृष्ट विद्यालय धार, भोज कन्या विद्यालय धार एवं नर्सिंग कॉलेज ऑफ़ आहू के छात्र छात्राओं द्वारा वन स्टॉप सेंटर धार में एक्सपोजर विजिट किया गया। जिसमें किसी भी प्रकार की हिंसा से पीड़ित महिलाओं और बालिकाओं को सहायता प्रदान करने वाले स्थान जैसे कार्य स्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़ननिषेध अधिनियम 2013,भारतीय न्याय संहिता 2023, पीड़ित मुआवजे के लिए भारतीय नागरिक सुरक्षा सहिता 2023 एवं बालिकाओं, महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, के अंतर्गत संचालित महिला ऊर्जा हेल्प डेस्क, महिला थाना, जो महिलाओं की सुरक्षा के लिए हिंसा होने पर रिपोर्ट दर्ज कर कार्यवाही करते है, देहज़ निषेध अधिनियम के तहत कार्यवाही करने वाले स्थानों की जानकारी प्रदान की गई।

अपर कलेक्टर एवं जिला आपूर्ति अधिकारी ने उपार्जन केंद्रों का किया निरीक्षण

झाबुआ। कलेक्टर डॉ. योगेश तुकाराम भरसट के निर्देशानुसार अपर कलेक्टर चंदरसिंह सोलंकी एवं जिला आपूर्ति अधिकारी संजय पाटिल द्वारा उपार्जन केंद्र रायपुरिया एवं पाटीदार वेयरहाउस पेटलावद का निरीक्षण किया गया। निरीक्षण के दौरान अधिकारियों ने उपार्जन केंद्रों पर किसानों को आ रही समस्याओं को गंभीरता से सुना एवं व्यवस्थाओं का जायजा लिया। रायपुरिया केंद्र पर गेहूं तौल में हो रही देरी को दूर करने हेतु केंद्र प्रभारी को तौल कांटों की संख्या 5 से बढ़ाकर 6 करने के निर्देश दिए गए। इसके साथ ही तुलावटी एवं हम्मालों की कमी के संबंध में मंडी सचिव पेटलावद से चर्चा की गई। मंडी सचिव को निर्देशित किया गया कि व्यापारियों से समन्वय स्थापित कर अतिरिक्त लेबर पार्टी की व्यवस्था सुनिश्चित की जाए।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

पार्थेनियम घास की विषाक्तता

डॉ. कणिका निर्मलकर, डॉ. वाई. वर्मा
डॉ. एम. जाटव, डॉ. ए. दुबे, डॉ. एम. स्वामी
पशु विकृती विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

पार्थेनियम घास एक अत्यंत हानिकारक एवं तेजी से फैलने वाली खरपतवार है, जो खेतों, चरागाहों, सड़कों के किनारे तथा खाली भूमि पर प्रचुर मात्रा में उग जाती है। यह घास देखने में साधारण लगती है, परंतु गाय-भैंसों के लिए अत्यंत विषैली होती है। चारे की कमी के समय या अनजाने में इसके सेवन से पशुओं में गंभीर स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिससे दूध उत्पादन घटता है तथा पशुपालकों को आर्थिक हानि होती है।

पार्थेनियम की विषाक्त संरचना

पार्थेनियम में कई जैव-सक्रिय विषैले रसायन पाए जाते हैं, जिनमें प्रमुख हैं- * पार्थेनिन * कोरोनोपिल * हिस्टेरिन * फेनोलिक अम्ल

ये विषैले रसायन त्वचा, श्लेष्मा झिल्ली, यकृत और पाचन तंत्र को नुकसान पहुंचाते हैं और एलर्जी व सूजन संबंधी प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करते हैं।

विषाक्तता का तरीका

पार्थेनियम घास की विषाक्तता मुख्यतः इसके अंदर उपस्थित विषैले रासायनिक तत्वों के कारण होती है, जो पशु के शरीर में प्रवेश करने पर विभिन्न अंगों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। जब गाय या भैंस चारे के साथ हरे या सूखे पार्थेनियम को खा लेती है, तब इसके विषैले तत्व सबसे पहले मुंह, ग्रासनली और आमाशय की श्लेष्मिक झिल्ली को प्रभावित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप जलन, सूजन तथा छालों का निर्माण होता है। लंबे समय तक अल्प मात्रा में सेवन करने पर ये विषैले तत्व रक्त प्रवाह के माध्यम से यकृत तक पहुँच जाते हैं, जिससे शरीर की विषहरण क्षमता प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त, पार्थेनियम के संपर्क में आने से त्वचा में एलर्जिक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जो विशेष रूप से धूप के संपर्क में आने पर अधिक गंभीर रूप धारण कर लेती है।

रोगजनन

पार्थेनियम घास के विषैले तत्व पशु के शरीर में पहुँचने के पश्चात प्रतिरक्षा तंत्र को अत्यधिक उत्तेजित कर देते हैं, जिससे एलर्जिक एवं सूजनजन्य प्रतिक्रियाएँ विकसित होती हैं। सर्वप्रथम मुख गुहा तथा पाचन तंत्र की कोशिकाओं में क्षति होती है, जिसके कारण पशु चारा खाना बंद कर देता है और जुगाली रुक जाती है। धीरे-धीरे विषैले तत्व यकृत की कार्यक्षमता को कम कर देते हैं, जिससे चयापचय क्रियाएँ प्रभावित होती हैं और पशु कमजोर होने लगता है। त्वचा में ये विषैले तत्व सूर्य प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता बढ़ा देते हैं, परिणामस्वरूप थन, थूथन एवं आंखों के आसपास त्वचा में लालिमा, खुजली तथा घाव विकसित हो जाते हैं। यदि विषाक्तता लंबे समय तक बनी रहे, तो दूध उत्पादन में निरंतर गिरावट आती है तथा पशु की सामान्य रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम हो जाती है।

गाय-भैंस में दिखने वाले मुख्य लक्षण

* मुख एवं पाचन तंत्र से जुड़े लक्षण
* मुंह, जीभ व होंठों पर छाले व घाव
* अत्यधिक लार स्राव
* चारा न खाना, जुगाली बंद होना
* पेट दर्द, दस्त या कब्ज
* वजन में गिरावट
* त्वचा से जुड़े लक्षण
* थन, थूथन, आंखों व कानों के आसपास लालिमा, खुजली और पपड़ी
* बाल झड़ना, त्वचा फटना
* धूप में जाने पर घावों का बढ़ जाना
* उत्पादन एवं सामान्य स्वास्थ्य पर प्रभाव
* दूध उत्पादन में तेज गिरावट
* पशु का सुस्त और कमजोर हो जाना
* लंबे समय में प्रजनन क्षमता पर नकारात्मक असर

रोग की पहचान

* चरागाह या आसपास पार्थेनियम की अधिकता
* कई पशुओं में एक-समान त्वचा व मुंह के लक्षण
* चारा बदलने पर लक्षणों में सुधार
* पशु चिकित्सक द्वारा क्लिनिकल जांच से पुष्टि

उपचार

सबसे जरूरी कदम : पार्थेनियम को तुरंत हटाना

* पशु को ऐसे क्षेत्र से दूर रखें
* हरा-साफ चारा और पर्याप्त पानी दें
* पशु चिकित्सक की सलाह से
* एंटी-हिस्टामिनिक
* सूजन व दर्द कम करने की दवाएं
* त्वचा पर एंटीसेप्टिक मरहम
* गंभीर मामलों में विटामिन व लिवर टॉनिक

रोकथाम एवं नियंत्रण

* पार्थेनियम विषाक्तता के नियंत्रण हेतु रोकथाम सबसे प्रभावी उपाय है। इसके लिए आवश्यक है कि चरागाहों, खेतों और पशुशालाओं के आसपास उगने वाली पार्थेनियम घास को समय-समय पर जड़ सहित उखाड़कर नष्ट किया जाए।
* पशुओं को कभी भी ऐसा हरा चारा या भूसा न खिलाया जाए जिसमें पार्थेनियम मिश्रित होने की संभावना हो।
* चारा संग्रहण से पूर्व उसकी अच्छी तरह जांच की जानी चाहिए।
* पशुओं के चरने के क्षेत्रों को साफ एवं सुरक्षित रखा जाना चाहिए तथा सूखे मौसम में वैकल्पिक सुरक्षित चारे की व्यवस्था करनी चाहिए।
* ग्राम स्तर पर सामूहिक खरपतवार नियंत्रण कार्यक्रम अपनाने से इस समस्या को प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है।
* समय पर रोकथाम से न केवल पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा होती है, बल्कि दूध उत्पादन एवं किसानों की आर्थिक हानि से भी बचाव संभव है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

भारत में फल उत्पादन की वर्तमान स्थिति और भविष्य

सुनित भदरगे पीएच.डी. शोध छात्र, (फल विज्ञान) बागवानी विभाग, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर-475001 (म.प्र.)

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां बागवानी (Horticulture) का विशेष महत्व है। फल उत्पादन (Fruit Production) बागवानी का प्रमुख अंग है, जो किसानों की आय बढ़ाने, पोषण स्तर सुधारने और रोजगार के अवसर पैदा करने में अहम भूमिका निभाता है। बदलते समय के साथ भारत में फल उत्पादन पारंपरिक खेती से आगे बढ़कर आधुनिक, वैज्ञानिक और व्यावसायिक स्वरूप ले रहा है।

भारत में फल उत्पादन की वर्तमान स्थिति

भारत आज विश्व के प्रमुख फल उत्पादक देशों में से एक है और कुल उत्पादन के मामले में दूसरे स्थान पर आता है।

उत्पादन संबंधी तथ्य

- भारत में हर वर्ष लगभग 100-110 मिलियन टन फल उत्पादन होता है
- कुल बागवानी उत्पादन में फलों की हिस्सेदारी लगभग 30% के आसपास है
- प्रति व्यक्ति फल उपलब्धता लगातार बढ़ रही है

प्रमुख फल फसलें

भारत में विविध जलवायु के कारण अनेक प्रकार के फल उगाए जाते हैं-

आम (Mango)

- भारत का राष्ट्रीय फल ■ उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र प्रमुख उत्पादक

केला (Banana)

- उत्पादन में सबसे अग्रणी ■ तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात प्रमुख राज्य

संतरा (Citrus)

- विटामिन C से भरपूर ■ महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में प्रमुख उत्पादन

सेब (Apple)

- ठंडे क्षेत्रों में उगाया जाता है
- हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर प्रमुख क्षेत्र

अंगूर (Grapes)

- निर्यात में महत्वपूर्ण ■ महाराष्ट्र प्रमुख उत्पादक

प्रमुख उत्पादन क्षेत्र (States)

राज्य	प्रमुख फल
उत्तर प्रदेश	आम
महाराष्ट्र	केला, संतरा, अंगूर
आंध्र प्रदेश	आम, केला
मध्य प्रदेश	संतरा
हिमाचल प्रदेश	सेब

उत्पादन बढ़ाने वाले कारक

1. उन्नत किस्मों का विकास

नई और अधिक उत्पादन देने वाली किस्में किसानों को अधिक लाभ देती हैं।

2. आधुनिक तकनीकों का उपयोग

- हाई डेंसिटी प्लांटेशन (High Density Planting)
- ड्रिप सिंचाई ■ टिशू कल्चर

3. सरकारी योजनाएं

- राष्ट्रीय बागवानी मिशन ■ प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना ■ सब्सिडी और प्रशिक्षण कार्यक्रम

4. बाजार की बढ़ती मांग

- स्वास्थ्य जागरूकता के कारण फलों की खपत बढ़ रही है

फल उत्पादन की प्रमुख चुनौतियां

जलवायु परिवर्तन

असामान्य वर्षा, तापमान वृद्धि और सूखा उत्पादन को प्रभावित करते हैं।

भंडारण की कमी

कोल्ड स्टोरेज की कमी से फलों की बर्बादी होती है।

परिवहन और सप्लाई चेन

उचित परिवहन व्यवस्था के अभाव में किसानों को नुकसान होता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

अपर्याप्त जानकारी के कारण फसलें प्रभावित होती हैं।

मूल्य अस्थिरता

बाजार में उचित मूल्य न मिलना बड़ी समस्या है।

भारत में फल उत्पादन का भविष्य

भारत में फल उत्पादन का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल माना जाता है।

1. निर्यात की अपार संभावनाएँ

भारतीय आम, अंगूर और अनार की विदेशों में भारी मांग है। गुणवत्ता सुधार के साथ निर्यात और बढ़ सकता है।

2. प्रोसेसिंग उद्योग का विस्तार

- जूस, जैम, जेली, स्क्वैश ■ फलों का सूखा प्रसंस्करण (Dry Fruits)

यह किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करता है।

3. आधुनिक तकनीकों का विस्तार

- ड्रोन तकनीक ■ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI)
- स्मार्ट फार्मिंग

4. जैविक खेती का बढ़ता महत्व

रसायन मुक्त फल उत्पादन की मांग तेजी से बढ़ रही है, जिससे जैविक खेती का भविष्य उज्ज्वल है।

5. सरकारी समर्थन और योजनाएं

सरकार द्वारा किसानों को आर्थिक सहायता, प्रशिक्षण और नई तकनीकों की जानकारी दी जा रही है।

सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण

फल उत्पादन पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है-

- वृक्षारोपण से हरित क्षेत्र बढ़ता है ■ कार्बन अवशोषण में मदद मिलती है ■ मिट्टी संरक्षण होता है

सुधार के सुझाव

- अधिक कोल्ड स्टोरेज की स्थापना ■ किसानों को प्रशिक्षण और जागरूकता ■ बेहतर मार्केटिंग और ब्रांडिंग ■ फसल बीमा और न्यूनतम समर्थन मूल्य

निष्कर्ष

भारत में फल उत्पादन की वर्तमान स्थिति मजबूत और विकासशील है। आधुनिक तकनीकों, सरकारी योजनाओं और बाजार की बढ़ती मांग के कारण इसका भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। यदि किसानों को सही जानकारी, संसाधन और बाजार उपलब्ध कराया जाए, तो फल उत्पादन देश की अर्थव्यवस्था को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकता है और किसानों की आय को दोगुना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सहजन के पत्तों की खेती

डॉ. वाय.के. शुक्ला
डॉ. रश्मि शुक्ला एवं डॉ. डी.के. वाणी
कृषि विज्ञान केन्द्र खंडवा (म.प्र.)

सहजन पौष्टिकता से भरपूर बहुउद्देशीय वृक्ष है। सहजन के वृक्ष का प्रत्येक भाग जड़ तना पत्ती या फल फूल बीज तेल तथा वह किसी न किसी रूप से मनुष्य एवं जन जानवरों द्वारा गाया का उपयोग में लाया जाता है। आयुर्वेद में मोरिंगा का उपयोग प्राचीन समय से चला आ रहा है। पौष्टिकता से भरपूर होने के कारण इससे विभिन्न प्रकार की उत्पाद बनाए जाने लगे हैं। यदि इस पौधे का प्रत्येक घर या प्रत्येक परिवार में विधिवत उपयोग किया जाए तो यह कुपोषण की समस्या का समाधान करने में अहम भूमिका निभा सकता है। इन दिनों सहजन की फूलों वाली कहानियां बाजारों में आसानी से देखने को मिल जाती है साथ ही सहजन की फलिया यानी कि ड्रमस्टिक भी मिल जाती है। इनकी फलियों में अन्य सब्जियों व फलों की तुलना में विटामिन, प्रोटीन, कैल्शियम, पोटेशियम, आयरन, अमीनो एसिड व खनिज पदार्थ अधिक होते हैं। इसकी पत्तियां वह फूल भी विभिन्न पोषक तत्वों का महत्वपूर्णस्त्रोत है। जिनमें विटामिन बी से वह बीटा कैरोटीन मैग्नीशियम प्रोटीन प्रचुरता से पाए जाते हैं । इनके बीजों से प्राप्त तेल में जैतून के तेल से भी ज्यादा प्रभावशाली गुण होते हैं। इस प्रकार इस पौधे का फल, फूल, पत्ते, तना और यहां तक की जड़ भी उपयोगी है।

इस पौधे के बहुत सारे औषधीय उपयोग है जैसे कि- * घाव भरने में मदद करना, दर्द व सूजन को कम करने में मदद करना * अंधता निवारण में उपयोगी * हड्डियों की बीमारियों में काम आता है, महिला सुपोषण हेतु उपयोगी, * गैस्ट्रिक और अल्सर में उपयोगी, * ब्लड शुगर और ब्लड प्रेशर की बीमारियों में उपयोगी, तंत्रिका तंत्र को प्रभावी बनाने, * मस्तिष्क की कार्यक्षमता बढ़ाने * त्वचा में निखार लाने और इन जैसी कई बीमारियों और रोगों में काम आता है इसके अलावा इसकी छाल का उपयोग पशुओं के सिंगर टूटने पर बांधने पर आराम मिलता है।

सहजन की उन्नत किस्में : मोरिंगा की उन्नत किस्में खुशी विद्यालयों, अनुसंधान केंद्रों, आईसीएआर अनुसंधान केंद्रों आदि द्वारा विकसित की गई जिनकी उत्पादन क्षमता, पक्का अवधि, गुनता आदि की बातें ध्यान में रखने के लिए उन्नत किस्मों का विकास किया जो लाभदायक होती है। उन्नत किस्मों में निम्न किस में है जो अधिक उत्पादन देती है।

* पी के एम- 1 * पी के एम- 2 * ओडीसी * सी ओ- 1 आदि।

जलवायु एवं मृदा : सहजन की खेती शुष्क वह गर्म जलवायु में भी आसानी से होती है। पौधों की बढ़वार हेतु 25 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। लेकिन यह पौधा 10 डिग्री सेल्सियस तापमान से लेकर 50 डिग्री सेल्सियस तापमान तक भी आसानी से फल फूल सकता है। अधिक धूप और गर्म वातावरण किसके लिए उपयुक्त माना जाता है। सहजन उत्पादन के लिए विशेष प्रकार की मृदा की आवश्यकता नहीं होती, यह विभिन्न प्रकार की जमीन में पनपता है। सहजन बलुई, चिकनी मिट्टी, अम्लीय मिट्टी, काली मिट्टी में अच्छी तरह से बढ़ता है। इस पौधे में 21 मिली मोहस प्रति सेंटीमीटर तक लवणता तथा पी. एच. मान 5 से 8 सहन करने क्षमता होती है।

सहजन को लगाने का समय : ज्यादा बारिश का और ज्यादा ठंड का मौसम छोड़ कर सहजन को साल भर में कभी भी लगा सकते हैं। सहजन के पौधे बीज द्वारा उगाए जाते हैं। बीज द्वारा उगाए गए पौधे ज्यादा गुण वाले होते हैं।

खाद एवं उर्वरक

सहजन की जैविक खेती के लिए नीचे दिए गए खादो एवं

उर्वरकों की आवश्यकता होती है।

* **वर्मी कंपोस्ट/ केंचुए का खाद-** जिसे जिसे डालने से हमारे 2 मिनट में पोषक तत्वों की पूर्ति होती है।
* **ट्राईकोडर्मा पाउडर-** एक फफूंद नाशक है जो जमीन में मौजूद हानिकारक फफूंद को नष्ट कर देता है।
* **नीम केक / नीम की खली-** यह एक कीटनाशक है जिसे जमीन में डालने से जमीन में मौजूद की या उनके अंडे नष्ट होते हैं।
* **जिप्सम-** यह एक मृदा अनुकूलक या सॉइल कंडीशनर है जो मिट्टी को भुर-भुरा एवं हवादार बना देता है।

इन सभी खाद एवं उर्वरकों को अलग-अलग मात्रा में डालना जरूरी है जिससे हमारे पौधे को उपयोगी पोषक तत्व और सहयोग मिलता है।

सहजन के बीज लगाने का तरीका: सहजन की पत्तों की खेती के लिए 1 एकड़ में 6.5 किलो बीज की आवश्यकता होती है। पत्तों की खेती में बीज को कम दूरी पर लगाया जाता है, पौधों से पौधों की दूरी डेढ़ फीट होती है और लाइन से दूसरी लाइन की दूरी डेढ़ फिट होती है इस प्रकार से 1 एकड़ में लगभग 20000 पौधे लगाए जा सकते हैं। बीज को लगाने से पहले उनको उपचारित किया जाना जरूरी है।

बीज का उपचार: सहजन का बीज ऊपर से कठिन होता है इसलिए इसे लगाने से पहले बीज को उपचारित किया जाता है। इसको उपचारित करने से 2 फायदे होते हैं पहला फायदा इसका जर्मीनेशन परसेंटेज बढ़ जाता है और दूसरा फायदा बीज को हानिकारक जंतुओं से मुक्त किया जाता है। बीजों को जैविक तरीके से उपचारित करने के लिए सर्वप्रथम एक 10 लीटर आकार वाला बर्तन ले उसमें 5 लीटर पानी डालें उसी पानी में 2 लीटर देसी गाय का गोमूत्र और 100 ग्राम ट्राइकोडरमा पाउडर मिलाएं। इन सभी सामग्री को अच्छी तरह से मिलाएं तत्पश्चात उसमें बीज को डालें और उस पानी में बीजों को लगभग 5 से 6 घंटे रहने दे। बीजों को 6 घंटे बाद उस मिश्रण में से निकाले और उसे कॉटन के कपड़े में डालें, कपड़े की गांठ बांधे और उस पोटली को रात भर या 12 घंटे तक एक जगह पर लटकाए। बीच बीच में इस पोटली पर पानी का छिड़काव करें। सुबह पोटली को खोल दें उसमें से बीज को निकाले, यह बीज बोने के लिए तैयार होंगे।

सहजन का बीज लगाने का तरीका

सीधी बुवाई: सजन की पत्तों की खेती के लिए सजन के बीज 1.5 फीट × 1.5 फीट अंतर से लगाए जाएंगे। 1 पौधे से दूसरे पौधे की दूरी डेढ़ फीट और एक लाइन से दूसरे लाइन की दूरी डेढ़ फीट होगी। इस तरह से बीज को हाथ से या खुरपी की मदद से छोटा सा गड्ढा बनाकर उसमें डाला जाएगा और ऊपर से मिट्टी ढक दी जाएगी। पूरे खेत में बीज लगाने के बाद तुरंत सिंचाई की व्यवस्था होनी चाहिए, एक से डेढ़ हफ्ते के लिए जमीन में बीजों के पास नमी बरकरार नहीं चाहिए ताकि उसका जर्मी नेशन अच्छी तरह से हो। एक बार पौधा बीच में से ऊपर आ जाए उसके बाद यानी कि 15 दिनों के बाद दूसरी सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसके बाद वाली सिंचाई है अपने जमीन के अनुसार और अपने एरिया के जलवायु के अनुसार करनी पड़ती है। मोरिंगा की खेती के लिए आमतौर पर ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती।

नर्सरी बनाना: किसान भाई 3 मीटर × 3 मीटर की रैज्ड बेड बनाए, उस बेड पर 2-2 इंच की दूरी पर उपचारित बीज को बोए, इसी नर्सरी में बीजों से पौधा तयार होगा जिसे 6-7 हफ्ते तक रखे, नर्सरी में पौधा लगभग 1 से 1.5 फुट ऊंचाई का होगा, उस के बाद नर्सरी में से इन पौधों को निकाले और मुख्य भूमि में लगाए। उसके तुरंत बाद सिंचाई करनी होती है । यहाँ मोरिंगा के खेत की इमेज जिसमे पौधे छोटे हो

08/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सुरक्षित तरीके से कीटनाशकों का उपयोग

डॉ. अखिलेश कुमार केवीके रीवा (म.प्र.)

उन्नत खेती के लिए कीटनाशकों का इस्तेमाल सुरक्षित तरीके से करना अति आवश्यक है। कीटनाशक रासायनिक या जैविक पदार्थों का ऐसा मिश्रण होता है जो कीड़े मकोड़ों से होने वाले दुष्प्रभावों को कम करने, उन्हें मारने या उनसे बचाने के लिए किया जाता है। प्राकृतिक विकल्पों जैसे नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, या पाइरेथॉइड का चयन करना चाहिए। हमेशा शांत मौसम में, तेज धूप से बचकर और हवा की दिशा में छिड़काव करें ताकि फसल और स्वास्थ्य सुरक्षित रहें। सुरक्षित कीटनाशकों का प्रयोग करते समय लेबल के निर्देशों का पालन करना, सही मात्रा में उपयोग करना, और व्यक्तिगत सुरक्षा (दस्ताने, मास्क) अपनाना सबसे महत्वपूर्ण होता है।

कीटनाशकों खरीदते समय रखी जाने वाली सावधानियां

1. जिस कीटनाशक दवा पर पर्चा ना हो उसे ना खरीदें तथा सुनिश्चित कर लें कि दवा सील पैक है।
2. कीटनाशक दवा हमेशा अधिकृत विक्रेता से ही खरीदें तथा बिल आवश्यक रूप से लें।
3. सुरक्षा की दृष्टि से कीटनाशक दवाओं को परिवहन से पहले अच्छी तरह पैक कर लें तथा रिसाव ना हो इसका ध्यान रखें।
4. उचित कीट नियंत्रण के लिए सही कीटनाशक का चुनाव करें।

कीटनाशक का घोल बताते समय रखी जाने वाली सावधानियां

1. कीटनाशक का घोल बनाते समय दस्तानों का इस्तेमाल करें। साथ ही मुंह को कपड़े से ढंकें।
2. कीटनाशक का घोल बताने समय हमेशा साफ पानी का इस्तेमाल करें।
3. कीटनाशक की बोतल को मुंह से नहीं खोलें।
4. कीटनाशी के डब्बे पर लिखी सावधानियां अच्छे से पड़ लें।
5. कीटनाशी दवाओं का इस्तेमाल नजदीकी क्षेत्र में कार्यरत सहायक कृषि अधिकारी, कृषि पर्यवेक्षक की सलाह लेकर ही करें।
6. जरूरत के अनुसार ही कीटनाशी का घोल बनाएं।
7. कीटनाशी छिड़काव यंत्र को ना सूंघें।
8. छिद्रित या टूटे-फूटे उपकरणों का प्रयोग घोल बनाने में न करें।
9. कीटनाशी का घोल बनाते समय कुछ खाना-पीना, चबाना नहीं चाहिए और ना ही धूम्रपान करना चाहिए।
10. दो या दो से अधिक कीटनाशको का प्रयोग करना हो तो एक के उपयोग के बाद स्प्रेयर को धोना ना भूलें। इसके पश्चात ही दूसरे कीटनाशक का उपयोग करें।

कीटनाशी का छिड़काव करते समय सावधानियां

1. तपती गर्मी व तेज हवा चलने के दौरान कीटनाशी न छिड़कें। कीटनाशक का बारिश होने के पश्चात तथा बारिश होने के पूर्व छिड़काव न करें।
2. कीटनाशक का छिड़काव सुबह एवं सायं के समय ही करें।
3. छिड़काव करते ही खेत में मजदूरों तथा जावनरों का प्रवेश निषेध करें।
4. छिड़काव करते समय हाथों में दस्ताने एवं मुंह पर कपड़ा बांध लें तथा ऑखों के बचाव हेतु चश्मा पहनें।

भंडारण के समय सावधानियां

1. कीटनाशक को कभी चारे या खाने योग्य वस्तुओं के साथ भंडारण न करें।
2. घरों में कीटनाशकों का भंडारण करने से बचें।
3. कीटनाशक को बच्चों की पहुंच से दूर रखें।
4. कीटनाशक का सूरज की रोशनी व बारिश से बचाव करें।
5. कीटनाशक को खरपतवारनाशी के साथ नहीं रखें।
6. कीटनाशी डिब्बों का उपयोग खाद्य पदार्थ एवं पानी के लिए न करें।
7. पेय पदार्थ की बोतलों में कीटनाशी न भरें।

अन्य सावधानियां

1. कीटनाशक दवा का छिड़काव करने के बाद स्नान कर लेवें एवं कपड़ों को धो लें।
2. प्रतिदिन उपयोग के बाद उपकरणों को साफ करें तथा उनकी जांच कर लें।
3. कीटनाशक दवाओं को दूसरे डिब्बों में पुनः पैक न करें।
4. खाली डिब्बों को जला दं या मिट्टी में दबा दें।
5. कीटनाशी के पात्र अथवा बाल्टी जिसमें घोल बनाया हो उसे इस्तेमाल के बाद अच्छे से साबुन से धोलें।

कीटनाशक के हानिकारक प्रभाव रोकने के उपाय

1. संदूषित कपड़े तत्काल बदल दें व त्वचा को धो लें।

2. सॉस में रूकावट आने पर फौरन कृत्रिम सॉव देना आरंभ करें।
3. आंखों में पड़े कीटनाशक को साफ पानी से 10 मिनट तक धाएं।
4. कीटनाशक के मुंह द्वारा अंदर जाने पर मुँह से हाथ डाल कर उल्टी करा दें।
5. यदि किसी छिड़काव वाले व्यक्ति में विष के लक्षण जैस चक्कर आना, उल्टियॉ व बेहोशी आदि दिखाई दे तो तुरंत नजदीकी अस्पताल ले जाकर चिकित्सक से इलाज करवायें व कीटनाशक से संबंधित पर्चा भी ले जायें।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

बकरियों के सामान्य रोग कारण, लक्षण और बचाव

डॉ. शेख टी. जे., डॉ. अमित कुमार झा
डॉ. राजीव रंजन., डॉ. राजेश रंजन
डॉ. बलेश्वरी दीक्षित, डॉ. कंचन वालवडकर
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय,
रीवा, मध्य प्रदेश-486001

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बकरी पालन का विशेष स्थान है। कम लागत और त्वरित लाभ के कारण इसे %गरीबों की गाय% भी कहा जाता है, लेकिन बकरियों के स्वास्थ्य पर थोड़ी सी भी लापरवाही भारी नुकसान दे सकती है। बकरियाँ विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाती हैं, जिनमें अधिकांश का समय पर पहचान और टीकाकरण द्वारा बचाव संभव है। इस लेख में हम पाँच सामान्य रोगों–खुरपका-मुँहपका (एफएमडी), बकरी प्लेग (पीपीआर), संक्रामक फुफ्फुस निमोनिया (सीसीपीपी), और आंतों के कृमि – के कारणों, लक्षणों और बचाव के उपाय जानेंगे कि कैसे कुछ सामान्य सावधानियाँ अपनाकर पूरे झुंड को स्वस्थ और उत्पादक बनाया जा सकता है।

खुरपका-मुँहपका रोग (FMD-फुट एंड माउथ डिजीज)

यह एक अत्यंत संक्रामक विषाणुजनित बीमारी है, जो केवल बकरियों को ही नहीं बल्कि गाय, भैंस, भेड़ और सूअर को भी प्रभावित करती है। यह रोग पिकोर्नाविरिडी परिवार के वायरस के कारण होता है और यह वायरस संक्रमित जानवरों की लार, छींक, मल-मूत्र और यहाँ तक कि हवा के माध्यम से भी तेजी से फैलता है। इस रोग का सबसे पहला और पहचानने योग्य लक्षण यह है कि बकरी के मुँह, जीभ, मसूड़ों और खुरों के बीच में छोटे-बड़े छाले या फफोले बन जाते हैं। इसके साथ ही बकरी के मुँह से बहुत अधिक लार उतरने लगती है और उसे तेज बुखार आ जाता है। बुखार के कारण वह चारा-पानी छोड़ देती है और लंगड़ाकर चलने लगती है। यदि दूध देने वाली बकरी इस रोग से ग्रसित हो जाती है तो उसके दूध का उत्पादन अचानक बंद हो सकता है। इस रोग से बचाव का सबसे प्रभावी उपाय नियमित टीकाकरण है। हर वर्ष एफएमडी का टीका लगवाना अत्यंत आवश्यक है। यदि कोई बकरी संक्रमित हो जाए तो उसे तुरंत झुंड से अलग कर देना चाहिए। उसके मुँह के छालों पर पोटैशियम परमैंगनेट का हल्का घोल लगाया जा सकता है और खुरों को साफ करके एंटीसेप्टिक क्रीम लगानी चाहिए। रोग के समय मुलायम और पचने में आसान चारा देना चाहिए ताकि बकरी को चबाने में कठिनाई न हो।

बकरियों का प्लेग (पीपीआर-पेस्ट डेस पेटिट्स रुमिनेंट्स)

पीपीआर को बकरी प्लेग के नाम से भी जाना जाता है और यह बकरियों के लिए एक भयानक वायरल बीमारी है। इस रोग में मृत्यु दर अस्सी से नब्बे प्रतिशत तक हो सकती है, इसलिए इसे अक्सर बकरी पालकों का सबसे बड़ा दुश्मन माना जाता है। यह रोग मोर्बिलीवायरस के कारण होता है जो संक्रमित बकरी के छींकने, नाक-आँख के स्राव और सीधे संपर्क से अत्यंत तीव्र गति से फैलता है। संक्रमण के शुरू होते ही बकरी को तेज बुखार, एक सौ पाँच या छह डिग्री फॉरेनहाइट तक बुखार चढ़ जाता है। उसकी नाक और आँखों से पानी जैसा या पीपदार स्राव होने लगता है। मुँह के अंदर छोटे-छोटे घाव बन जाते हैं और बाद में उन पर रुई जैसी सफेद परत जम जाती है। इस रोग में सबसे खतरनाक लक्षण है भयंकर दस्त लगना। पहले दस्त पीले रंग के होते हैं, फिर धीरे-धीरे खूनी हो जाते हैं। बार-बार दस्त के कारण बकरी के शरीर में पानी की अत्यधिक कमी (निर्जलीकरण) हो जाती है और वह बहुत कमजोर हो जाती है। बाल रूखे और बेजान हो जाते हैं। पीपीआर से बचाव के लिए हर तीन साल में पीपीआर वैक्सीन लगवाना अत्यंत आवश्यक है, हालाँकि अधिक जोखिम वाले क्षेत्रों में इसे हर साल लगवाने की सलाह दी जाती है। इस रोग का कोई एंटीवायरल उपचार नहीं है; केवल लक्षणों का ही इलाज किया जा सकता है। इसमें ओआरएस और ग्लूकोज का घोल पिलाकर निर्जलीकरण को रोकना, विटामिन कॉम्प्लेक्स देना, और द्वितीयक जीवाणु संक्रमण से बचने के लिए एंटीबायोटिक्स देना शामिल है। मृत जानवर को गहरे गड्ढे में चूना डालकर दफनाना चाहिए ताकि रोग आगे न फैले।

संक्रामक फुफ्फुस निमोनिया (सीसीपीपी)

यह एक जीवाणुजनित बीमारी है जो बकरियों के फेफड़ों को गंभीर क्षति पहुँचाती है और अत्यधिक संक्रामक होती है। इस रोग को माइकोप्लाज्मा कैप्रीकोलम कैप्री नामक जीवाणु के कारण होता है। यह जीवाणु संक्रमित बकरी के छींकने और खाँसने से हवा के माध्यम से बहुत तेजी से पूरे झुंड में फैल जाता है। जब किसी बकरी को यह रोग होता है तो उसे तेज खाँसी आती है और साँस लेने में बहुत तकलीफ होती है। बकरी बहुत तेजी से साँस लेती है और उसकी नाक से झागदार या पीपदार स्राव निकलता है। उसे तेज बुखार हो जाता है और वह अकेले अलग रहने लगती है तथा चारे में रुचि नहीं लेती। जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती है, बकरी के फेफड़ों और पसलियों के बीच चिपचिपा द्रव जमा होने लगता है, जिससे साँस लेना और भी मुश्किल हो जाता है। साँस घरघराहट के साथ आने लगती है। यदि समय पर उपचार न किया जाए तो पाँच से सात दिनों में मृत्यु हो सकती है। सीसीपीपी से बचाव का सबसे अच्छा तरीका नियमित टीकाकरण है। यह वैक्सीन साल में एक बार लगवानी चाहिए। यदि रोग फैल जाए तो पशु चिकित्सक के परामर्श से टायलोसिन, ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन या एनरोफ्लोक्सासिन जैसी एंटीबायोटिक दवाओं का इंजेक्शन दिया जाता है। रोगग्रस्त बकरी को तुरंत झुंड से अलग कर बाड़े को कीटाणुशोधित किया जाना चाहिए। पौष्टिक आहार और विटामिन-युक्त हरा चारा देने से बकरी की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

आंतों के कीड़े (कृमि रोग)

बकरियों में कृमि या आंतों के कीड़े सबसे अधिक देखे जाने वाले परजीवी रोगों में से एक है। यह रोग कोई एक नहीं बल्कि गोल कृमि, फीता कृमि और सूत्रकृमि सहित कई प्रकार के परजीवियों के कारण होता है। यह रोग मुख्यतः खराब स्वच्छता के कारण होता है। जब बकरियाँ नम और गंदे फर्श पर रहती हैं या दूषित चारा व पानी खाती-पीती हैं, तो वे परजीवियों के अंडे या लार्वा को मुँह में ले लेती हैं। ये कृमि फिर पेट और आंतों में रहकर जानवर के खून और पोषण को चूस लेते हैं। इस रोग का मुख्य लक्षण है बकरी का धीरे-धीरे दुबला होते जाना, भरपूर चारा खाने के बावजूद शरीर पर मांस नहीं चढ़ना। बकरी के बाल रूखे और बेजान हो जाते हैं। सबसे पहचानने योग्य लक्षण है बकरी की निचली पलक और मसूड़ों का पीला या सफेद हो जाना, जो गंभीर खून की कमी (एनीमिया) की ओर संकेत करता है। बकरी को बारी-बारी से कब्ज और दस्त की समस्या होती है। कभी-कभी मल में सीधे कीड़े निकलते हुए दिखाई दे जाते हैं। इस रोग से बचाव के लिए हर तीन से चार महीने में कृमिनाशक दवा देना बहुत आवश्यक है। फेनबेंडाजोल, एल्बेंडाजोल या आइवरमेक्टिन जैसी दवाएँ पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार दी जा सकती हैं। बाड़े को सूखा और साफ रखना, गोबर को नियमित निकालना, तथा पीने के लिए स्वच्छ पानी देना भी इसमें सहायक होता है। चरागाहों को बारी-बारी से खाली छोड़ने (रोटेशनल ग्रेजिंग) से परजीवियों का जीवन चक्र टूट जाता है।

सामान्य रोकथाम के सिद्धांत

उपरोक्त सभी रोगों से बचने के लिए कुछ सामान्य लेकिन अत्यंत प्रभावी सिद्धांत हैं। नियमित टीकाकरण सबसे महत्वपूर्ण है। एफएमडी, पीपीआर, सीसीपीपी और एंटरोटॉक्सीमिया के टीके समय पर लगवाना चाहिए। बकरी के बाड़े, चारा-पानी और बर्तनों की रोजाना सफाई करनी चाहिए तथा महीने में एक बार कीटाणुनाशक का छिड़काव करना चाहिए। बाजार से नई बकरी लाने पर उसे कम से कम इक्कीस दिन तक पुराने झुंड से अलग रखा जाना चाहिए। हरा चारा, सूखा चारा, खनिज मिश्रण और साफ पानी अवश्य देना चाहिए। यदि कोई बकरी बीमार हो जाए तो उसे तुरंत अलग कर उपचार करवाना चाहिए। बकरियाँ रोगों के प्रति संवेदनशील हैं, फिर भी थोड़ी सी सतर्कता, साफ-सफाई और समय पर टीकाकरण से अधिकांश बीमारियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। यदि कभी बकरी में कोई असामान्य लक्षण दिखाई दे तो घरेलू उपचारों के चक्कर में समय न बर्बाद करके तुरंत नजदीकी पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। इस प्रकार नियमित देखभाल और समय पर इलाज से बकरी पालन को एक लाभदायक व्यवसाय बनाया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

नैनो केमिकल्स से लेकर ट्राइकोडर्मा तक: खरीफ की तिलहन-दलहन-मक्का में उन्नत बीज उपचार

अरुण एम.एस.सी. (कृषि) शस्य विज्ञान, मंदसौर विश्वविद्यालय
प्रकाश रेगर एम.एस.सी. (कृषि) शस्य विज्ञान मंदसौर वि.वि.
डॉ. विपुल सिंह सहायक प्रोफेसर, मंदसौर विश्वविद्यालय
अनुज कुमार सहायक प्रोफेसर, मंदसौर विश्वविद्यालय

प्रिय किसान भाइयों जेसे की खरीफ फसल की बुवाई नजदिक हे। इस बार हम चाहते हैं कि आपकी सोयाबीन, मूंगफली, उड़द, अरहर, मक्का, ज्वार, बाजरा या कपास की पैदावार दोगुनी हो जाए। लेकिन यह तभी होगा, जब आप बिजाई (बुवाई) से पहले बीजों का सही इलाज करेंगे। बीज उपचार यानी बीज को दवा से धोकर या लपेटकर रोग और कीड़ों से बचाना। आज हम बात करेंगे पुराने रासायनिक उपचार से हटकर, नैनो केमिकल्स और जैविक फफूंदनाशक ट्राइकोडर्मा जैसे नए और कारगर तरीकों की।

1. नैनो केमिकल्स: बहुत छोटा, लेकिन बहुत ताकतवर- नैनो केमिकल्स वो खास तरह के सूक्ष्म कण होते हैं, जो आम दवा से हज़ार गुना छोटे होते हैं। इनका आकार 1 से 100 नैनोमीटर (एक इंच का दस लाखवाँ हिस्सा) होता है। ये बीज के अंदर आसानी से पहुँच जाते हैं और पौधे को तुरंत पोषण देते हैं।

खरीफ फसलों में उपयोग के फायदे

तिलहन (मूंगफली, सोयाबीन): नैनो जिंक और नैनो कॉपर से बीज उपचार करने से अंकुरण (जमाव) 95% से अधिक हो जाता है। ये बीज को भूमिगत फफूंद रोग (फाइटोफ्थोरा, स्क्लेरोटियम) से बचाते हैं। नैनो जिंक से फूल और फल्लियाँ अधिक बनती हैं।

दलहन (अरहर, उड़द, मूंग, चना - खरीफ वाला): नैनो सल्फर का लेप चूसने वाले कीड़े (एफिड, जैसिड) को बीजावस्था में ही रोक देता है। नैनो कॉपर जड़ सड़न रोग (फ्यूजेरियम विल्ट) से बचाता है।

मक्का: नैनो सिलिका से उपचारित बीज सूखे और तेज बारिश की मार सहन कर लेते हैं। तना छेदक कीट का प्रकोप कम होता है। नैनो जिंक से दाना भराव (ग्रेन फिलिंग) बेहतर होता है।

ज्वार और बाजरा (मोटे अनाज): नैनो आयरन से बीज उपचार करने से पीलापन (क्लोरोसिस) नहीं होता। नैनो कैल्शियम से तने मजबूत होते हैं और फसल लटकती नहीं (लॉजिंग प्रतिरोध)।

कपास (खरीफ की नकदी फसल): नैनो बोरॉन से उपचारित बीज से जड़ें गहरी और मजबूत बनती हैं। नैनो कॉपर से झुलसा रोग (बैक्टीरियल ब्लाइट) का खतरा घट जाता है।

विधि: 1 किलो बीज हेतु 2-3 मिली नैनो केमिकल घोल (जैसे नैनो-बीज-स्पेशल) पर्याप्त है। बीजों को छाया में सुखाकर बोएं।

2. ट्राइकोडर्मा: प्रकृति का सुपरहीरो (जैविक फफूंदनाशी)

रसायनों से मनाही है? तो ट्राइकोडर्मा (Trichoderma viride या harzianum) नाम का जैविक कवक (फंगस) इस्तेमाल करें। यह मित्र कवक है, जो दुश्मन कवकों को खा जाता है। यह बीज की सतह पर एक सुरक्षा परत बना लेता है।

खरीफ फसलों में रोल

तिलहन (मूंगफली): ट्राइकोडर्मा पाउडर बीज पर लपेटकर लगाएं। यह ऑल्टरनेरिया (पत्ती धब्बा) और जड़ गलन (स्टेम रॉट) से बचाता है। यह मिट्टी में जाकर हानिकारक फंगस की जड़ों को भी नष्ट करता है।

दलहन (अरहर): अरहर का सबसे बड़ा दुश्मन जड़ सड़न (फ्यूजेरियम विल्ट) है। ट्राइकोडर्मा से उपचारित बीज डालेंगे तो फसल पीलाना रोग से बची रहेगी। यह अरहर में 70% तक बचाव करता है।

मक्का: ट्राइकोडर्मा मक्का के बीज को फफूंदी (फ्यूजेरियम मोनिलिफोर्मे) से बचाता है, जिससे बीज गलते नहीं और जड़ें मजबूत बनती हैं। साथ ही, यह मक्का में पोषक तत्व (फॉस्फोरस) घोलने वाले बैक्टीरिया को बढ़ाता है।

ज्वार-बाजरा: ट्राइकोडर्मा इन फसलों को ढेला रोग (स्मट) और जड़ सड़न से बचाता है। यह पौधे की रोग प्रतिरोधक क्षमता (इम्युनिटी) बढ़ाता है।

कपास: कपास में झुलसा रोग और जड़ सड़न के लिए ट्राइकोडर्मा रामबाण है। यह रसायनिक दवाओं से सस्ता और ज्यादा असरदार है।

विधि: 1 किलो बीज पर 5-6 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर (जैविक) का छिड़काव करें।

3. बीज उपचार के लिए वैज्ञानिक स्टीकर (चिपकने वाले उत्पाद) ताकि दवाइयाँ (नैनो केमिकल और ट्राइकोडर्मा) बीज पर से उतरे नहीं और एक समान लेप बने, आपको 'सफैक्टेंट / स्टीकर' की जरूरत होती है। नीचे दिए गए उत्पाद किसी भी अच्छी कृषि दुकान पर आसानी से मिल जाते हैं:

* **तीव्रा (Tiva) स्टीकर** 1-2 मिली तेजी से चिपकता है, पानी में आसानी से घुलता है
* **स्टीकर (Sticker) :** साधारण स्टीकर 1 मिली सबसे सस्ता और आम उपयोग
* **मैन्कोजेब युक्त स्टीकर:** फफूंदनाशक + स्टीकर 1.5 मिली अगर फफूंदी बहुत ज्यादा हो तो यह बेहतर है (केवल तिलहन में)
* सुपर-बॉन्ड (Super Bond) सुपर स्टीकर 1 मिली 7 उच्च गुणवत्ता, भारी बारिश में भी नहीं उतरता

विधि: 1 ली.पानी में 1-2 मिली स्टीकर मिलाकर बीजों पर छिड़काव करें। फिर उसी गीलेपन पर नैनो केमिकल और ट्राइकोडर्मा लगाएं।

4. खरीफ मौसम में बोई जाने वाली मुख्य फसलें और उनका बीज उपचार:

1.सोयाबीन तिलहन-स्टीकर (1ml)+नैनो कोबाल्ट (2ml)+ ट्राइकोडर्मा (5g)+राइजोबियम राइजोबियम से जड़ों में गाठें बढ़ती हैं।

2.मूंगफली तिलहन -स्टीकर (1ml)+ नैनो कैल्शियम (3ml) + ट्राइकोडर्मा (5g)+स्यूडोमोनास स्यूडोमोनास से पत्ती झुलसा रोग नहीं होता

3.अरहर (तुअर दलहन-स्टीकर (1ml) + नैनो कॉपर (2ml) + ट्राइकोडर्मा (6g)। ट्राइकोडर्मा ज्यादा डालें, अरहर में जड़ सड़न गंभीर है

4.उड़द/मूंग दलहन-स्टीकर (1ml)+नैनो आयरन (2ml) + ट्राइकोडर्मा (5g) नैनो आयरन से पत्ते गहरे हरे और चमकदार बनते हैं

5.मक्का (खरीफ) अनाज/चारा - स्टीकर (1.5ml) + नैनो सिलिका (3ml) + ट्राइकोडर्मा (5g) + क्लोरपाइरीफस (1ml) 7 क्लोरपाइरीफस तना छेदक कीट के लिए जरूरी है।

6.ज्वार मोटा अनाज-स्टीकर (1ml) + नैनो आयरन (2ml) + ट्राइकोडर्मा (5g) इससे चारे में पोषण बढ़ता है और ढेला रोग नहीं होता

7.बाजरा मोटा अनाज- स्टीकर (1ml) + नैनो जिंक (2ml) + ट्राइकोडर्मा (5g) बाजरा में दाने मोटे और भारी बनते हैं

8. कपास: नकदी फसल-स्टीकर (1ml)+ नैनो बोरॉन (2ml) + ट्राइकोडर्मा (6g) बोरॉन से फूल और बॉल्स (कपास की गांठ) अधिक बनते हैं

5. वैज्ञानिक विधि: ऐसे करें पूरा उपचार (स्टीकर के साथ) आपको चाहिए: बाल्टी, साफ पानी, वैज्ञानिक स्टीकर (तीव्रा या सुपर-बॉन्ड), नैनो केमिकल, ट्राइकोडर्मा पाउडर।

प्रयोगशाला विधि, सरल भाषा में:

1. **घोल तैयार करें:** 1 लीटर पानी में 1-2 मिली स्टीकर अच्छे से मिला लें।
2. **बीज गीले करें:** इस घोल को 1 किलो बीज पर छिड़कें और हाथ से मिलाएँ ताकि सभी बीज समान रूप से गीले हो जाएँ।
3. **नैनो केमिकल डालें:** उपरोक्त चार्ट के अनुसार नैनो केमिकल डालकर फिर से अच्छी तरह मिलाएँ।
4. **ट्राइकोडर्मा लपेटें:** अब ट्राइकोडर्मा पाउडर को बीजों पर धीरे-धीरे बुरकें और मिलाएँ। स्टीकर के कारण यह पाउडर बीज पर मजबूती से चिपक जाएगा।
5. **सुखाएं:** बीजों को छाया में 4-6 घंटे सूखने रखें। धूप में कभी न सुखाएं।
6. **बुवाई:** सूखने के तुरंत बाद (उसी दिन या अगले दिन) बुवाई करें।

बीज उपचार के बाद 10 गोल्डन नियम (अतिरिक्त आवश्यक सामग्री) ये नियम हर किसान को पालन करने चाहिए:

1. **स्टीकर की मात्रा सीमित रखें:** जरूरत से ज्यादा स्टीकर बीजों को चिपचिपा बना सकता है, जिससे बोने में परेशानी होती है।
2. **सूखे बीज ही उपचार करें:** अगर बीज पहले से गीले हैं (बारिश लग गई हो), तो पहले उन्हें छाया में सुखाएं, फिर ट्रीट करें। नहीं तो फफूंद लग जाएगी।
3. **उपचारित बीजों को धूप में न रखें:** ट्राइकोडर्मा जीवित प्राणी है। धूप और 40°C से अधिक तापमान में यह मर जाता है।
4. **एक बार में पूरा बीज ट्रीट करें:** ट्रीट किए हुए और बिना ट्रीट किए बीज को कभी मिक्स न करें। अलग-अलग रखें।
5. **रासायनिक दवा के साथ ट्राइकोडर्मा न डालें:** अगर आपने रसायनिक दवा (जैसे थीरम, कार्बेन्डाजिम) डालनी है, तो ट्राइकोडर्मा को 7 दिन बाद डालें। साथ में डालने से ट्राइकोडर्मा मर जाएगा।
6. **बीज उपचार के 24 घंटे के अंदर बोएं:** जितनी जल्दी बीज मिट्टी में जाएगा, उतना अच्छा। देरी होने पर दवा का असर कम हो जाता है।
7. **बीज को ज्यादा गहरा न बोएं:** उपचारित बीज 2-3 इंच से ज्यादा गहरा न बोएं। नहीं तो दम घुटने से बीज सड़ जाएगा।
8. **पहली सिंचाई हल्की रखें:** ट्रीट किए बीज को ज्यादा पानी न दें। हल्का नम रखें, तेज बारिश से बचाएं।
9. **उपचारित बीज को पशु चारे में न डालें:** ट्राइकोडर्मा मनुष्य और पशुओं के लिए हानिकारक नहीं है, फिर भी बीज उपचार के बाद बचे बीजों को चारे में न डालें।
10. **हाथ दस्ताने पहनकर काम करें:** नैनो केमिकल्स सुरक्षित हैं, फिर भी आदत डालें कि दवा लगाते समय हाथों में दस्ताने और मुंह पर मास्क रहे।

अतिरिक्त वैज्ञानिक जानकारी (Bonus Scientific Tips)

नैनो केमिकल्स के फायदे

कम मात्रा, ज्यादा असर: नैनो केमिकल्स सामान्य उर्वरक का सिर्फ 10% हिस्सा होते हैं, लेकिन असर 100 गुना ज्यादा होता है।

धीरे-धीरे रिलीज: ये मिट्टी में धीरे-धीरे घुलते हैं, जिससे पौधे को लंबे समय तक पोषण मिलता है।

पर्यावरण हानि नहीं: आ रसायनों की तुलना में ये जमीन और पानी को कम प्रदूषित करते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कृषि में जैविक खादों का उपयोग

डॉ. सुनील नरबरिया विभागाध्यक्ष, कृषि विस्तार शिक्षा विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

डॉ. एन.बी. पटेल सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, महासमुंद (छ.ग.)

आज के आधुनिक कृषि युग में अधिक उत्पादन की इच्छा से किसानों ने लंबे समय तक रासायनिक उर्वरकों का अधिक उपयोग किया है। शुरुआत में इससे उत्पादन बढ़ा, लेकिन लगातार उपयोग से मिट्टी की उर्वरता, जलधारण क्षमता और सूक्ष्म जीवों की संख्या पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इसलिए अब कृषि में रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खादों का उपयोग बहुत महत्वपूर्ण हो गया है।

जैविक खाद वे खाद हैं जो पौधों, पशुओं और प्राकृतिक अवशेषों से तैयार की जाती हैं। जैसे– गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, नीम खली और जैव उर्वरक। ये मिट्टी को केवल पोषण ही नहीं देतीं बल्कि उसकी गुणवत्ता भी सुधारती हैं।

रासायनिक उर्वरकों को जैविक खाद से कैसे बदला जा सकता है?

1. गोबर की खाद और कंपोस्ट का उपयोग

गाय-भैंस के गोबर, खेत के अवशेष, पत्तियाँ और रसोई के जैविक कचरे से कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है। इससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ बढ़ते हैं और पौधों को धीरे-धीरे पोषक तत्व मिलते हैं।

2. वर्मी कम्पोस्ट अपनाना

केंचुओं द्वारा तैयार वर्मी कम्पोस्ट पौधों के लिए बहुत लाभकारी होती है। इसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश के साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी मिलते हैं। इससे मिट्टी भुरभुरी बनती है और जड़ों का विकास अच्छा होता है।

3. हरी खाद का प्रयोग

ढैंचा, सनई और मूंग जैसी फसलें खेत में उगाकर मिट्टी में मिला दी जाती हैं। इससे मिट्टी में प्राकृतिक नाइट्रोजन बढ़ती है और रासायनिक यूरिया की जरूरत कम होती है।

4. फसल अवशेषों का पुनः उपयोग

पराली या फसल के बचे हुए हिस्सों को जलाने के बजाय कम्पोस्ट बनाकर खेत में मिलाना चाहिए। इससे मिट्टी की संरचना सुधरती है और पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है।

5. जैव उर्वरकों का प्रयोग

राइजोबियम, एजोटोबैक्टर और पीएसबी जैसे जैव उर्वरक पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने में मदद करते हैं। भारत सरकार की जानकारी के अनुसार कम्पोस्ट या वर्मी कम्पोस्ट के साथ जैव उर्वरकों के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की जरूरत काफी कम हो सकती है।

6. एकदम नहीं, धीरे-धीरे बदलाव

रासायनिक उर्वरकों को तुरंत पूरी तरह बंद करने की बजाय चरणबद्ध तरीके से कम करना बेहतर रहता है। पहले जैविक खाद बढ़ाएँ और रासायनिक खाद की मात्रा धीरे-धीरे घटाएँ।

जैविक खादों के लाभ

1.मिट्टी की उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है।,2. मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है। 3. सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ती है। 4. फसल की गुणवत्ता और स्वाद बेहतर होता है।5. उत्पादन टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल बनता है। 6. खेती की लागत लंबे समय में कम हो सकती है।

निष्कर्ष

रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खादों का उपयोग टिकाऊ कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इससे मिट्टी स्वस्थ रहती है, पर्यावरण सुरक्षित रहता है और किसानों को लंबे समय तक बेहतर उत्पादन मिलता है। आज की आवश्यकता यही है कि किसान जैविक खादों और संतुलित पोषण प्रबंधन को अपनाकर खेती को अधिक लाभकारी और टिकाऊ बनाएं।

उद्यानिकी का विस्तार बनेगा कृषि वर्ष में किसानों की समृद्धि का आधार

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि वर्ष 2026 को कृषक कल्याण वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। प्रदेश में कृषि एवं उससे जुड़ी संबद्ध गतिविधियों को बढ़ावा देने की व्यापक कार्य योजना पर अमल जारी हे। कृषि वर्ष में विशेष रूप से उद्यानिकी फसलों के क्षेत्र विस्तार को प्राथमिकता देते हुए प्रदेश में एक लाख 32 हजार 147 हैक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र में उद्यानिकी फसलों का विस्तार करने का महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया गया है। हमारा उद्देश्य किसानों को परंपरागत खेती के साथ अधिक लाभकारी उद्यानिकी गतिविधियों से जोड़कर उनकी आय में उल्लेखनीय वृद्धि सुनिश्चित करना है। उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग द्वारा तैयार की गई कार्य योजना के अनुसार फल फसलों के क्षेत्र में 18 हजार हैक्टेयर, सब्जी उत्पादन में 54 हजार हैक्टेयर, मसाला फसलों में 56 हजार हैक्टेयर, पुष्प उत्पादन में 3 हजार 500 हैक्टेयर, औषधीय फसलों में 600 हैक्टेयर तथा संरक्षित खेती में 47 हैक्टेयर क्षेत्र वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है। प्रदेश सरकार का मानना है कि बदलते कृषि परिदृश्य में उद्यानिकी फसलें किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने का सबसे प्रभावी माध्यम बन सकती हैं।

मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कृषि वर्ष की अवधारणा को केवल पारंपरिक खेती तक सीमित न रखते हुए पशुपालन, मत्स्य पालन, दुग्ध उत्पादन तथा उद्यानिकी जैसी गतिविधियों को भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा से जोड़ने पर जोर दिया है। शासन की मंशा है कि खेती को बहुआयामी बनाकर किसानों को वर्षभर आय सृजन के अवसर उपलब्ध कराए जाएं। इसी दिशा में उद्यानिकी विभाग किसानों को उन्नत पौध सामग्री, आधुनिक तकनीकी प्रशिक्षण, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई, पॉली हाउस, शेडनेट तथा खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सहायता उपलब्ध करा रहा है। प्रदेश में उद्यानिकी क्षेत्र की लगातार बढ़ती सफलता इस दिशा में सकारात्मक संकेत दे रही है। वर्ष 2022-23 में मध्यप्रदेश में उद्यानिकी फसलों का कुल क्षेत्रफल 25 लाख 96 हजार 793 हैक्टेयर था, जो वर्ष 2025-26 में बढ़कर 28 लाख 60 हजार 952 हैक्टेयर तक पहुंच गया है। इसी प्रकार उत्पादन में भी रिकॉर्ड वृद्धि दर्ज की गई है। वर्ष 2022-23 की तुलना में वर्ष 2025-26 में उद्यानिकी फसलों के उत्पादन में लगभग 37 लाख 68 हजार 200 मीट्रिक टन की वृद्धि हुई है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

खेतों की गहरी जुताई : इस गर्मी करें कीटों और खरपतवारों का जड़ से सफाया

नरेंद्र पाटीदार एम.एससी. (कृषि), मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

प्रस्तावना

जैसे ही गर्मी अपने चरम पर होती है और खेत खाली पड़े होते हैं, अधिकांश किसान आराम करने का मन बनाते हैं। परंतु, अनुभवी किसान जानते हैं कि यह तपती धरती उन्हें एक सुनहरा मौका देती है। यह मौका है–गहरी जुताई का। गर्मी की यह प्रक्रिया आपकी अगली फसल के लिए वरदान साबित हो सकती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ अच्छी फसल उत्पादन के लिए खेत की सही तैयारी सबसे महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। किसान भाई अक्सर खाद, बीज और सिंचाई पर अधिक ध्यान देते हैं, लेकिन खेत की गहरी जुताई को नजरअंदाज कर देते हैं। जबकि गर्मी के मौसम में की गई गहरी जुताई खेत की सेहत सुधारने, कीटों और खरपतवारों को नियंत्रित करने तथा अगली फसल की उत्पादकता बढ़ाने का सबसे प्रभावी कृषि उपाय है।

गर्मी के दिनों में तेज धूप और अधिक तापमान खेत में छिपे हानिकारक कीटों, उनके अंडों, रोगजनक जीवाणुओं तथा खरपतवारों के बीजों को नष्ट करने में मदद करते हैं। यदि इस समय खेत की गहरी जुताई की जाए, तो मिट्टी की ऊपरी और निचली परतें उलट जाती हैं, जिससे कीट और खरपतवार धूप के संपर्क में आकर नष्ट हो जाते हैं।

गर्मी में जुताई क्यों जरूरी है? (The Science Behind Summer Ploughing)

हम अक्सर फसल कटने के बाद जुताई में देरी कर देते हैं। लेकिन विज्ञान कहता है कि मई-जून की तपती दोपहरी में की गई जुताई सबसे लाभकारी होती है। इस समय सूर्य की तपन जमीन को अंदर तक गर्म कर देती है। जब हल या ट्रैक्टर की मूसल जमीन को 6-8 इंच से भी अधिक गहरा पलटती है, तो नीचे दबी हुई परतें ऊपर आ जाती हैं। जब खेत को सामान्य जुताई की तुलना में अधिक गहराई तक पलटा जाता है, तो उसे गहरी जुताई कहा जाता है। यह कार्य आमतौर पर मिट्टी पलटने वाले हल (Mould Board Plough) या डिस्क प्लाऊ की सहायता से 20-30 सेंटीमीटर गहराई तक किया जाता है। गहरी जुताई मुख्यतः गर्मी के मौसम में की जाती है ताकि सूर्य की तेज किरणों का पूरा लाभ मिल सके।

गहरी जुताई के प्रमुख लाभ

कीटों का जड़ से सफाया (Elimination of Pests)

क्या आपने कभी सोचा है कि फसल कटने के बाद फुदकते टिड्डे, सफेद मक्खी के अंडे और फुदका (लार्वा) कहाँ चले जाते हैं? वे मिट्टी के अंदर 2-4 इंच की गहराई में प्यूपा (कोष) या अंडे के रूप में सुरक्षित पड़े रहते हैं।

गहरी जुताई कैसे काम करती है

जब आप गर्मी में गहरी जुताई करते हैं, तो यह खेत

की मिट्टी को पूरी तरह पलट देती है। फसल के अवशेष, खरपतवार के बीज और कीटों के कोष नीचे से ऊपर आ जाते हैं। अब 45-50 डिग्री सेल्सियस की चिलचिलाती धूप और लू इन कोषों को अंदर से झुलसा देती है।

फुदका (White Grub): गन्ना और सब्जियों का दुश्मन, यह मर जाता है।

तना छेदक (Stem Borer): धान का सबसे खतरनाक कीट, इसकी सुप्तावस्था नष्ट हो जाती है।

सूंडी (Caterpillar): यह भी नहीं बच पाती।

एक प्रयोग से पता चला है कि गर्मी में गहरी जुताई करने से अगली फसल में कीटनाशकों की 30-40% खपत घट सकती है। यानी कम लागत, अधिक लाभ।

खरपतवारों का आत्मविश्वास डगमगाना (Weed Management)- मूंगफली, सोयाबीन या मक्का की फसल में सबसे बड़ी परेशानी है–मोथ (Cyperus rotundus) या दूब (Cynodon dactylon)। ये खरपतवार जड़ के एक छोटे से टुकड़े से भी उग आते हैं।

गहरी जुताई इनका "आत्मविश्वास" तोड़ देती है-

1.धूप में झुलसना: जब मूसल इन खरपतवारों की जड़ों को ऊपर फेंकती है, तो तेज धूप और गर्मी इन्हें सुखा देती है।

2.जड़ों का टूटना: गहरी जुताई से मिट्टी के ढेले टूटते हैं, जिससे खरपतवारों की जड़ें नाजुक हो जाती हैं और वे अपने आप मर जाती हैं।

3.बीजों का दबना: कुछ बीज तो नीचे दब जाते हैं, जहाँ से वे ऊपर नहीं आ पाते।

मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार – गहरी जुताई केवल कीट और खरपतवार ही नहीं मारती, बल्कि मिट्टी को भी जवान बनाती है-

वातन (Aeration): गर्मी में जुताई करने से मिट्टी में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है, जो जड़ों के विकास के लिए जरूरी है।

जल धारण क्षमता: जुताई से मिट्टी के कण छोटे होते हैं, जिससे पानी रुकने की क्षमता बढ़ती है।

जैविक खाद का निर्माण: खेत में पड़े फसल अवशेष गलकर प्राकृतिक खाद बनते हैं।

गहरी जुताई करने का सही समय

गहरी जुताई का सबसे उपयुक्त समय अप्रैल से जून के बीच माना जाता है। इस दौरान तापमान अधिक होने से मिट्टी में छिपे कीट एवं खरपतवार तेजी से नष्ट होते हैं। बारिश शुरू होने से पहले यह कार्य पूरा कर लेना चाहिए।

गहरी जुताई करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

* खेत में पर्याप्त नमी होने पर ही जुताई करें।
* बहुत अधिक गीली मिट्टी में जुताई करने से मिट्टी की संरचना खराब हो सकती है।
* हर वर्ष लगातार गहरी जुताई करने के बजाय 2-3 वर्ष के अंतराल पर करना अधिक लाभकारी रहता है।
* जुताई के बाद खेत को कुछ दिनों तक खुला छोड़ दें ताकि धूप का प्रभाव अधिक हो सके।
* मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करें।

आधुनिक कृषि में गहरी जुताई का महत्व

आज के समय में जलवायु परिवर्तन, मिट्टी की उर्वरता में कमी और खरपतवारों की बढ़ती समस्या किसानों के लिए चुनौती बनती जा रही है। ऐसे में गहरी जुताई एक सस्ती, टिकाऊ और वैज्ञानिक कृषि तकनीक के रूप में उभरकर सामने आई है। यह न केवल रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करती है बल्कि मिट्टी के स्वास्थ्य को भी सुधारती है।

निष्कर्ष

गर्मी के मौसम में खेतों की गहरी जुताई किसानों के लिए एक लाभकारी कृषि अभ्यास है। यह खेत को कीटों, रोगों और खरपतवारों से मुक्त करने के साथ-साथ मिट्टी की गुणवत्ता सुधारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि किसान भाई वैज्ञानिक तरीके से गहरी जुताई अपनाएँ, तो वे कम लागत में अधिक और बेहतर उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए इस गर्मी अपने खेतों की गहरी जुताई अवश्य करें और स्वस्थ, उन्नत एवं अधिक उत्पादन वाली खेती की दिशा में कदम बढ़ाएँ।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

नील हरित शैवाल

किसानों के लिए लाभकारी जैव उर्वरक

डॉ. थानेश्वर कुमार, डॉ. अंजली पटेल
डॉ. मनमोहन बिसेन
(सहायक प्राध्यापक) कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, पखांजूर, कांकेर (छ.ग.)
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

नील हरित शैवाल एक विशेष किस्म की काई है, नील हरित शैवाल स्वतंत्र रूप से पाये जाने वाले ऐसे जीवाणु होते हैं जो पेड़ पौधों की तरह प्रकाश संश्लेषण करते हुए वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करने का काम करते हैं। नील हरित शैवाल को साइनो बैक्टीरिया के नाम से भी जाना जाता है। नील हरित शैवाल वायुमंडल की नाइट्रोजन को स्थिर करके मिट्टी में उपलब्ध कराते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है तथा रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है। आज के समय में जैविक खेती एवं टिकाऊ कृषि ;नेजंपदंइसम ।हतपबनसजनतमद्ध में नील हरित शैवाल का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। यह किसानों के लिए कम लागत वाला और पर्यावरण के अनुकूल उर्वरक है।

आधुनिक कृषि में महत्व

आज के समय में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। ऐसे में नील हरित शैवाल जैसे जैव उर्वरकों का महत्व बढ़ गया है। जैविक खेती, प्राकृतिक खेती तथा टिकाऊ कृषि प्रणाली में इनका उपयोग पर्यावरण संरक्षण एवं लागत कम करने में सहायक है एवम मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है तथा रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है।

किसानों के लिए नील हरित शैवाल के लाभ

1. **रासायनिक उर्वरकों की बचत**-नील हरित शैवाल नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं, जिससे यूरिया की आवश्यकता कम होती है। धान के खेत में इसे प्रयोग करने से फसल को एक अनुमान के मुताबिक लगभग 20 से 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।
2. **कम लागत**-इसका उत्पादन किसान स्वयं कम खर्च में कर सकते हैं।
3. **मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि**-मिट्टी की जैविक गतिविधियाँ एवं सूक्ष्मजीव संख्या बढ़ती है।
4. **फसल उत्पादन में वृद्धि**-धान की उपज एवं पौधों की वृद्धि में सुधार होता है।
5. **पर्यावरण संरक्षण**-रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम होने से भूमि एवं जल प्रदूषण कम होता है।
6. **मिट्टी की संरचना में सुधार**-मिट्टी की जल धारण क्षमता एवं संरचना बेहतर होती है

नील हरित शैवाल बनाने की विधि

नील हरित शैवाल का उत्पादन किसान अपने खेत या घर के पास कम लागत में आसानी से कर सकते हैं।

आवश्यक सामग्री

1.उथला गड्ढा या सीमेंट की टंकी
2.उपजाऊ मिट्टी 10 से 15 किलोग्राम
3.पानी
4.सुपर फॉस्फेट 200 ग्राम

5.गोबर की खाद 1 से 2 किलोग्राम
6.नील हरित शैवाल कल्चर 500 ग्राम से 1 किलोग्राम
7.कीटनाशक रहित स्थान

उत्पादन की प्रक्रिया

1. **गड्ढा तैयार करना**- सबसे पहले लगभग 10 म 5 फीट आकार का उथला गड्ढा तैयार करें। गहराई लगभग 15ट्20 सेंटीमीटर रखें।यदि गड्ढा उपलब्ध न हो तो प्लास्टिक शीट बिछाकर भी उत्पादन किया जा सकता है।
2. **मिट्टी एवं पानी भरना**- गड्ढे में 10-15 किलोग्राम उपजाऊ मिट्टी डालें। इसके बाद पानी भरें ताकि पानी की गहराई लगभग 5-10 सेंटीमीटर रहे।
3. **उर्वरक मिलाना**- अब इसमें सुपर फॉस्फेट एवं गोबर की खाद मिलाएँ। इससे शैवाल की वृद्धि तेजी से होती है।
4. **शैवाल कल्चर डालना**- अब नील हरित शैवाल का स्टार्टर कल्चर पूरे गड्ढे में समान रूप से फैला दें।
5. **धूप एवं देखभाल**- गड्ढे को खुली धूप में रखें। 7-10 दिनों के भीतर पानी की सतह पर हरे-नीले रंग की परत दिखाई देने लगेगी। ध्यान रखें कि पानी सूखने न पाए। आवश्यकता अनुसार पानी डालते रहें।
6. **शैवाल संग्रह करना**-10-15 दिनों बाद जब शैवाल की मोटी परत बन जाए तो पानी को सूखने दें। सूखने के बाद शैवाल को इकट्ठा करके छाया में सुखाएँ। इसके बाद इसे पैकेट में भरकर संग्रहित कर सकते हैं।

खेत में उपयोग की विधि

धान की खेती में उपयोग

1. धान रोपाई के 7-10 दिन बाद खेत में पानी भरें।
2. प्रति हेक्टेयर लगभग 10-15 किलोग्राम सूखा नील हरित शैवाल खेत में फैलाएँ।
3. खेत में 5-7 सेंटीमीटर पानी बनाए रखें।

कुछ दिनों में शैवाल खेत में फैल जाएगा और नाइट्रोजन स्थिरीकरण शुरू कर देगा।

नील हरित शैवाल उपयोग करते समय सावधानियाँ

1. खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखें।
2. कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग न करें।
3. शैवाल उत्पादन के लिए साफ एवं धूप वाला स्थान चुनें।
4. अत्यधिक गहरे पानी में शैवाल की वृद्धि कम होती है।
5. उत्पादन के दौरान पानी सूखने न दें।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

नवजात बछड़े के लिए पहले दूध कोलेस्ट्रम का महत्व

डॉ. जागृति कृषान, डॉ. रजनी फ्लोरा कुजूर
डॉ. भारती साहू, डॉ.के. आर. बघेल
डॉ. अंकिता ठाकरे
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय अंजोरा, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनू विश्वविद्यालय दुर्ग 491001 (छ.ग.)

कोलेस्ट्रम वह पहला दूध होता हैं जो बच्चे के जन्म के तुरंत बाद निकलता है। यह गाढ़ा, पीले रंग, और पोषक तत्वों से भरपूर होता हैं। इसे नवजात पशु के लिए पहली दवा भी कहा जाता हैं। कोलेस्ट्रम में दूध से प्रोटीन एवं विटामिन की मात्रा 5 गुना अधिक होती हैं। इसमें विटामिन, खनिज, ऊर्जा, प्रतिरक्षागलोबुलिन (एंटीबाडी) तथा वृद्धि कारक अधिकता में होते हैं। इसमें मुख्य रूप से प्रतिरक्षागलोबुलिन आई जी 85 से 95%, आईएम 7% एवं आईए 5% होता हैं। यह शारारिक वृद्धि एवं प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता हैं।

कोलेस्ट्रम क्यों जरूरी है?

रोगों से सुरक्षा देता है: कोलेस्ट्रम में प्रतिरक्षागलोबुलिन (एंटीबाडी) होता हैं, जो नवजात बछड़े को बीमारीयों से बचातें हैं। जुगाली करने वाले पशुओं की अपरा (प्लासेंटा) की संरचना के कारण प्रतिरक्षागलोबुलिन (एंटीबाडी) अपरा (प्लासेंटा) से गर्भ में पोषित बच्चे तक पहुंच नही पाता हैं। जिसके कारण जन्म लिए नवजात बछड़े में प्रतिरक्षा प्रणाली का अभाव होता हैं। अतः बछड़े मे स्वयं का प्रतिरक्षागलोबुलिन (एंटीबाडी) जन्म के कुछ सप्ताह तक नही होता हैं।

ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत

जन्म के बाद बच्चे कमजोर होते हैं। कोलेस्ट्रम में प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में होता है, जो नवजात बछड़े को ऊर्जा देता है, और शरीर को गर्म रखने में मदद करता है।

पाचन तंत्र को मजबूत बनाता है

यह बच्चे के पाचन तंत्र को सही तरीके से काम करने में मदद करता है। कोलेस्ट्रम आंतो की आंतरिक परत को सील करने और मरम्मत करने मे मदद करता हैं। यह लीकी गट सिंड्रोम जैसी समस्याओं को कम करने में प्रभावी हैं, जिसमें पेट के स्वास्थय में सुधार होता हैं। कोलेस्ट्रम में मौजूद एंटी-इंफ्लामेटरी आंतो की सूजन को कम करते हैं। कोलेस्ट्रम एक प्राकृतिक प्रीबायोटीक एवं प्रोबायोटीक के रूप मे काम करता है, जो आंतो में अच्छे बैक्टरिया के संतुलन को बनाए रखता हैं। यह आंतो की कार्यक्षमता को बढ़ाकर भोजन से पोषक तत्वों के अवशोषण को बेहतर बनता हैं। कोलेस्ट्रम में प्रतिरक्षागलोबुलिन (एंटीबाडी) और लैक्टोफेरिन होते हैं, जो बैक्टीरिया एवं वायरस से बचाते हैं। यह आंतो की दीवारों को मजबूत कर पाचन से जुड़ी समस्याओं को ठीक करने में मदद करता है।

मृत्यु दर कम करता है

जिन पशु के बच्चो को समय पर कोलेस्ट्रम मिलता हैं, उनकी जीवित रहने की संभावना अधिक होती हैं। इस समय बछड़े को निष्क्रिय प्रतिरक्षा (passive immunity) की आवश्यकता होती हैं, जो उसे जन्म देने वाली गाय के कोलेस्ट्रम से प्राप्त होता हैं। निष्क्रिय प्रतिरक्षा (passive immunity) बछड़े को मां से मिलने वाली वह सुरक्षा हैं, जो उसे बीमारीयों से बचाता है तथा उसके अपरिपक्व प्रतिरक्षा प्रणाली को क्रियान्वित करता हैं। यह बछड़े को मां से अलग करने के पूर्व के मृत्युदर को कम करता हैं। बछड़े को मां से अलग करने के बाद भी लंबे समय तक प्रतिरक्षा प्रणाली को बनाये रखता हैं, जिसके कारण बछड़े के वजन मे वृद्धि, पहली बार बच्चे देने की उम्र में कमी, पहले /दूसरे ब्यात में दूध उत्पादन की क्षमता में वृद्धि एवं समूह के प्रतिरक्षा प्रणाली में वृद्धि होता हैं।

निष्क्रिय प्रतिरक्षा (passive immunity) के असफल होने पर बीमारियों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती हैं। जो उसे जन्म देने वाली गाय के कोलेस्ट्रम से ही प्राप्त हो सकता हैं। कोलेस्ट्रम ना मिलने पर रोगप्रतिरोधकता क्षमता में कमी हो जाती हैं, साथ ही मृत्युदर बढ़ जाता हैं।

कब और कितना देना चाहिए

नवजात बछड़ो को अपने जीवन के पहले तीन से छह घंटों के भीतर कम से कम 100 से 200 ग्राम प्रतिरक्षागलोबुलिन आई जी का सेवन कराना चाहिए। जन्म के कुछ घंटो के भीतर उन्हे कम से कम 2 लीटर अच्छी गुणवत्ता वाला कोलेस्ट्रम पिलाना चाहिए। सफलतापूवर्क निष्क्रिय प्रतिरक्षा (passive immunity) बछड़े को मां से स्थांनातरित करने के लिए कोलेस्ट्रम की गुणवता, मात्रा एवं समय का ध्यान देना अति आवश्यक होता हैं। कोलेस्ट्रम की गुणवता मातृत्व प्रतिरक्षागलोबुलिन की सांद्रता एवं अन्य कारको पर निर्भर करती हैं। इसकी गुणवता पहली बार दूसरे बार दुहने में अधिक होता है। प्रतिरक्षागलोबुलिन गाय के रक्त से थन के ग्रंथियो में 4 से 5 सप्ताह ब्याहने के पूर्व स्थांतरित होती हैं तथा ब्याहने के समय यह स्थांतरण रूक जाता हैं। दूसरे तथा तीसरे ब्यात के कोलेस्ट्रम में प्रतिरक्षागलोबुलिन की मात्रा अधिक होती है। क्यो कि समय के साथ अधिक समय तक रोगाणुओं के संपर्क में आने से गाय की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत होती जाती हैं

कोलेस्ट्रम की गुणवता को बनाये रखने बछड़े के जन्म के तुरंत बाद देना चाहिए, क्यों कि बछड़ा के द्वारा लिए गया कोलेस्ट्रम का आंत में अवशोषण दिये गए समय पर निर्भर करता है, कुछ हि रिसेपटार हि कोलेस्ट्रम के प्रतिरक्षागलोबुलिन से जुड़ता हैं। 12 घंटे आंत की कोशिकाएं परिपक्व होने के कारण आंत में प्रतिरक्षागलोबुलिन का अवशोषण कम हो जाता हैं तथा 24 घंटे के बाद आंत में अवशोषण क्रियाविधि निष्क्रिय हो जाती हैं, इसके अलावा इस समय के बाद एबोमेसम से अम्ल का स्त्रावण प्रारंभ हो जाता हैं, जो प्रतिरक्षागलोबुलिन को नष्ट करता हैं। इसलिए जन्म के पश्चयात कोलेस्ट्रम पिलाने में प्रत्येक आधे घंटे की देरी से प्रतिरक्षागलोबुलिन स्थांतरण 5 प्रतिशत कम हो जाता है। पहले दिन बच्चे को उसके शरीर के वनज का लगभग 10 प्रतिशत कोलेस्ट्रम देना चाहिए । 3 से 4 दिन तक कोलेस्ट्रम पिलाना लाभदायक होता हैं।

कोलेस्ट्रम ना मिलने के नुकसान

* बच्चे की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है * बीमारियां जल्दी लगती है। * विकास धीमा हो जाता हैं। * मृत्यु का खतरा बढ़ जाता हैं।

अतः नवजात बछड़ो के लिए कोलेस्ट्रम के महत्व को देखते हुए, किसानो को सफल बछड़ा पालन के लिए उचित कोलेस्ट्रम प्रबंधन का पालन करना चाहिए। इससे बछड़ो के समग्र स्वास्थय को भी बढ़ता है और विभिन्न हानिकारक रोगाणुओं से सुरक्षा प्रदान करके मृत्युदर और रूग्णता को कम करता हैं।

कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान
हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है
प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094
भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
10/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

केले की टिशू कल्चर खेती में 'ग्रैंड नैन (G-9)' किस्म की लोकप्रियता

डॉ. सुमन रावटे (वैज्ञानिक)
डॉ. ज़ेनू झा (समन्वयक), कृषि-औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी में उत्कृष्टता केन्द्र (सीओई-एआईबी), इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

भारत में केला एक अत्यंत महत्वपूर्ण फल है, जो किसानों की आय और पोषण सुरक्षा दोनों में योगदान देता है। हाल के वर्षों में छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश में टिशू कल्चर तकनीक से तैयार पौधों की खेती ने नई दिशा दी है। इनमें 'ग्रैंड नैन' किस्म विशेष रूप से लोकप्रिय हुई है। यह किस्म अपनी उच्च उत्पादन क्षमता, रोग प्रतिरोधकता और बाजार में बेहतर स्वीकार्यता के कारण किसानों की पहली पसंद बन चुकी है।

'ग्रैंड नैन' किस्म की प्रमुख विशेषताओं में पौधे की अपेक्षाकृत कम ऊँचाई, समान आकार के फल, लंबी शेल्फ लाइफ और रोगों के प्रति सहनशीलता शामिल है। इस किस्म से प्रति पौधा अधिक फल प्राप्त होते हैं और बाजार में इसकी मांग लगातार बनी रहती है। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ के दुर्ग, राजनांदगांव और रायपुर जिलों में तथा मध्यप्रदेश के खंडवा, बुरहानपुर और होशंगाबाद क्षेत्रों में इसकी खेती तेजी से बढ़ रही है। टिशू कल्चर तकनीक ने इस किस्म की गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता को और भी बेहतर बनाया है। इस तकनीक से तैयार पौधे रोगमुक्त होते हैं, जिनमें वृद्धि और उत्पादन की एकरूपता रहती है। कम समय में हजारों पौधे तैयार किए जा सकते हैं, जिससे बड़े पैमाने पर खेती संभव हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं, जो न केवल घरेलू बाजार बल्कि निर्यात के लिए भी उपयुक्त होते हैं।

छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश में टिशू कल्चर केले की खेती ने किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया है। उत्पादन में वृद्धि और बाजार में बेहतर मूल्य मिलने से यह क्षेत्र केले की उन्नत खेती का प्रमुख केंद्र बनता जा रहा है। किसानों के लिए सबसे बड़ा लाभ यह है कि टिशू कल्चर से तैयार 'ग्रैंड नैन' पौधे एकसमान और रोगमुक्त होते हैं, जिससे फसल का जोखिम कम हो जाता है। पारंपरिक खेती में अक्सर पौधों में रोग फैलने से भारी नुकसान होता है, लेकिन टिशू कल्चर पौधों के प्रयोग से किसान स्थिर और सुरक्षित उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनकी आय में निरंतरता बनी रहती है और खेती अधिक टिकाऊ बनती है।

दूसरा महत्वपूर्ण लाभ यह है कि टिशू कल्चर पौधों से उत्पादन क्षमता बढ़ जाती है। एक ही क्षेत्रफल में अधिक पौधे लगाए जा सकते हैं और प्रत्येक पौधे से अधिक फल प्राप्त होते हैं। इससे किसानों को न केवल स्थानीय बाजार में अच्छी कीमत मिलती है बल्कि निर्यात की संभावना भी बढ़ती है। उच्च गुणवत्ता और एकरूपता वाले केले अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम होते हैं, जिससे किसानों की आय कई गुना बढ़ सकती है।

इसके अतिरिक्त, टिशू कल्चर आधारित 'ग्रैंड नैन' किस्म ने कृषि अनुसंधान और औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी को भी नई दिशा दी है। यह किस्म किसानों के लिए एक भरोसेमंद विकल्प साबित हो रही है, क्योंकि इससे उन्हें स्थिर आय और बेहतर बाजार अवसर प्राप्त होते हैं। साथ ही यह तकनीक ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार सृजन का माध्यम भी बन रही है, जिससे कृषि क्षेत्र में नवाचार और उद्यमिता को बढ़ावा मिल रहा है।

भविष्य की दृष्टि से देखा जाए तो 'ग्रैंड नैन' किस्म का विस्तार न केवल किसानों की आय बढ़ाएगा बल्कि राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करेगा। यदि इस किस्म की खेती को वैज्ञानिक प्रबंधन, उचित विपणन और सरकारी सहयोग के साथ जोड़ा जाए तो छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश देश में केले की उन्नत खेती के अग्रणी राज्य बन सकते हैं।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

ऑयस्टर मशरूम की खेती

डॉ. निशा ठाकुर (सहायक प्राध्यापक) (पौध रोग विज्ञान) उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र,अर्जुन्दा, बालोद (छ.ग.)

डॉ. पायल देवी चंद्राकर सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान) उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र,अर्जुन्दा, बालोद (छ.ग.)

ऑयस्टर मशरूम की खेती करना अपेक्षाकृत आसान और कम लागत वाला व्यवसाय है। अगर सही तरीके से किया जाए तो यह अच्छा मुनाफा दे सकता है। इसके लिए गेहूं/धान के भूसे को उपचारित कर, बीज के साथ पॉलिथीन बैग में 20-25 डिग्री तापमान और 70-85% नमी वाले अंधेरे कमरे में उगाया जाता है।

आवश्यक सामग्री

* गेहूं/धान का भूसा/पुआल * मशरूम स्पॉन (बीज) * प्लास्टिक बैग * साफ पानी * फॉर्मालिन या गर्म पानी * बाविस्टिन

विधि

कच्चा माल तैयार करना - गेहूं या धान के सूखे भूसे/पुआल को 1-2 इंच के छोटे टुकड़ों में काट लें।

उपचार

भूसे को 12 घंटे के लिए फॉर्मेलिन (125 मिली.) और बाविस्टिन (7.5-8 ग्राम) के घोल में 100 लीटर पानी के साथ भिगोएं। इससे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। वैकल्पिक रूप से, गर्म पानी (65-80°) में 1-2 घंटे उबालें।

सुखाना

उपचारित भूसे को साफ जगह पर फैलाकर सुखाएं, ताकि 70% नमी बची रहे (मुट्ठी में दबाने पर पानी न टपके, पर नमी महसूस हो)।

बीज डालना

साफ की गई पॉलिथीन (12इ18 इंच) में 3-4 इंच उपचारित भूसे की परत बिछाएं और किनारों पर बीज डालें। 3-4 परतें बनाकर बैग को 10-15 किलोग्राम भूसे से भरें।

पैकिंग

बैग का मुंह बंद कर दें और उसमें 8-12 छोटे छेद कर दें ताकि हवा का संचार हो सके।

ऊष्मायन

इन बैगों को 20-25 दिनों के लिए 23-25एब् तापमान वाले अंधेरे कमरे में रखें, जब तक कि भूसा पूरी तरह सफेद न हो जाए।

फलन और देखभाल

जब बैग पूरी तरह सफेद हो जाएं, तो पन्नियों को काट कर हटा दें। प्रतिदिन 2-3 बार पानी का हल्का छिड़काव करें।

कटाई

3-4 दिनों में मशरूम निकलने लगते हैं। जब किनारों से मुड़ने लगें, तो क्लॉक वाइज घुमाकर तोड़ें। पहली कटाई के 7-10 दिन बाद दूसरी फसल मिल सकती है।

ध्यान रखने वाली बातें

* साफ-सफाई बहुत जरूरी है
* ज्यादा नमी या पानी जमा न होने दें
* कमरे में हवा का अच्छा प्रवाह होना चाहिए
* संक्रमित बैग तुरंत हटा दें
* तापमान 20°C- 25°C
* आर्द्रता 70-85%
* समय 30-35 दिनों के भीतर उत्पादन

जैन बीज भण्डार
एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

फॉस्फेटिक उर्वरकों की बचत के प्रभावी उपाय

जैव उर्वरक, बैंड प्लेसमेंट एवं कार्बनिक पदार्थों के समन्वित उपयोग से बढ़ाएं फॉस्फोरस उपयोग दक्षता

डॉ. आदित्य शुक्ल अतिथि शिक्षक, एग्रोनॉमी, सी.ए.आर.एस., महासमुंद आई.जी.के.वी., रायपुर (छ.ग.)

डॉ. आकांक्षा शुक्ला जे.आर.एफ., पादप आणविक जीवविज्ञान एवं जैव प्रौद्योगिकी विभाग आई.जी.के.वी., रायपुर (छ.ग.)

भारतीय कृषि में फॉस्फोरस **(Phosphorus)** प्रमुख पोषक तत्वों में से एक है। यह पौधों की जड़ वृद्धि, ऊर्जा निर्माण, पुष्पन, बीज निर्माण तथा प्रारंभिक वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। धान, गेहूं, मक्का, दलहन एवं तिलहन जैसी लगभग सभी प्रमुख फसलों में फॉस्फोरस की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वर्तमान समय में डीएपी तथा अन्य फॉस्फेटिक उर्वरकों की कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर, खेत में डाले गए फॉस्फेटिक उर्वरकों का बड़ा भाग मिट्टी में स्थिर होकर अनुपलब्ध हो जाता है। सामान्यतः फसल केवल 15-25 प्रतिशत फॉस्फोरस ही उपयोग कर पाती है। शेष भाग मिट्टी में कैल्शियम, लौह एवं एल्युमिनियम के साथ अघुलनशील यौगिक बनाकर फिक्स हो जाता है।

ऐसी स्थिति में फॉस्फेटिक उर्वरकों का वैज्ञानिक एवं कुशल उपयोग अत्यंत आवश्यक हो गया है। कई शोधों में यह पाया गया है कि यदि कुछ प्रभावी तकनीकों को अपनाया जाए तो फॉस्फेटिक उर्वरकों की खपत कम करते हुए भी उत्पादन को बनाए रखा जा सकता है। इनमें सबसे अधिक प्रभावी उपाय हैं–

1. बैंड प्लेसमेंट विधि
2. फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) का उपयोग
3. कार्बनिक पदार्थों का समन्वित प्रयोग

1. बैंड प्लेसमेंट विधि: कम उर्वरक में अधिक लाभ

अधिकांश किसान फॉस्फेटिक उर्वरकों का छिड़काव करके खेत में मिला देते हैं। इस विधि में उर्वरक का बड़ा भाग मिट्टी के संपर्क में आकर शीघ्र स्थिर हो जाता है। इसके विपरीत यदि उर्वरक को बीज या पौधों की जड़ों के पास कतारों में डाला जाए, तो इसे बैंड प्लेसमेंट कहा जाता है। यह फॉस्फेटिक उर्वरकों की बचत का सबसे प्रभावी एवं वैज्ञानिक तरीका माना जाता है।

मुख्य लाभ

* उर्वरक की बचत * प्रारंभिक वृद्धि बेहतर
* फिक्सेशन कम * मजबूत जड़ विकास

2. फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB): प्रकृति की मुफ्त उर्वरक फैक्ट्री

फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु ऐसे सूक्ष्मजीव हैं जो मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं।

मुख्य जीवाणु

* Bacillus megaterium
* Pseudomonas striata

मुख्य लाभ:

* रासायनिक उर्वरक की आवश्यकता कम
* मिट्टी की जैविक सक्रियता में वृद्धि
* पर्यावरण अनुकूल तकनीक
* दीर्घकालीन मिट्टी स्वास्थ्य सुधार

3. कार्बनिक पदार्थों का उपयोग

गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, कम्पोस्ट एवं हरी खाद जैसे कार्बनिक स्रोत फॉस्फेटिक उर्वरकों की दक्षता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कार्बनिक पदार्थों के विघटन से बनने वाले कार्बनिक अम्ल फॉस्फोरस के स्थिरीकरण को कम करते हैं।

मुख्य लाभ

* फॉस्फोरस फिक्सेशन कम
* सूक्ष्मजीव गतिविधि बढ़ती है
* मिट्टी संरचना में सुधार
* जलधारण क्षमता में वृद्धि

निष्कर्ष

बैंड प्लेसमेंट, फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु तथा कार्बनिक पदार्थों का समन्वित उपयोग फॉस्फेटिक उर्वरकों की बचत के सबसे प्रभावी उपायों में शामिल हैं। ये तकनीकें न केवल लागत घटाती हैं बल्कि मिट्टी स्वास्थ्य सुधारकर टिकाऊ कृषि को भी बढ़ावा देती हैं। भविष्य की कृषि वही होगी जो ÷कम लागत, अधिक दक्षता एवं बेहतर मिट्टी स्वास्थ्य÷ के सिद्धांत पर आधारित होगी।

'सूखे से अवसर की ओर: बुंदेलखंड क्षेत्र में जीरा की खेती की नई संभावनाएं'

मोहित कुमार खंगार शोधार्थी, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी

आशुतोष शर्मा सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार एवं संचार विभाग, रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी

रोशनी चौरसिया शोधार्थी, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय पूसा, समस्तीपुर बिहार

आयुष कुमार, सचिन यादव शोधार्थी, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा

भारत विश्व में मसालों का प्रमुख उत्पादक एवं निर्यातक देश है। मसाला फसलों में जीरा का विशेष स्थान है, जिसका उपयोग खाद्य, औषधीय एवं औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापक रूप से किया जाता है। परंपरागत रूप से जीरा की खेती राजस्थान और गुजरात तक सीमित रही है, किंतु जलवायु परिवर्तन एवं संसाधन संकट के कारण अब नए क्षेत्रों में इसके विस्तार की आवश्यकता महसूस की जा रही है। ऐसे में यह कहा जा सकता है कि बुंदेलखंड क्षेत्र में जीरा की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है, क्योंकि यहाँ का तापमान एवं जलवायु जीरा उत्पादन के लिए उपयुक्त है।विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया कि जीरा एक कम जल माँग वाली, शुष्क एवं ठंडी जलवायु में उगने वाली मसाला फसल है, जिसकी कृषि आवश्यकताएँ बुंदेलखंड क्षेत्र की रबी ऋतु की परिस्थितियों से काफी हद तक मेल खाती हैं। यह समीक्षा निष्कर्ष निकालती है कि जीरा की खेती बुंदेलखंड क्षेत्र में फसल विविधीकरण, किसानों की आय वृद्धि तथा जलवायु अनुकूल कृषि को बढ़ावा देने का एक व्यवहार्य विकल्प हो सकती है।

बुंदेलखंड क्षेत्र की जलवायु विशेषताएं: बुंदेलखंड क्षेत्र उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में फैला हुआ है। इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषता अर्ध-शुष्क जलवायु, सीमित वर्षा (700-900 मि.मी.), अधिक तापमान और लंबी शीत ऋतु है। रबी मौसम में यहाँ का तापमान सामान्यतः 20-30 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है, जो जीरा की फसल के अंकुरण, वृद्धि एवं विकास के लिए अत्यंत अनुकूल माना जाता है। जीरा की फसल को ठंडी एवं शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है, जबकि अत्यधिक नमी और वर्षा इससे नुकसान पहुँचाती है।

जीरा फसल उत्पादन के आवश्यक घटक : बुंदेलखंड क्षेत्र की शुष्क जलवायु और सीमित जल संसाधनों को देखते हुए जीरा एक उपयुक्त एवं लाभकारी फसल है। चित्र में दर्शाए गए मानों के अनुसार जीरा फसल के लिए लगभग 800 घन मीटर पानी तथा केवल 3ङ्क4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है, जिससे यह कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए आदर्श बनती है। प्रति हेक्टेयर लगभग 120 मानव-दिवस श्रम, 6.8 किलोग्राम बीज, तथा संतुलित मात्रा में 40 किग्रा नाइट्रोजन, 40 किग्रा फास्फोरस और 60 किग्रा पोटाश की जरूरत होती है। खरपतवार नियंत्रण हेतु केवल 0.18 किग्रा रसायन तथा कीट-रोग प्रबंधन के लिए 23 किग्रा पौध संरक्षण सामग्री पर्याप्त होती है, जबकि लगभग 40 इकाई मशीनीकरण से कृषि कार्य सुगम हो जाते हैं। इस प्रकार जीरा फसल कम लागत, कम पानी और बेहतर बाजार मूल्य के कारण बुंदेलखंड क्षेत्र में किसानों की आय बढ़ाने का एक प्रभावी विकल्प है।

जीरा की खेती हेतु तापमान एवं जलवायु की आवश्यकता: जीरा एक रबी मौसम की मसाला फसल है, जिसे ठंडे मौसम में बोया जाता है। इसके सफल उत्पादन के लिए 20-25°C तापमान अंकुरण के समय तथा 25-30°C तापमान वृद्धि एवं दाना बनने के समय उपयुक्त होता है। बुंदेलखंड क्षेत्र में अक्टूबर से मार्च तक यही तापमान सीमा पाई जाती है। इसके अतिरिक्त, जीरा की फसल को अधिक वर्षा की

आवश्यकता नहीं होती, जिससे यह बुंदेलखंड जैसे वर्षा-आश्रित क्षेत्रों के लिए एक आदर्श फसल बन जाती है।

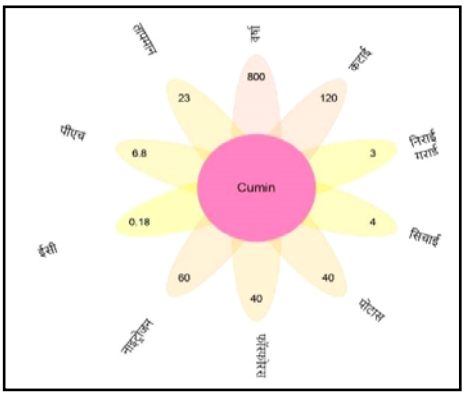

कम जल आवश्यकता एवं संसाधन संरक्षण: जीरा की फसल को केवल 3-4 हल्की सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। बुंदेलखंड जैसे जल-अभावग्रस्त क्षेत्र में यह विशेषता अत्यंत महत्वपूर्ण है। कम जल उपयोग के कारण जीरा की खेती जल संरक्षण में तथा सीमित संसाधनों में भी लाभकारी उत्पादन के प्रति अधिक सहनशील सिद्ध होती है

मृदा उपयुक्तता एवं उत्पादन संभावनाएं: बुंदेलखंड क्षेत्र में पाई जाने वाली बलुई दोमट एवं दोमट मिट्टी, जिसमें जल निकास अच्छा होता है, जीरा की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। जलभराव से मुक्त भूमि जीरा की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होती है। वैज्ञानिक तकनीकों एवं उन्नत किस्मों के प्रयोग से इस क्षेत्र में जीरा की औसत उपज को संतोषजनक स्तर तक बढ़ाया जा सकता है।

बुंदेलखंड क्षेत्र के लिए उपयुक्त जीरा की उन्नत किस्में-बुंदेलखंड की मिट्टी में जल निकासी अच्छी होती है, लेकिन यहाँ की मुख्य चुनौती अचानक बढ़ने वाला तापमान और उकठा रोग है। इन परिस्थितियों में गुजरात जीरा-4 (GC-4) सबसे श्रेष्ठ विकल्प है क्योंकि यह उकठा रोग के प्रति प्रतिरोधी है और इसके दाने मोटे होते हैं, जिससे बाजार में इसकी धाक जमी रहती है। यदि आपके पास सिंचाई के साधन थोड़े सीमित हैं, तो CZC-94 का चुनाव करें; यह किस्म मात्र 100-105 दिनों में पक जाती है, जिससे मार्च की भीषण गर्मी शुरू होने से पहले ही आपकी फसल कट जाएगी और दाना सिकुड़ने का डर नहीं रहेगा। वहीं, अगर आप लंबे समय तक माल को रोककर ऊंचे दामों पर बेचना चाहते हैं, तो RZ-19 लगाएं इसमें प्राकृतिक तेल की मात्रा अधिक होती है, जिससे भंडारण के दौरान इसका वजन और खुशबू कम नहीं होती।

जीरा बुवाई की उन्नत एवं वैज्ञानिक विधि: बुंदेलखंड क्षेत्र में जीरे की सफल बुवाई के लिए 15 से 30 नवंबर का समय सबसे उचित होता है, क्योंकि इस दौरान तापमान बीज के अंकुरण के लिए एकदम अनुकूल रहता है। खेत की 2-3 बार गहरी जुताई कर मिट्टी को पूरी तरह भुरभुरा बना लेना चाहिए और जल निकासी का उचित प्रबंध करना चाहिए ताकि खेत में पानी न भरे। बुवाई से पहले प्रति किलोग्राम बीज को 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम या 6 ग्राम ट्राइकोडर्मा से उपचारित करना अत्यंत आवश्यक है, जो फसल को भविष्य में होने वाले घातक उकठा रोग से बचाता है। बुवाई हमेशा कतारों में करनी चाहिए, जिसमें लाइन से लाइन की दूरी 25-30 सेंटीमीटर हो और बीज को मिट्टी में 1.5 से 2 सेंटीमीटर से अधिक गहरा न दबाएं, अन्यथा छोटा बीज बाहर नहीं निकल पाएगा। बुवाई के तुरंत बाद एक बहुत हल्की सिंचाई करनी चाहिए और उसके 4-5 दिन बाद पुनः एक हल्की सिंचाई (छिटकाव रूप में) करनी चाहिए ताकि मिट्टी की पपड़ी नरम रहे और 10-12 दिनों के भीतर बीज का पूर्ण अंकुरण हो सके।

जीरे की कटाई और मड़ाई की वैज्ञानिक विधि: जीरे की फसल आमतौर पर 100 से 120 दिन में तैयार हो जाती है। जब पौधे और छतरक का रंग हरा से बदलकर भूरा होने लगे और दाने पूरी तरह सख्त हो जाएं, तब समझें कि फसल कटाई के लिए तैयार है। कटाई हमेशा सुबह जल्दी करनी चाहिए जब ओस की वजह से पौधों में थोड़ी नमी हो इससे दाने झड़ते नहीं हैं। पौधों को जड़ से उखाड़ने के बजाय दरांती या हंसिया से जमीन की सतह से काटकर छोटा-छोटा गट्ठर बना लेना चाहिए। उखाड़ने से मिट्टी दानों में मिल जाती है, जिससे जीरे की क्वालिटी खराब हो जाती है और बाजार में दाम कम मिलता है। कटी हुई फसल को खेत में ही साफ सुथरी जगह पर या तिरपाल बिछाकर फैला देना चाहिए। इसे 4-5 दिनों तक अच्छी धूप में सुखाएं। ध्यान रखें कि सुखाते समय दानों पर सीधे धूल न पड़े क्योंकि साफ दाने की ही मार्केटिंग अच्छी होती है। जब फसल पूरी तरह सूख जाए, तब उसे हल्के डंडे से पीटकर या छोटी थ्रेशर मशीन की मदद से दानों को अलग कर लें। थ्रेशर की गति धीमी रखें ताकि दाने टूटने न पाएं। मड़ाई के बाद जीरे को अच्छी तरह उड़ाकर साफ कर लें ताकि उसमें डंठल या मिट्टी न रहे। जीरे को बोरों में भरने से पहले यह सुनिश्चित करें कि उसमें नमी 8-9% से ज्यादा न हो। यदि दाने को हाथ से तोड़ने पर 'कड़क' की आवाज आए, तभी उसे भंडारित करें। बुंदेलखंड में मार्च के अंत में होने वाली बेमौसम बारिश से फसल को बचाने के लिए कटी हुई फसल को हमेशा ढक कर रखने का प्रबंध रखें।

भंडारण की उन्नत तकनीक: जीरे की असली कमाई उसकी 'रंगत और खुशबू' में छिपी है। फसल कटने के बाद उसे सीधे जमीन पर कभी न सुखाएं, बल्कि तिरपाल का उपयोग करें ताकि धूल-मिट्टी न मिले। भंडारण से पहले यह सुनिश्चित करें कि बीज में नमी 8ङ्क से अधिक न हो इसे जांचने का सरल तरीका यह है कि दाने को दांत से दबाने पर 'कड़क' की आवाज आनी चाहिए। बुंदेलखंड की सूखी जलवायु भंडारण के लिए वरदान है, बस आपको दानों को हवा बंद बैग या प्लास्टिक लाइनर वाले जूट के बोरों में भरकर लकड़ी के ऊंचे तख्तों पर रखना चाहिए। इससे जमीन की नमी दानों तक नहीं पहुँचती और जीरे का विशिष्ट 'ग्रे-हरा' रंग साल भर बरकरार रहता है।

मार्केटिंग और बिक्री की रणनीति: जीरे की मार्केटिंग में सबसे बड़ी गलती फसल को कटते ही (मार्च-अप्रैल में) मंडी ले जाना है, क्योंकि उस समय आवक अधिक होने से भाव गिरे रहते हैं। अधिकतम मुनाफे के लिए अपनी फसल की ग्रेडिंग करें मोटे दाने, मध्यम दाने और कचरे को अलग-अलग करने मात्र से ही आपकी औसत आय 15% बढ़ जाती है। बुंदेलखंड के किसान होने के नाते आप ई-नाम (e-NAM) पोर्टल के जरिए गुजरात की ऊंझा मंडी के भावों पर नजर रखें और जब अगस्त से अक्टूबर के बीच मांग बढ़े, तब अपना स्टॉक निकालें। इसके अलावा, स्थानीय व्यापारियों के बजाय सीधे मसाला कंपनियों या कानपुर-लखनऊ के बड़े मसाला मिलों से संपर्क करना बिचौलियों के कमीशन को खत्म कर देता है, जिससे आपकी जेब में सीधा और मोटा मुनाफा आता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

पशुओं के स्वास्थ्य और विकास में स्पिरुलिना का योगदान

स्वाती शर्मा और शची तिवारी
स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

परिचय

ब्लू-ग्रीन एल्गी, जिन्हें सामान्यतः सायनोबैक्टीरिया कहा जाता है, पृथ्वी पर जीवन के सबसे प्राचीन रूपों में से एक मानी जाती हैं। कुछ खाद्य प्रजातियाँ जैसे स्पिरुलिना (Spirulina), नोस्टॉक (Nostoc) और अफैनिजोमेनन (Aphanizomenon) सदियों से आहार अनुपूरक के रूप में उपयोग की जाती रही हैं। इनमें से Spirulina platensis और Spirulina ma&ima अपने उच्च पोषण मूल्य और जैव-सक्रिय यौगिकों के कारण व्यावसायिक रूप से सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। खाद्य अनुपूरक के अतिरिक्त, स्पिरुलिना का उपयोग जैव-प्रौद्योगिकी, औषधि, कृषि तथा जलीय कृषि उद्योगों में व्यापक रूप से किया जाता है।

सूक्ष्म शैवाल (Microalgae) जलीय खाद्य शृंखला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इनका उपयोग सीप, झींगा, मछलियों तथा अन्य जलीय जीवों के आहार में किया जाता है। ये आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन, खनिज, फैटी एसिड तथा कैरोटिनॉयड पिगमेंट प्रदान करते हैं, जो वृद्धि, तनाव सहनशीलता, रोग प्रतिरोधक क्षमता और समग्र शारीरिक क्रियाओं को बेहतर बनाते हैं। स्वास्थ्यवर्धक "सुपरफूड" तथा सतत पोषण स्रोतों के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण वैश्विक स्तर पर शैवाल उत्पादों का बाज़ार निरंतर बढ़ रहा है। स्पिरुलिना विशेष रूप से कोलेस्ट्रॉल कम करने, एंटीवायरल, एंटीऑक्सीडेंट तथा प्रतिरक्षा-वर्धक गुणों के लिए जाना जाता है, जिससे यह एक मूल्यवान क्रियात्मक आहार अनुपूरक बनता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं संरचना (Morphology)

स्पिरुलिना का उपयोग 16वीं शताब्दी में एज़्टेक सभ्यता द्वारा मेक्सिको की टेक्सकोको झील से एकत्र कर भोजन के रूप में किया जाता था, जबकि आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा इसका पुनः खोज 1960 के दशक में हुआ। यह सर्पिल आकार की, तंतुयुक्त (filamentous) और बहुकोशिकीय संरचना वाली सायनोबैक्टीरिया है। इसकी कोशिकाओं में फ्लैजेला और हेटरोसिस्ट नहीं होते, परंतु गैस वैक्यूल्स उपस्थित होते हैं जो इसे पानी की सतह पर तैरने में सहायता करते हैं। इसकी हेलिकल (घुमावदार) तंतु संरचना इसकी प्रमुख विशेषता है, जिसकी चौड़ाई सामान्यतः 6-12 माइक्रोमीटर होती है। आज स्पिरुलिना का उत्पादन विश्वभर में किया जाता है और यह मानव तथा पशु दोनों के लिए पोषण अनुपूरक के रूप में उपयोगी है।

संवर्धन (Cultivation) एवं स्थिरता (Sustainability)

स्पिरुलिना क्षारीय वातावरण (pH 8.5-11) में सर्वश्रेष्ठ रूप से बढ़ता है, जिससे अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा प्रदूषण की संभावना कम हो जाती है। इसका उत्पादन खुले तालाबों या बंद फोटोबायोरिएक्टर में सूर्य प्रकाश अथवा कृत्रिम प्रकाश के माध्यम से किया जा सकता है। पारंपरिक कृषि की तुलना में स्पिरुलिना उत्पादन में कम भूमि और जल की आवश्यकता होती है तथा प्रति इकाई क्षेत्र अधिक प्रोटीन प्राप्त होता है। इसे पोषक तत्वों से भरपूर अपशिष्ट जल और कृषि उप-उत्पादों का उपयोग करके भी उगाया जा सकता है, जिससे पर्यावरणीय स्थिरता बढ़ती है। सफल संवर्धन के लिए उचित प्रकाश, कार्बन डाइऑक्साइड की उपलब्धता, तापमान नियंत्रण, मिश्रण, ऑक्सीजन निष्कासन और रखरखाव की सरलता आवश्यक है।

पोषण संरचना (Nutritional Composition)

प्रोटीन एवं अमीनो अम्ल

स्पिरुलिना में सूखे भार के अनुसार लगभग 50-70% प्रोटीन पाया जाता है, जो अनेक वनस्पति एवं पशु स्रोतों से अधिक है। इसका प्रोटीन "पूर्ण प्रोटीन" माना जाता है क्योंकि इसमें अधिकांश आवश्यक अमीनो अम्ल उपस्थित होते हैं, यद्यपि मेथियोनीन और सिस्टीन अपेक्षाकृत कम मात्रा में होते हैं। इसमें उपस्थित C-फाइकोसायनिन जैसे जैव-सक्रिय यौगिक इसके पोषण महत्व को और बढ़ाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट एवं लिपिड

स्पिरुलिना के कार्बोहाइड्रेट आसानी से पचने योग्य होते हैं क्योंकि इसमें सेल्यूलोज अनुपस्थित होता है। इसके लिपिड भाग में कोलेस्ट्रॉल नहीं होता तथा यह पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड, विशेषकर गामा-लिनोलेनिक एसिड (GLA), से समृद्ध होता है, जो हृदय एवं चयापचय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

विटामिन एवं खनिज

स्पिरुलिना में विटामिन A, B-कॉम्प्लेक्स, E तथा फोलिक एसिड के साथ-साथ आयरन, कैल्शियम, मैग्नीशियम और पोटैशियम जैसे आवश्यक खनिज प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसका आयरन स्तर सामान्य खाद्य पदार्थों की तुलना में अधिक होता है, जो एनीमिया की रोकथाम में सहायक है।

पिगमेंट एवं एंटीऑक्सीडेंट

स्पिरुलिना में फाइकोसायनिन, क्लोरोफिल और कैरोटिनॉयड जैसे जैव-सक्रिय पिगमेंट पाए जाते हैं, जो शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट और सूजन-रोधी गुण प्रदान करते हैं। ये यौगिक ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करते हैं, प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करते हैं तथा कोशिकाओं और ष्ठ्ह को क्षति से बचाते हैं।

पशु पालन प्रणालियों में उपयोग

पोल्ट्री (मुर्गी पालन)

मुर्गियों के आहार में स्पिरुलिना मिलाने से वृद्धि दर, फीड कन्वर्ज़न रेशियो और मांस की गुणवत्ता में सुधार देखा गया है। यह रंग और स्वाद को बेहतर बनाता है, हालांकि अधिक मात्रा में उपयोग करने पर मांस का रंग गहरा हो सकता है।

स्वाइन (सूअर पालन)

अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि उपयुक्त अमीनो अम्ल पूरकता के साथ स्पिरुलिना सोयाबीन मील का आंशिक या पूर्ण विकल्प बन सकता है। इससे मांस की भौतिक-रासायनिक गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और फैटी एसिड प्रोफाइल में हल्का सुधार संभव है।

मत्स्य पालन (Aquaculture)

स्पिरुलिना का उपयोग विशेष रूप से सर्वाहारी मछलियों जैसे तिलापिया और कैटफिश के आहार में लाभकारी पाया गया है। यह प्रतिरक्षा क्षमता, रंग और फीड दक्षता को बढ़ाता है। हालांकि मांसाहारी मछलियों में फिशमील का पूर्ण प्रतिस्थापन करने पर वृद्धि और आवश्यक फैटी एसिड (DHA, EPA) में कमी देखी जा सकती है।

स्वास्थ्य एवं क्रियात्मक लाभ

स्पिरुलिना में प्रतिरक्षा-संशोधक (Immunomodulatory), एंटीऑक्सीडेंट, सूजन-रोधी तथा प्रीबायोटिक गुण पाए जाते हैं। यह आंतों के लाभकारी सूक्ष्मजीवों के संतुलन को बढ़ावा देता है, पोषक तत्वों के पाचन में सुधार करता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करता है। इसके परिणामस्वरूप एंटीबायोटिक पर निर्भरता कम होती है और सतत पशुपालन को बढ़ावा मिलता है।

निष्कर्ष

स्पिरुलिना एक बहुउद्देशीय सुपरफूड एवं आहार अनुपूरक के रूप में उभर कर सामने आया है, जिसमें उच्च पोषण घनत्व और जैविक सक्रियता मौजूद है। इसका उच्च प्रोटीन स्तर, आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व तथा शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट यौगिक इसे पोल्ट्री, स्वाइन और मत्स्य पालन प्रणालियों में अत्यंत उपयोगी बनाते हैं। सतत संवर्धन तकनीक, कम भूमि आवश्यकता और अपशिष्ट संसाधनों के उपयोग की क्षमता इसके आर्थिक और पर्यावरणीय महत्व को और बढ़ाती है। भविष्य में बढ़ती वैश्विक मांग के साथ, स्पिरुलिना पशु उत्पादकता, खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिक संतुलन को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

खाद्य उत्पाद : आधुनिक जीवनशैली में पोषण, स्वाद और स्वास्थ्य का आधार

आकांक्षा शोध छात्रा, सेंटर ऑफ फूड टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज- 211 002

प्रस्तावना

आज के बदलते समय में खाद्य उत्पाद केवल भूख मिटाने का साधन नहीं रह गए हैं, बल्कि वे स्वास्थ्य, पोषण, सुविधा और जीवनशैली का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और व्यस्त दिनचर्या ने खाद्य उद्योग को तेजी से विकसित किया है। बाजार में पारंपरिक खाद्य पदार्थों से लेकर आधुनिक प्रसंस्कृत एवं कार्यात्मक खाद्य उत्पादों की भरमार है। उपभोक्ता अब ऐसे खाद्य पदार्थों की मांग कर रहे हैं जो स्वादिष्ट होने के साथ-साथ पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक भी हों।

खाद्य उत्पादों का महत्व: मानव शरीर को ऊर्जा, वृद्धि और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए संतुलित आहार की आवश्यकता होती है। खाद्य उत्पाद शरीर को कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। भोजन न केवल शारीरिक विकास में सहायक है बल्कि मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है।

वर्तमान समय में खाद्य उत्पादों का महत्व निम्न कारणों से बढ़ा है— * बढ़ती स्वास्थ्य जागरूकता * सुविधाजनक एवं तैयार भोजन की मांग * पोषण की कमी से बचाव * लंबी शेल्फ लाइफ वाले खाद्य पदार्थों की आवश्यकता * स्वाद एवं विविधता की चाह

खाद्य उत्पादों के प्रमुख प्रकार

1. **पारंपरिक खाद्य उत्पाद:** भारत अपनी समृद्ध खाद्य संस्कृति के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। दही, घी, अचार, पापड़, लस्सी, मुरब्बा, चटनी, बाजरे की रोटी तथा विभिन्न प्रकार के पारंपरिक मिठाई उत्पाद आज भी लोगों की पहली पसंद हैं। ये खाद्य पदार्थ स्थानीय संसाधनों एवं पारंपरिक ज्ञान पर आधारित होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी घर पर बने खाद्य उत्पादों का विशेष महत्व है। इनमें पोषण के साथ-साथ सांस्कृतिक पहचान भी जुड़ी होती है।

2. **प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद:** खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने, स्वाद बढ़ाने तथा लंबे समय तक उपयोग योग्य बनाने के लिए विभिन्न प्रसंस्करण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ, इंस्टेंट नूडल्स, बिस्कुट, ब्रेड, जैम, सॉस, फ्रोजन फूड आदि प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों के उदाहरण हैं।

प्रसंस्करण के लाभ— * खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ बढ़ती है * परिवहन एवं भंडारण आसान होता है * उपभोक्ताओं को सुविधा मिलती है * मौसमी खाद्य पदार्थ पूरे वर्ष उपलब्ध रहते हैं

हालांकि अत्यधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों में नमक, चीनी एवं वसा की अधिक मात्रा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकती है। इसलिए संतुलित सेवन आवश्यक है।

3. **कार्यात्मक खाद्य उत्पाद-** आजकल ऐसे खाद्य उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है जो सामान्य पोषण के अतिरिक्त स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करें। इन्हें कार्यात्मक खाद्य उत्पाद कहा जाता है।

उदाहरण— * प्रोबायोटिक दही * ओमेगा-3 युक्त खाद्य पदार्थ * फाइबर युक्त अनाज * एंटीऑक्सीडेंट युक्त पेय * मिलेट आधारित उत्पाद

ये खाद्य पदार्थ हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा तथा पाचन संबंधी समस्याओं को नियंत्रित करने में सहायक माने जाते हैं।

4. **दुग्ध आधारित खाद्य उत्पाद:** भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है। दूध से अनेक मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जाते हैं जैसे–

* पनीर * दही * मक्खन * घी * आइसक्रीम * फ्लेवर्ड मिल्क

दुग्ध उत्पाद कैल्शियम, प्रोटीन एवं विटामिन के अच्छे स्रोत हैं। वर्तमान में लो-फैट एवं प्रोबायोटिक डेयरी उत्पादों की लोकप्रियता बढ़ रही है।

खाद्य उत्पादों में पोषण का महत्व: स्वस्थ जीवन के लिए संतुलित एवं पौष्टिक खाद्य उत्पादों का चयन अत्यंत आवश्यक है। आज उपभोक्ता केवल स्वाद नहीं बल्कि पोषण गुणवत्ता पर भी ध्यान देने लगे हैं। इसी कारण खाद्य उद्योग में "फोर्टिफाइड" एवं "हेल्थ फूड" उत्पादों का विकास तेजी से हो रहा है।

फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थ: जब किसी खाद्य पदार्थ में अतिरिक्त पोषक तत्व मिलाए जाते हैं तो उसे फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थ कहते हैं।

उदाहरण— * आयोडीन युक्त नमक * आयरन युक्त आटा * विटामिन-D युक्त दूध

इन उत्पादों का उद्देश्य कुपोषण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करना है।

खाद्य सुरक्षा एवं गुणवत्ता: खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता एवं सुरक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। असुरक्षित भोजन कई प्रकार की बीमारियों का कारण बन सकता है। इसलिए खाद्य उद्योग में स्वच्छता, गुणवत्ता नियंत्रण एवं पैकेजिंग पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण कार्य करता है। यह संस्था खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता एवं मानकों को निर्धारित करती है।

उपभोक्ताओं को खाद्य उत्पाद खरीदते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए— * निर्माण एवं समाप्ति तिथि * पैकेजिंग की स्थिति * पोषण लेबल * कृत्रिम रंग एवं रसायनों की मात्रा

जैविक एवं प्राकृतिक खाद्य उत्पाद

आजकल जैविक खाद्य उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। ये उत्पाद बिना रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के तैयार किए जाते हैं। लोग स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक हो रहे हैं, जिसके कारण ऑर्गेनिक फूड बाजार का विस्तार हो रहा है।

जैविक खाद्य उत्पादों के लाभ— * रसायन मुक्त भोजन * बेहतर पोषण गुणवत्ता * पर्यावरण संरक्षण * मिट्टी की उर्वरता में सुधार। हालांकि इन उत्पादों की कीमत सामान्य उत्पादों की तुलना में अधिक होती है।

खाद्य उद्योग में नई तकनीकें: विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास ने खाद्य उद्योग को नई दिशा प्रदान की है। आधुनिक तकनीकों के माध्यम से खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता, स्वाद एवं पोषण को बेहतर बनाया जा रहा है।

प्रमुख आधुनिक तकनीकें

* खाद्य संरक्षण तकनीक * माइक्रोएनकैप्सुलेशन * फ्रीज ड्राइंग * वैक्यूम पैकेजिंग * स्मार्ट पैकेजिंग * नैनो टेक्नोलॉजी

इन तकनीकों से खाद्य उत्पाद अधिक सुरक्षित एवं टिकाऊ बन रहे हैं।

भारत में खाद्य उद्योग की संभावनाएं: भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए अत्यंत उपयुक्त है। सरकार भी "मेक इन इंडिया" एवं "प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना" जैसी योजनाओं के माध्यम से खाद्य उद्योग को बढ़ावा दे रही है।

खाद्य उद्योग में रोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध हैं— * खाद्य तकनीकी विशेषज्ञ * गुणवत्ता नियंत्रण अधिकारी * पोषण विशेषज्ञ * डेयरी तकनीशियन * खाद्य उद्यमी

ग्रामीण युवाओं के लिए खाद्य प्रसंस्करण स्वरोजगार का एक उत्कृष्ट माध्यम बन सकता है।

निष्कर्ष: खाद्य उत्पाद मानव जीवन का आधार हैं। बदलती जीवनशैली एवं स्वास्थ्य जागरूकता के कारण खाद्य उद्योग में निरंतर नवाचार हो रहे हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि उपभोक्ता स्वाद के साथ-साथ पोषण एवं गुणवत्ता को भी प्राथमिकता दें। पारंपरिक एवं आधुनिक खाद्य उत्पादों के संतुलित उपयोग से स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है।भविष्य में कार्यात्मक, जैविक एवं पोषण समृद्ध खाद्य उत्पादों की मांग और अधिक बढ़ेगी। इसलिए खाद्य उद्योग को वैज्ञानिक तकनीकों, गुणवत्ता नियंत्रण एवं उपभोक्ता जागरूकता के साथ आगे बढ़ाना समय की आवश्यकता है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

रोजेला : औषधीय, पोषण एवं आर्थिक महत्व की बहुउपयोगी फसल

हिमांशु प्रजापति (एमएससी छात्र), सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय

डॉ. ललित कुमार सनोदिया (सहायक प्रोफेसर) कृषि विज्ञान संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

परिचय

औषधीय, पोषण एवं औद्योगिक फसल है, जिसे भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अम्बाडी, लाल अम्बाडी अथवा Roselle के नाम से जाना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम Hibiscus sabdariffa है और यह मालवेसी (Malvaceae) कुल से संबंधित है। यह फसल अपने लाल रंग के पुष्पदल (Calyx), पौष्टिक पत्तियों तथा रेशों के कारण विशेष महत्व रखती है। वर्तमान समय में प्राकृतिक पेय पदार्थों, हर्बल उत्पादों तथा जैविक खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ने से रोजेला का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। रोजेला की पुष्पदलियों का उपयोग हर्बल चाय, शरबत, जैम, जैली, स्क्वैश तथा औषधियों के निर्माण में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन-C एवं खनिज तत्व मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं। यही कारण है कि इसे "Functional Food Crop" भी कहा जाता है। इसकी हर्बल चाय रक्तचाप नियंत्रण, पाचन सुधार एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक मानी जाती है। इसके औषधीय गुणों के कारण आयुर्वेदिक एवं हर्बल चिकित्सा पद्धतियों में भी इसका उपयोग किया जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों में भी यह पाया गया है कि रोजेला शरीर में हानिकारक मुक्त कणों (Free Radicals) को कम करने में सहायक होता है, जिससे अनेक रोगों की संभावना कम हो जाती है।

रोजेला का पोषण एवं औषधीय महत्व

रोजेला को पोषणयुक्त फसल माना जाता है क्योंकि इसमें शरीर के लिए आवश्यक कई महत्वपूर्ण पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसके नियमित सेवन से शरीर स्वस्थ एवं ऊर्जावान बना रहता है।

1. विटामिन-C का प्रमुख स्रोत

रोजेला में विटामिन-C प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विटामिन-ष्ट त्वचा को स्वस्थ रखने, घाव भरने तथा संक्रमण से बचाव में सहायक होता है। इसके सेवन से सर्दी-जुकाम जैसी समस्याओं से भी राहत मिलती है।

2. एंटीऑक्सीडेंट गुण

रोजेला में एंथोसायनिन (Anthocyanin) एवं अन्य एंटीऑक्सीडेंट तत्व पाए जाते हैं। ये शरीर में उपस्थित हानिकारक मुक्त कणों (Free Radicals) को कम करने में सहायता करते हैं। एंटीऑक्सीडेंट शरीर को समय से पहले बूढ़ा होने से बचाते हैं तथा कई गंभीर रोगों की संभावना को कम करते हैं।

3. आयरन का स्रोत: रोजेला में आयरन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, जो रक्त निर्माण में सहायक होता है। इसके सेवन से शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ती है तथा एनीमिया जैसी समस्याओं से बचाव होता है। महिलाओं एवं बच्चों के लिए यह विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है।

4. कैल्शियम एवं खनिज तत्व: रोजेला में कैल्शियम, फास्फोरस

एवं अन्य खनिज तत्व पाए जाते हैं, जो हड्डियों एवं दाँतों को मजबूत बनाने में सहायता करते हैं। इसके नियमित सेवन से शरीर की कमजोरी दूर होती है।

5. प्रोटीन एवं फाइबर: रोजेला की पत्तियों एवं बीजों में प्रोटीन एवं आहार रेशा (Dietary Fiber) पाया जाता है। फाइबर पाचन तंत्र को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करता है तथा कब्ज जैसी समस्याओं को कम करता है।

औषधीय महत्व: रोजेला केवल पोषणयुक्त फसल ही नहीं, बल्कि औषधीय दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसकी हर्बल चाय एवं अन्य उत्पाद कई रोगों के उपचार में उपयोग किए जाते हैं।

1. रक्तचाप नियंत्रण में सहायक: रोजेला की हर्बल चाय उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक मानी जाती है। इसमें उपस्थित प्राकृतिक तत्व रक्त वाहिकाओं को आराम प्रदान करते हैं, जिससे रक्तचाप संतुलित रहता है। यही कारण है कि स्वास्थ्य विशेषज्ञ इसे लाभकारी पेय मानते हैं।

2. हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी: रोजेला शरीर में खराब कोलेस्ट्रॉल (LDL) को कम करने में सहायक होता है। इससे हृदय संबंधी रोगों का खतरा कम होता है तथा हृदय स्वस्थ रहता है। इसके एंटीऑक्सीडेंट गुण हृदय की कोशिकाओं को भी सुरक्षा प्रदान करते हैं।

3. पाचन तंत्र को मजबूत बनाना:
रोजेला पाचन क्रिया को बेहतर बनाने में सहायता करता है। इसके सेवन से भूख बढ़ती है तथा पेट संबंधी समस्याएँ जैसे कब्ज एवं अपच में लाभ मिलता है। इसकी पत्तियों का उपयोग कई स्थानों पर पाचन सुधारने के लिए किया जाता है।

4. रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना: रोजेला में उपस्थित विटामिन-ष्ट एवं एंटीऑक्सीडेंट शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाते हैं। इससे शरीर विभिन्न प्रकार के संक्रमणों एवं बीमारियों से लड़ने में सक्षम होता है।

5. वजन नियंत्रण में सहायक: रोजेला का सेवन शरीर की अतिरिक्त चर्बी कम करने में सहायक माना जाता है। इसके हर्बल पेय पदार्थ वजन नियंत्रित करने वाले आहार में शामिल किए जाते हैं।

6. यकृत (Liver) की सुरक्षा: कुछ वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार रोजेला यकृत को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होता है। इसके एंटीऑक्सीडेंट तत्व शरीर से विषैले पदार्थों को बाहर निकालने में मदद करते हैं।

7. त्वचा एवं बालों के लिए लाभकारी: रोजेला में पाए जाने वाले पोषक तत्व त्वचा को स्वस्थ एवं चमकदार बनाने में सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त यह बालों को मजबूत बनाने में भी सहायक माना जाता है।

हर्बल एवं आयुर्वेदिक उपयोग: आयुर्वेदिक चिकित्सा में रोजेला का उपयोग अनेक प्रकार की औषधियों में किया जाता है। इसकी चाय एवं अर्क का उपयोग प्राकृतिक उपचार के रूप में किया जाता है। यह शरीर को ठंडक प्रदान करता है तथा गर्मी से होने वाली समस्याओं में लाभकारी माना जाता है।

खाद्य एवं स्वास्थ्य पेय के रूप में महत्व: आजकल बाजार में रोजेला आधारित हर्बल चाय, स्वास्थ्य पेय एवं जैविक उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। लोग रासायनिक पेय पदार्थों की अपेक्षा प्राकृतिक पेय पदार्थों को अधिक पसंद कर रहे हैं। इसी कारण रोजेला आधारित उत्पाद स्वास्थ्य उद्योग में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहे हैं।

किसानों की आय में वृद्धि: रोजेला की खेती अपेक्षाकृत कम लागत में की जा सकती है। इसकी फसल वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, जिससे सिंचाई पर कम खर्च आता है। बाजार में इसके पुष्पदल एवं प्रसंस्कृत उत्पाद अच्छे मूल्य पर बिकते हैं, जिसके कारण किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

किसानों को होने वाले प्रमुख लाभ

1.कम उत्पादन लागत 2.बाजार में अधिक मांग 3.प्रसंस्करण उद्योगों से जुड़ाव 4.अतिरिक्त रोजगार के अवसर 5.निर्यात की संभावना

औद्योगिक महत्व- रोजेला केवल खाद्य उद्योग तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उपयोग औषधि, सौंदर्य प्रसाधन एवं रेशा उद्योगों में भी किया जाता है।

1. औषधि उद्योग- हर्बल दवाइयों एवं स्वास्थ्य पेय पदार्थों में उपयोग।

2. सौंदर्य प्रसाधन उद्योग- साबुन, फेस पैक एवं हर्बल कॉस्मेटिक बनाने में उपयोग।

3. रेशा उद्योग- इसके तनों से प्राप्त रेशों का उपयोग रस्सी एवं अन्य वस्तुएँ बनाने में किया जाता है।

निष्कर्ष

रोजेला एक ऐसी बहुउपयोगी फसल है जो स्वास्थ्य एवं आर्थिक दोनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके औषधीय गुण मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं, वहीं इसकी खेती किसानों को अच्छी आय प्रदान करती है। वर्तमान समय में बढ़ती हर्बल एवं जैविक उत्पादों की मांग को देखते हुए रोजेला का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल दिखाई देता है। इसलिए किसानों को इसकी वैज्ञानिक खेती अपनाकर अधिक लाभ प्राप्त करना चाहिए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव का प्रबंधन एवं महत्व

प्रशांत नारायण

शिवेंद्र कुमार सिंह, राम लखन सोनी मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आशीष यादव सस्य विज्ञान विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

परिचय: क्षारीय मृदा का पीएच सामान्यतः 7.5 से अधिक होता है। ऐसी मृदाओं में प्रायः सोडियम लवणों की मात्रा अधिक होती है, जिसके कारण मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता तथा पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सोडियम की अधिकता से मृदा कण आपस में चिपक कर सख्त हो जाते हैं, जिससे मृदा का भुरभुरापन समाप्त हो जाता है और जल का अवशोषण तथा निकास दोनों ही प्रभावित होते हैं। परिणामस्वरूप पौधों की जड़ें ठीक से विकसित नहीं हो पातीं और फसल उत्पादन में कमी आती है। भारत में यह समस्या विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और पंजाब के कई हिस्सों में व्यापक रूप से देखने को मिलती है।

क्षारीय मृदाओं में पोषक तत्वों की उपलब्धता भी एक बड़ी समस्या होती है। उच्च पीएच के कारण नाइट्रोजन, फास्फोरस, जिंक, आयरन जैसे आवश्यक तत्व पौधों के लिए कम उपलब्ध हो जाते हैं। इसके साथ ही, मृदा में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता भी घट जाती है, जिससे जैविक प्रक्रियाएं धीमी पड़ जाती हैं। इन सभी कारणों से मृदा की उर्वरता में गिरावट आती है और फसलों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता प्रभावित होती है।

ऐसी परिस्थितियों में मृदा की उर्वरता को पुनः स्थापित करने के लिए जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीवों का प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैविक पदार्थ जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद और फसल अवशेष मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को सुधारने में सहायक होते हैं। जब इन जैविक पदार्थों का मृदा में समावेश किया जाता है, तो उनके विघटन से कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं, जो मृदा के पीएच को कम करने में मदद करते हैं। इससे मृदा की क्षारीयता धीरे-धीरे घटती है और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है।

इसके अतिरिक्त, जैविक पदार्थ मृदा की संरचना को सुधारते हैं। ये मृदा कणों को जोड़कर स्थायी दानेदार संरचना बनाते हैं, जिससे जल और वायु का संचरण बेहतर होता है। इससे न केवल जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है, बल्कि पौधों की जड़ों का विकास भी सुचारु रूप से होता है। साथ ही, जैविक पदार्थ मृदा में सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं, जिससे उनकी संख्या और सक्रियता बढ़ती है। सूक्ष्मजीव मृदा की उर्वरता बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। ये जैविक पदार्थों के अपघटन, पोषक तत्वों के चक्रण और उन्हें पौधों के लिए उपलब्ध कराने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ सूक्ष्मजीव नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं, जबकि अन्य फास्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इसके अलावा, माइकोराइजा जैसे सूक्ष्मजीव पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाकर उनकी पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता को बढ़ाते हैं। क्षारीय मृदा में सूक्ष्मजीवों के प्रभावी प्रबंधन के लिए जैव उर्वरकों का उपयोग किया जा सकता है, जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर और फास्फेट घुलनशील जीवाणु। ये न केवल मृदा की उर्वरता बढ़ाते हैं, बल्कि रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को भी कम करते हैं। इसके साथ ही, मृदा में पर्याप्त नमी बनाए रखना, फसल चक्र अपनाना और रासायनिक कीटनाशकों का सीमित उपयोग करना भी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बनाए रखने में सहायक होता है।

अतः यह स्पष्ट है कि क्षारीय मृदा की समस्याओं के समाधान के लिए जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीवों का समुचित और संतुलित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। इनके संयुक्त उपयोग से मृदा की संरचना, उर्वरता और जैविक गतिविधियों में सुधार होता है, जिससे फसल उत्पादन में वृद्ध और कृषि की स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है।

क्षारीय मृदा के लिए जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव कैसे तैयार कैसे करें ?

कम्पोस्ट बनाना- कम्पोस्ट बनाने के लिए 1-1.5 मीटर गहरा गड्ढा खोदें। सबसे पहले सूखे कचरे (पत्तियां आदि) की परत डालें, फिर उसके ऊपर गीले कचरे (छिलके, गोबर आदि) की परत बिछाएं। खाद में नमी हमेशा 60-70% बनाए रखें तथा हर परत पर थोड़ा पानी छिड़कें। 15-20 दिन में एक बार पलटाई करें। लगभग 40-60 दिन में कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाती है।

वर्मी कम्पोस्ट- वर्मी कम्पोस्ट केंचुओं की सहायता से तैयार किया जाता है। इसके लिए छायादार स्थान पर बेड बनाएं तथा उसमें गोबर और सूखी पत्तियां डालें। इसके बाद केंचुए छोड़ दें। नमी हमेशा 60-70% बनाए रखें और समय-समय पर पानी का छिड़काव करते रहें। लगभग 30-45 दिन में वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

गोबर खाद- गोबर + पशुओं का बिछावन (भूसा) इकट्ठा करें ढेर बनाकर 2-3 महीने तक सड़ने दें और नमी हमेशा 60-70% रखें.

हरी खाद- हरी खाद जैसे-ढैंचा, सन, मूंग जैसी फसलें बोएं 40-45 दिन बाद इसे खेत में इसकी जुताई कर दें.

सूक्ष्मजीव कैसे तैयार करें

जीवामृत- 10 लीटर गोमूत्र, 10 किलो गोबर, 2 किलो गुड़, 2 किलो बेसन और 200 लीटर पानी को अच्छी तरह मिलाकर 2-3 दिन तक छाया में रखें तथा रोज़ हिलाते रहें। तैयार घोल का 200 लीटर प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

घन जीवामृत- यह विधि भी बिल्कुल जीवामृत बनाने की तरह ही है इसमें जब जीवामृत तैयार हो जाता है तब इसे गाय के गोबर के साथ मिलाकर 48 से लेकर 72 घंटे तक छाया में विघटित होने के लिए रखा जाता है इसके बाद यह खेत में प्रयोग करने के लिए तैयार हो जाता है। जीवामृत और घनजीवामृत दोनों को ही खेत में बुवाई से पहले मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दिया जाता है। इसके बाद खेत में लाभदायक केंचुए जो मिट्टी के अंदर रहते हैं वह मिट्टी के ऊपर आ जाते हैं जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है और इससे मिट्टी की उर्वराशक्ति में काफी हद तक सुधार होता है। इसके साथ-साथ उत्पादन व फसल उपज की गुणवत्ता भी इनके प्रयोग से काफी अच्छी हो जाती है। इनका प्रयोग हम सब्जियों में लहसुन, प्याज, हल्दी, बैंगन, टमाटर, मिर्च, पत्तागोभी, फूलगोभी, शलजम, मूली, चुकंदर तथा गाजर वहीं फलों में स्ट्रॉबेरी तथा ब्लूबेरी व फूलों में गेंदा तथा रजनीगंधा आदि में खेत की तैयारी के समय प्रयोग कर सकते हैं।

जैव उर्वरक- 20 लीटर साफ पानी में 1 किलो गुड़ डालकर उबाल लें। पानी ठंडा होने पर इसमें 1 किलो बेसन (या चने का आटा) मिलाएं। इसके बाद 1 पैकेट बायोफर्टिलाइज़र कल्चर, जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर या फॉस्फोरस घोलने वाले जीवाणु, डालें। ड्रम या बाल्टी को ढकर छाया में रखें तथा 2-3 दिन तक रोज़ लकड़ी से हिलाते रहें। लगभग 3 दिन में आपका जैव उर्वरक तैयार हो जाएगा।

क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव का महत्व- क्षारीय मृदा में जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव मृदा की संरचना सुधारते हैं, पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं, पीएच संतुलन बनाए रखते हैं और पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कृषि स्थिरता को बढ़ावा देने में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका

शाडिण्जय सिंह, सुचिस्मिता साहू (शोध छात्र)
कृषि प्रसार शिक्षा विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

स्नेहा सिंह सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शामली

भूमिका

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ आज भी बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण तथा कृषि उत्पादन की चुनौतियों के बीच "कृषि स्थिरता" एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। कृषि स्थिरता का अर्थ है ऐसी कृषि प्रणाली का विकास जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के संसाधनों को सुरक्षित रखे. इस दिशा में कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों और वैज्ञानिकों के बीच सेतु का कार्य करती हैं और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

कृषि स्थिरता की अवधारणा

कृषि स्थिरता का तात्पर्य केवल उत्पादन बढ़ाने से नहीं है, बल्कि यह तीन मुख्य स्तंभों पर आधारित है—

1.आर्थिक स्थिरता : किसानों की आय में वृद्धि और स्थायी आजीविका

2.पर्यावरणीय स्थिरता : भूमि, जल और जैव विविधता का संरक्षण

3.सामाजिक स्थिरता : ग्रामीण समाज का समग्र विकास और समान अवसर

इन तीनों पहलुओं को संतुलित करते हुए ही कृषि को दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बनाया जा सकता है।

कृषि प्रसार सेवाओं का परिचय: कृषि प्रसार सेवाएँ उन संस्थाओं और गतिविधियों का समूह हैं जिनका उद्देश्य किसानों तक नवीनतम वैज्ञानिक तकनीकों, ज्ञान और कौशल को पहुँचाना है। इसमें कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, सरकारी विभाग, गैर-सरकारी संगठन और निजी क्षेत्र शामिल होते हैं।

कृषि प्रसार का मुख्य उद्देश्य है—

* किसानों को नई तकनीकों से परिचित कराना
* उनकी समस्याओं का समाधान करना
* उत्पादन और आय में वृद्धि करना
* सतत और पर्यावरण अनुकूल खेती को बढ़ावा देना

कृषि स्थिरता में कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका

1. नई तकनीकों और नवाचारों का प्रसार: कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों को उन्नत बीज, आधुनिक उपकरण, जैविक खेती, ड्रिप सिंचाई, और सटीक कृषि जैसी तकनीकों से अवगत कराती हैं। इससे उत्पादन बढ़ता है और संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है। उदाहरण के लिए, ड्रिप सिंचाई प्रणाली के माध्यम से पानी की बचत होती है और फसलों को आवश्यक मात्रा में ही पानी मिलता है, जिससे जल संरक्षण संभव होता है।

2. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण: कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल चक्र , और जैविक

उर्वरकों के उपयोग के बारे में जानकारी देती हैं। इससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभाव कम होते हैं। इसके अतिरिक्त, जल संरक्षण तकनीकों जैसे वर्षा जल संचयन और सूक्ष्म सिंचाई को भी बढ़ावा दिया जाता है।

3. जैविक और टिकाऊ खेती को बढ़ावा: आज के समय में रासायनिक खेती के दुष्प्रभावों को देखते हुए जैविक खेती का महत्व बढ़ रहा है। कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों को जैविक खाद, कीटनाशकों के प्राकृतिक विकल्प, और पर्यावरण अनुकूल पद्धतियों के उपयोग के लिए प्रेरित करती हैं।

इससे न केवल पर्यावरण सुरक्षित रहता है बल्कि किसानों को बाजार में बेहतर मूल्य भी प्राप्त होता है।

4. जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन

जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़ और तापमान में उतार-चढ़ाव जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों को जलवायु-स्मार्ट कृषि अपनाने के लिए प्रशिक्षित करती हैं।

इसमें शामिल हैं— * सूखा सहनशील फसलें * समय पर बुवाई * मौसम आधारित कृषि सलाह

इस प्रकार, किसान जोखिम को कम कर सकते हैं और उत्पादन बनाए रख सकते हैं।

5. किसानों का प्रशिक्षण और क्षमता विकास: कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएँ और फील्ड डेमोंस्ट्रेशन आयोजित करती हैं। इससे किसानों का ज्ञान और कौशल बढ़ता है और वे नई तकनीकों को अपनाने में सक्षम होते हैं।

प्रशिक्षण के माध्यम से किसान स्वयं निर्णय लेने में सक्षम बनते हैं, जिससे उनकी आत्मनिर्भरता बढ़ती है।

6. सूचना और संचार तकनीक का उपयोग: आज डिजिटल युग में कृषि प्रसार सेवाएँ मोबाइल ऐप, इंटरनेट, रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से किसानों तक जानकारी पहुँचाती हैं।

उदाहरण: * मौसम की जानकारी * बाजार मूल्य * कृषि सलाह इससे किसानों को समय पर सही निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

7. महिला और युवा किसानों का सशक्तिकरण: कृषि प्रसार सेवाएँ ग्रामीण महिलाओं और युवाओं को कृषि में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करती हैं। विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से उन्हें उद्यमिता और स्वरोजगार के अवसर प्रदान किए जाते हैं. इससे सामाजिक और आर्थिक विकास में तेजी आती है।

8. बाजार से जोड़ने में सहायता: कृषि प्रसार सेवाएँ किसानों को बाजार की जानकारी, मूल्य निर्धारण, और विपणन तकनीकों के बारे में मार्गदर्शन देती हैं। इसके अलावा, किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से किसानों को सीधे बाजार से जोड़ने का कार्य भी किया जाता है।

कृषि प्रसार सेवाओं के सामने चुनौतियां: हालाँकि कृषि प्रसार सेवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है, फिर भी कई चुनौतियाँ सामने आती हैं–

1.संसाधनों की कमी: पर्याप्त वित्त और मानव संसाधनों का अभाव

2.तकनीकी ज्ञान का अभाव : कई किसानों तक सही जानकारी नहीं पहुँच पाती

3.डिजिटल विभाजन : ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और तकनीक की कमी

4.छोटे और सीमांत किसान: नई तकनीकों को अपनाने में कठिनाई

5.सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ : पारंपरिक सोच के कारण बदलाव में बाधा

समाधान और सुझाव- कृषि प्रसार सेवाओं को और प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं–

1.डिजिटल तकनीकों का विस्तार : मोबाइल आधारित सेवाओं को बढ़ावा देना

2.स्थानीय भाषा में जानकारी : किसानों को उनकी भाषा में प्रशिक्षण देना

3.सार्वजनिक-निजी भागीदारी : निजी क्षेत्र को शामिल करना

4.कृषि शिक्षा को मजबूत करना : युवाओं को कृषि में आकर्षित करना

5.महिला किसानों पर विशेष ध्यान : उनके लिए विशेष योजनाएँ बनाना

6.फील्ड स्तर पर कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ाना

निष्कर्ष: कृषि स्थिरता आज की आवश्यकता ही नहीं बल्कि भविष्य की अनिवार्यता है। कृषि प्रसार सेवाएँ इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती हैं। ये सेवाएँ किसानों को नवीन तकनीकों, ज्ञान और संसाधनों से जोड़कर उन्हें सशक्त बनाती हैं। यदि कृषि प्रसार सेवाओं को और अधिक सशक्त, आधुनिक और किसान-केंद्रित बनाया जाए, तो न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी बल्कि पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण विकास भी सुनिश्चित होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि कृषि प्रसार सेवाएँ कृषि स्थिरता को बढ़ावा देने में एक आधार स्तंभ की तरह कार्य करती हैं और इनके बिना सतत कृषि का सपना अधूरा रह जाएगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

हरसिंगार के फूल से रंग बनाने की प्रक्रिया

साक्षी, रितु पांडे और दिपके शितल
चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश - 208002

परिचय

हरसिंगार (नाइक्टेंथेस आर्बर - ट्रिस्टिस) एक सुंदर और सुगंधित फूलों वाला पौधा है, जिसे पारिजात के नाम से भी जाना जाता है। इसके फूलों का उपयोग प्राकृतिक डाई (रंग) बनाने के लिए किया जाता है। हरसिंगार के फूलों में प्राकृतिक रंगद्रव्य पाए जाते हैं, जिनका उपयोग कपड़ों, ऊन, और सिल्क को रंगने में किया जाता है। इन फूलों से प्राप्त डाई पर्यावरण के अनुकूल होती है और किसी भी हानिकारक रसायन से मुक्त होती है। इसके अलावा, पारंपरिक आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी हरसिंगार के फूलों का उपयोग औषधीय रूप में किया जाता है।

चित्र : हरसिंगार के फूल से रंग बनाने की विधि

हरसिंगार के फूलों से डाई निकालने की प्रक्रिया में फूलों को सुखाकर या उबालकर रंग निकाला जाता है, जो पीले-नारंगी रंग का होता है। इस डाई का उपयोग प्राकृतिक वस्त्रों को रंगने और हस्तशिल्प कार्यों में किया जाता है।

हरसिंगार के फूल से रंग बनाने की विधि और सामग्री :

सामग्री:

1. **हरसिंगार के फूल** - 100-200 ग्राम (ताजे या सूखे)
2. **पानी** - 1-2 लीटर
3. **एलम (फिटकरी)**- 1-2 चम्मच (रंग स्थिर करने के लिए)
4. **कपड़ा या धागा** (डाई करने के लिए)
5. **सिरका या नींबू का रस** 1-2 चम्मच (pH संतुलित करने के लिए)
6. स्टील या मिट्टी का बर्तन (एलुमिनियम के बर्तन का प्रयोग न करें)

विधि:

1. **फूलों को इकट्ठा करें:** हरसिंगार के फूलों को सुबह-सुबह इकट्ठा करें, क्योंकि ये रात में गिरते हैं और ताजे रहते हैं। आप इन्हें ताजा या सूखा इस्तेमाल कर सकते हैं।
2. **उबालने की प्रक्रिया:** एक बड़े बर्तन में पानी लें और उसमें हरसिंगार के फूल डालकर 30-40 मिनट तक धीमी आंच पर उबालें। पानी का रंग धीरे-धीरे नारंगी या पीला होने लगेगा।
3. **छानना :** फूलों को छानकर अलग कर दें और सिर्फ रंगीन पानी बचाएं।
4. **मॉर्डेंटिंग (रंग स्थिर करना):** यदि आप कपड़े या धागे को रंगना चाहते हैं, तो उसे उबालने से पहले फिटकरी और सिरके के घोल में भिगो दें। इससे रंग गहरे और स्थायी होंगे।
5. **रंगाई प्रक्रिया:** अब कपड़े या धागे को इस रंगीन पानी में डालें और धीमी आंच पर 30-40 मिनट तक उबालें ।
6. **धोना और सुखाना:** रंगने के बाद कपड़े को ठंडे पानी से धोएं और छांव में सुखाएं।

टिप्स: * गहरे रंग के लिए अधिक फूल और लंबा उबालना आवश्यक है। * हल्का पीला, नारंगी या भूरे रंग के शेड्स प्राप्त किए जा सकते हैं। * प्राकृतिक डाई में रासायनिक रंगों की तुलना में हल्के और मुलायम शेड्स मिलते हैं।

हरसिंगार के फूल के रंग का महत्व

* हरसिंगार (नाइट जैस्मिन) का फूल अपनी सुंदरता और औषधीय गुणों के लिए जाना जाता है, लेकिन इसका रंग भी पारंपरिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. **प्राकृतिक रंगाई में उपयोग**- हरसिंगार के फूलों से निकाला गया रंग एक प्राकृतिक डाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इससे कपड़ों, ऊन और रेशम को हल्के पीले या केसरिया रंग में रंगा जा सकता है।
2. **आयुर्वेद और औषधीय महत्व**- हरसिंगार के फूलों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में किया जाता है। इसका रंग शरीर के लिए सुरक्षित होता है और इसे हर्बल उत्पादों में भी मिलाया जाता है।
3. **पर्यावरण के अनुकूल रंग**- रासायनिक रंगों की तुलना में हरसिंगार का रंग पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुँचाता और यह जैव-अवक्षरणशील (बायोडिग्रेडेबल) होता है।
4. **धार्मिक और सांस्कृतिक उपयोग**-हरसिंगार के फूलों का रंग पूजा-पाठ और धार्मिक कार्यों में उपयोग किया जाता है। इसे देवी-देवताओं को अर्पित करने के लिए शुभ माना जाता है।
5. **होली और पारंपरिक रंग उत्सव**- हरसिंगार के फूलों से बने प्राकृतिक रंग को होली और अन्य पारंपरिक त्योहारों में त्वचा पर सुरक्षित रूप से इस्तेमाल किया जा सकता है। संक्षेप में, हरसिंगार का फूल न केवल अपनी खुशबू और औषधीय गुणों के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि इसका रंग भी प्राकृतिक और सांस्कृतिक रूप से बहुमूल्य है।

हरसिंगार (पारिजात) के फूलों से विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक रंग (डाई) तैयार किए जा सकते हैं। इनसे मुख्यतःनारंगी, पीला और हल्के भूरे रंग के डाई बनाए जाते हैं। यहां कुछ प्रमुख प्रकार दिए गए हैं:

1. **नारंगी रंग (Orange Dye)** – हरसिंगार के फूलों की पंखुड़ियों से प्राकृतिक नारंगी रंग प्राप्त किया जा सकता है। यह कपड़ों और ऊनी धागों को रंगने के लिए उपयुक्त होता है।
2. **पीला रंग (Yellow Dye)** - फूलों की पंखुड़ियों को पानी में उबालने से हल्का पीला रंग प्राप्त होता है, जो सिल्क और कॉटन पर अच्छा प्रभाव डालता है।
3. **हल्का भूरा रंग (Light Brown Dye)**- जब फूलों को लंबे समय तक भिगोकर या उच्च तापमान पर उबाला जाता है, तो इससे हल्का भूरा रंग निकलता है।
4. **केसरिया रंग (Saffron Dye)**- फूलों से निकाला गया गाढ़ा अर्क एक गहरे केसरिया रंग की छटा देता है, जो पारंपरिक वस्त्र रंगाई में उपयोगी हो सकता है। हरसिंगार के फूलों से बने प्राकृतिक रंग पर्यावरण के अनुकूल होते हैं और इन्हें कपड़ों, कागज, और अन्य कलात्मक कार्यों में उपयोग किया जा सकता है।

निष्कर्ष : हरशिंगार (जिसे पारिजात भी कहा जाता है) फूलों से रंग निर्माण एक प्राकृतिक और पारंपरिक विधि है, जिसमें फूलों के रस और पिगमेंट्स का उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया में फूलों को एकत्रित करके, उनका रस निकाला जाता है, और फिर उसे विभिन्न माध्यमों में रंग के रूप में परिवर्तित किया जाता है। ये रंग न केवल सौंदर्य में वृद्धि करते हैं, बल्कि पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित होते हैं क्योंकि इनमें कोई रासायनिक तत्व नहीं होते ।

इस प्रक्रिया का निष्कर्ष यह है कि हरशिंगार फूलों से बनाए गए रंग प्राकृतिक, स्वास्थ्यकर और पर्यावरण मित्र होते हैं। इन रंगों का उपयोग पारंपरिक कला, कपड़े रंगने, सजावट और सौंदर्य प्रसाधनों में किया जा सकता है। इसके अलावा, यह प्रक्रिया हमें प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम भी प्रदान करती है।

संदर्भ :

1. **"पारंपरिक भारतीय औषधियाँ"**- भारतीय औषधियों और पौधों के उपयोग पर आधारित इस पुस्तक में फूलों के रंगों और उनके औषधीय गुणों का वर्णन मिलता है।
2. **"प्राकृतिक रंग: सिद्धांत और प्रक्रिया" (Natural Dyes: Their Sources and Application)** – इस पुस्तक में विभिन्न प्राकृतिक स्रोतों से रंग बनाने की प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है, जिसमें फूलों, पौधों और अन्य जैविक तत्वों का उपयोग शामिल है।
3. **"भारतीय पारंपरिक रंगाई" (Traditional Indian Dyeing)**- यह पुस्तक भारतीय पारंपरिक रंगाई विधियों पर आधारित है, जहां फूलों और पत्तियों से रंग निर्माण के तरीकों पर जानकारी मिलती है ।

02/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

गांठ गोभी की उन्नत खेती: उत्पादन एवं गुणवत्ता सुधार के वैज्ञानिक उपाय

आकाश कुमार शोध छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

यथार्थ मिश्रा शोध छात्र, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

आशीष कुमार सिंह सहायक प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

परिचय: गाँठ गोभी (Brassica oleracea var. gongylodes) एक महत्वपूर्ण शीतकालीन सब्जी फसल है, जो क्रूसीफेरी कुल से संबंधित है। इसकी मोटी, गोल गांठ मुख्य रूप से सब्जी के रूप में उपयोग की जाती है, जबकि इसकी कोमल पत्तियाँ सूप व अन्य व्यंजनों में प्रयोग होती हैं। यह फसल न केवल स्वादिष्ट होती है, बल्कि पोषण की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। प्रति 100 ग्राम गाँठ गोभी में लगभग 36 कैलोरी ऊर्जा, 2.1% प्रोटीन, 6.7% कार्बोहाइड्रेट तथा 0.1% वसा पाई जाती है। इसके अलावा इसमें कैल्शियम (लगभग 1.95%), फॉस्फोरस (लगभग 0.60%), लौह (193 ppm) तथा तांबा (15 ppm) जैसे महत्वपूर्ण खनिज तत्व मौजूद होते हैं, जो हड्डियों के विकास, रक्त निर्माण और शरीर की चयापचय क्रियाओं में सहायक होते हैं। विटामिन की दृष्टि से इसमें विटामिन A (लगभग 20 I) तथा विटामिन C (लगभग 50 mg प्रति 100 ग्राम) पाया जाता है, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, त्वचा स्वास्थ्य बनाए रखने और एंटीऑक्सीडेंट सुरक्षा प्रदान करने में मदद करता है। उत्तर प्रदेश सहित भारत के अधिकांश भागों में इसकी सफल खेती की जाती है। वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर किसान अधिक उत्पादन के साथ बेहतर गुणवत्ता की फसल प्राप्त कर सकते हैं।

जलवायु: गाँठ गोभी ठंडी जलवायु की फसल है। इसकी अच्छी वृद्धि हेतु 15-20°C तापमान उपयुक्त रहता है। यदि अधिक तापमान 25°C हो जाए तो गांठ सख्त और रेशेदार हो जाती है, जिससे गुणवत्ता प्रभावित होती है। तथा समय से पहले फूल बोल्टिंग की अवस्था आ जाती है। अच्छी गुणवत्ता की गांठ प्राप्त करने हेतु मध्यम ठंडा मौसम आवश्यक है।

भूमि का चयन एवं तैयारी: गाँठ गोभी की खेती के लिए उपजाऊ, भुरभुरी, कार्बनिक पदार्थों से भरपूर, अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। ऐसी मिट्टी में पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है, जिससे गांठ का आकार समान, कोमल गांठ प्राप्त होती है। मिट्टी का श्वा मान 5.5 -6.5 के बीच होना चाहिए। अधिक अम्लीय या अधिक क्षारीय मिट्टी में पोषक तत्वों का अवशोषण प्रभावित होता है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं गांठ की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। खेत की तैयारी के लिए सबसे पहले एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए, जिससे खरपतवार नष्ट हो जाए और मिट्टी की संरचना सुधर सके। इसके बाद 2-3 बार कल्टीवेटर से जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बना लेते है। अंतिम जुताई के समय 15-20 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद डालकर खेत को अच्छी तरह समतल कर लेना चाहिए।

उन्नत किस्में

उच्च उत्पादन एवं गुणवत्ता सुधार के लिए निम्न उन्नत किस्में उपयुक्त हैं-

व्हाइट वियना: यह किस्म शीघ्र तैयार हो जाती है तथा इसकी गांठ कोमल एवं हल्के हरे रंग की होती है। इसकी औसत उपज लगभग 150-200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

पर्पल वियना: यह किस्म आकर्षक रंग एवं स्वादिष्ट के लिये जानी जाती है। इसकी औसत उपज लगभग 150-200 क्विं. प्रति हे. होती है तथा यह White Vienna की तुलना में थोड़ी देर से तैयार होती है।

पूसा विराट: यह अधिक उपज देने वाली किस्म है जो उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उपज लगभग 230 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

स्नो व्हाइट (एफ1 संकर): यह आकर्षक हल्के हरे रंग की, कोमल एवं समान आकार की गांठ वाली किस्म है। इसकी गुणवत्ता अच्छी होती है तथा औसत उपज लगभग 250-300 क्विंटल/हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

GVR-2080 (एफ1 संकर) : यह उच्च उपज देने वाली संकर किस्म है, जिसमें अच्छी भंडारण क्षमता तथा कीट-रोग सहनशीलता पाई जाती है; पर्वतीय क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

नर्सरी प्रबंधन और बुवाई (संक्षेप में): गाँठ गोभी के लिए अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी में 1-1.2 मी चौड़ी व 15-20 सेमी ऊँची क्यारियाँ बनाकर प्रति वर्गमीटर 2-3 किग्रा गोबर खाद मिलाएँ। 1-1.5 किग्रा/हेक्टेयर बीज को कार्बेन्डाजिम (2g/kg) या ट्राइकोडर्मा (4-5g/kg) से उपचारित कर 5-6 सेमी दूरी पर 1.5-2 सेमी गहराई में बोएँ और हल्की सिंचाई करें। 4-5 सप्ताह में पौध रोपाई योग्य हो जाती है। मैदानी क्षेत्रों में सितंबर-अक्टूबर तथा पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च-अगस्त बुवाई उपयुक्त रहती है। इससे स्वस्थ पौध व अधिक उत्पादन मिलता है।

रोपाई की विधि एवं दूरी : गाँठ गोभी की रोपाई के लिए 4-5 सप्ताह पुरानी स्वस्थ एवं मजबूत पौध का चयन करना चाहिए, और रोपाई सामान्यतः तैयार खेत में शाम के समय तथा हल्की नमी की स्थिति में करनी चाहिए, जिससे पौधों का विकास अच्छा हो। गाँठ गोभी की रोपाई के लिए पौधे से कतारों की दूरी 30-45 cm और 25×40 cm रखने से गाँठ का आकार समान, कोमल एवं गुणवत्तापूर्ण अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन : गाँठ गोभी की अच्छी वृद्धि एवं उच्च उत्पादन के लिए संतुलित खाद एवं उर्वरक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है। खेत की अंतिम जुताई के समय 20-22 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद मिला देनी चाहिए, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त 100 किग्रा नाइट्रोजन, 85 किग्रा फास्फोरस एवं 85 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा रोपाई के समय तथा शेष आधी मात्रा 25-30 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे बोरॉन का प्रयोग करने से गाँठ का आकार, गुणवत्ता एवं उपज में वृद्धि आती है।

सिंचाई प्रबंधन : गाँठ गोभी की फसल को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है, क्योंकि गाँठ के आकार और विकाश के लिये नमी बनाए रखना अच्छा माना जाता है। रोपाई के तुरंत बाद पहली सिंचाई करनी चाहिए, और उसके बाद 7-10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहें। गाँठ गोभी की फसल को अधिक जलभराव से बचाव करना आवश्यक है, क्योंकि इससे जड़ सड़न की समस्या हो सकती है।

खरपतवार नियंत्रण : गाँठ गोभी की फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है, क्योंकि इस समय खरपतवार पोषक तत्वों, जल एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। जिसे उपज में कमी आ जाती है। गाँठ गोभी की फसल में रोपाई के 20-25 दिन बाद पहली निराई-गुड़ाई तथा 40-45 दिन बाद दूसरी निराई-गुड़ाई करना लाभकारी रहता है। खेत में मल्चिंग का प्रयोग करके भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। और रासायनिक नियंत्रण के लिए पेंडीमेथालिन 1.0 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई के तुरंत बाद प्रयोग करने से खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। उचित खरपतवार नियंत्रण से पौधों की वृद्धि अच्छी होती है, तथा उपज एवं गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है।

कीट प्रबंधन

A. माहू- यह पत्तियों एवं कोमल भागों का रस चूसकर पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। इसके नियंत्रण हेतु थायमेथोक्साम 25 WG @ 0.25 ग्राम/लीटर, तथा एसीटामिप्रिड 20 SP @ 0.25 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करना प्रभावी रहता है, और प्रारंभिक अवस्था में नीम तेल 5 मि.ली./लीटर पानी का प्रयोग सुरक्षित एवं लाभकारी होता है। साथ ही पीले चिपचिपे ट्रैप लगाने से माहू की संख्या नियंत्रित की जा सकती है।

B. डायमंड बैक मॉथ- इस कीट की सूंडी पत्तियों को जालीदार बना देती है, जिससे गाँठ की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसके नियंत्रण हेतु फेरोमोन ट्रैप 10-12 ट्रैप/हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए। और इसकी रोकथाम के लिये इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 SG @ 0.4 ग्राम/लीटर, तथा क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 SC @ 0.3 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करते हैं।

रोग प्रबंधन

A. डाउनी मिल्ड्यू- यह एक फफूंदजनित रोग है, जिसमें पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले धब्बे तथा निचली सतह पर धूसर फफूंद दिखाई देती है, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है। इसके नियंत्रण हेतु मैनकोजेब 75 WP @ 2.5 ग्राम/लीटर पानी, तथा मेटालेक्सिल + मैनकोजेब (Ridomil MZ) @ 2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव प्रभावी रहता है। इसकी रोकथाम के लिए उचित दूरी पर रोपाई तथा जल निकास की व्यवस्था बनाए रखना आवश्यक रहता है।

B. ब्लैक रॉट- यह एक जीवाणुजनित रोग है, जिसमें पत्तियों के किनारों से V-आकार के पीले धब्बे बनते लगते हैं, और बाद में पत्तियाँ काली होकर सूखने लगती हैं। इसके नियंत्रण हेतु रोगमुक्त बीज का चयन, बीज उपचार स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 0.01% (100 ppm) से करना चाहिए। इसके नियंत्रण हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड @ 2.5 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए।

C. अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट- यह फफूंदजनित रोग है, जिसमें पत्तियों पर भूरे रंग के गोल धब्बे बन जाते हैं जो बाद में बड़े होकर पत्तियों को सुखा देते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है। इसके नियंत्रण के लिए मैनकोजेब @ 2.5 ग्राम/लीटर पानी, तथा एजोक्षीस्ट्रोबिन @ 1 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करना प्रभावी रहता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

अजोला उत्पादन की आधुनिक तकनीक एवं उपयोगिता

पंकज कुमार सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
अमन सिंह विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी.पी.बी)
डॉ. प्रवीण कुमार मौर्य विषय वस्तु विषेषज्ञ (उद्यान)
डॉ. बिनायक प्रताप शाही वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
कृषि विज्ञान केन्द्र, मसौधा, अयोध्या, आ. न.दे. कृषि एवं प्रौ0 वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या, (उ.प्र.)

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। कृषि उत्पादों की कीमतों में अनिश्चितता, उर्वरकों, बीजों एवं अन्य निवेशों की बढ़ती लागत, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट तथा बदलते जलवायु परिवेश ने खेती को जोखिमपूर्ण और कम लाभकारी बना दिया है। परिणामस्वरूप किसानों का खेती के प्रति आकर्षण भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में आवश्यकता है कि कृषि प्रणाली में ऐसे नवाचारों और विकल्पों को अपनाया जाए, जो कम लागत में अधिक उत्पादन के साथ-साथ टिकाऊ भी हों। इस संदर्भ में अजोला उत्पादन एक अत्यंत उपयोगी एवं लाभकारी तकनीक के रूप में उभरकर सामने आया है। अजोला एक तैरने वाला जलीय फर्न है जो पानी की सतह पर तेजी से फैलता है। भारत में मुख्य रूप से अजोला की प्रजाति है अजोला पिन्नाटा पायी जाती है। यह गर्मी सहन करने वाली किस्म है। यह एनाबिना नामक सहजीवी नील हरित शैवाल के साथ मिलकर वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करता है। और हरी खाद की तरह फसल को नत्रजन की पूर्ति करता है। धान की फसल में अजोला को भी नील हरित शैवाल की तरह हरी खाद के रूप में उगाया जा सकता है, हरी खाद भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है तथा फसल का उत्पादन भी बढ़ाती है।

भारतीय कृषि व्यवस्था में पशुपालन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह न केवल किसानों की आय का प्रमुख स्रोत है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी माना जाता है। अजोला इस क्षेत्र में भी अपनी उपयोगिता सिद्ध करता है। यह पशुओं, मछलियों एवं कुक्कुट के लिए एक सस्ता, सुलभ एवं पौष्टिक चारा है। जिससे पशुओं के दूध में बढ़ोत्तरी होती है और दूध की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है। इसी विशेषता के कारण अजोला कृषि, जैविक खेती, पशुपालन एवं पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया है कम लागत, सरल उत्पादन तकनीक और उच्च पोषण मूल्य के कारण यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में सहायक है। अजोला की विशेषता यह है कि अनुकूल वातावरण में पांच दिनों में ही दो गुना हो जाता है इस पूरे वर्ष बढ़ने दिया जाए तो 300 टन से भी अधिक सेंद्रिय पदार्थ प्रति हे. पैदा किया जा सकता है। यानी 40 किलोग्राम नत्रजन प्रति हे. प्राप्त होता है। अजोला में 3.5% नत्रजन तथा कई तरह के कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। अजोला किसानों को कम कीमत पर बेहतर जैविक खाद मुहैया करने की दिशा में जैव उर्वरक का स्रोत है। इसमें उत्तम गुणवत्ता युक्त प्रोटीन एवं खनिज तत्व होने के कारण पशु से आसानी से पचा लेते हैं। कम लागत और कम समय में अधिक उत्पादन के कारण है अजोला एक लाभकारी विकल्प बन चुका है तथा किसानों के जीविकोपार्जन हेतु वरदान साबित हो रहा है।

अजोला की उपयोगिता

अजोला जैविक हरी खाद: धान के खेतों में इसका उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। 2 से 4 इंच पानी से भरे खेत में 10 टन ताजा अजोला को रोपाई से पूर्व डाल दिया जाता है। इसके साथ ही ऊपर 30 से 40 किलोग्राम सुपर फास्फेट का छिड़काव भी कर दिया जाता है। इसकी वृद्धि के लिए 30 से 35 डिग्री सेल्सियस का तापक्रम अत्यंत अनुकूल रहता है। धान के खेत में अजोला छोटे-मोटे खरपतवारों को भी

दबा देता है तथा इसके उपयोग से धान की फसल में 5 से 15 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि संभावित रहती है। अजोला वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड और नत्रजन को क्रमशः कार्बोहाइड्रेट और अमोनिया में बदल सकता है और अपघटन के बाद, फसल को नत्रजन उपलब्ध करवाता है। तथा मिट्टी में जैविक कार्बन सामग्री उपलब्ध करवाता है। ऑक्सीजेनिक प्रकाश संश्लेषण में उत्पन्न ऑक्सीजन फसलों की जड़ प्रणाली और मिट्टी में उपलब्ध अन्य सूक्ष्मजीवों को श्वसन में मदद करता है। यह धान की सिंचित खेत से वाष्पीकरण की दर को कम करता है। अजोला रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरकों के विकल्प का काम कर सकता है और यह फसल की उपज एवं गुणवत्ता बढ़ाता है। यह रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की क्षमता को भी बढ़ाता है। अजोला क्यारी से हटाए गये पानी को सब्जियों की खेती में प्रयोग में लेने से यह एक वृद्धि नियामक का कार्य करता है। जिससे सब्जियों एवं फूलों के उत्पादन में वृद्धि होती है। अजोला एक उत्तम जैव उर्वरक एवं हरी खाद के रूप में कार्य करता है।

पशुचारा: अजोला सस्ता, सुपाच्य एवं पौष्टिक पूरक पशु आहार है। इसे खिलाने से वसा व वसा रहित पदार्थ सामान्य आहार खाने वाले पशुओं के दूध में अधिक पायी जाती है। यह पशुओं में बांझपन निवारण में उपयोगी पाया गया है। पशुओं के पेशाब में खून की समस्या फास्फोरस की कमी से होती है। पशुओं को अजोला खिलाने से यह कमी दूर हो जाती है। अजोला से पशुओं में कैल्शियम, फास्फोरस, लोहे की आवश्यकता की पूर्ति होती है जिससे पशुओं का शारीरिक विकास अच्छा होता है। अजोला में प्रोटीन आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन (विटामिन ए, विटामिन बी-12, बीटा-कैरोटीन) एवं खनिज लवण जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, पोटेशियम, आयरन, कॉपर, मैग्नीशियम आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते है।

इसमें शुष्क मात्रा के आधार पर 40 से 60% प्रोटीन, 12 से 15% रेशा, 10 से 15% खनिज एवं 7 से 10% अमीनो अम्ल, जैव सक्रिय पदार्थ एवं पॉलीमर आदि पाये जाते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की मात्रा अत्यंत कम होती है। अतः इसकी संरचना इसे अत्यंत पौष्टिक एवं असरकारक आदर्श पशु आहार बनाती है। प्रति पशु 1.5 किलोग्राम में अजोला नियमित रूप से दिया जा सकता है, जो पूरक पशु आहार का काम करता है। यदि तो दुधारू पशु को 1.5 से 2 किलोग्राम अजोला प्रतिदिन दिया जाता है तो दुग्ध उत्पादन में 15 से 20% वृद्धि दर्ज की गयी है। और इसे खाने वाली गाय भैंसों के दूध की गुणवत्ता भी पहले से बेहतर हो जाती है। अजोला की वजह से ही गाय भैंस के दूध में गाढ़ापन बढ़ जाता है। अगर इस गाय भैंस, भेड़ बकरियों को खिलाया जाता है तो इससे उत्पादन और प्रजनन शक्ति की क्षमता काफी बढ़ जाती है।

अजोला कुक्कुट आहार: यह मुर्गियों का पसंदीदा आहार है। कुक्कुट आहार के रूप में अजोला का प्रयोग करने पर ब्रायलर पक्षियों के बाहर में वृद्धि तथा अंडा उत्पादन में भी वृद्धि पायी जाती है। यह मुर्गी पालन करने वाले व्यवसाईयों के लिए बेहद लाभकारी चारा सिद्ध हो रहा है। सुखे अजोला को पोल्ट्री फीड के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है और हरा अजोला मछलियों के लिए भी एक अच्छा आहार है।

अजोला उत्पादन की आधुनिक तकनीक

1. सबसे पहले किसी छायादार स्थान पर 2 मीटर लंबा, 2 मीटर चौड़ा एवं 30 सेंटीमीटर गहरा गड्ढा खोदा जाता है। पानी के हिसाब को रोकने के लिए इस गड्ढे को प्लास्टिक शीट से ढक देते हैं। या पक्का निर्माण कर ढांचा बना सकते हैं इसमें प्लास्टिक शीट बिछाने की आवश्यकता नहीं होती है। 2. गड्ढे में 10 से 15 किलोग्राम छनी मिट्टी फैला दी जाती है। 3. 10 लीटर पानी में मिश्रित 2 किलोग्राम गोबर एवं 30 ग्राम सुपर फास्फेट से बना घोल शीट पर डाला जाता है। जल स्तर को लगभग 10 सेंटीमीटर तक करने हेतु और पानी डाला जाता है। 4. अजोला क्यारी में मिट्टी तथा पानी के हल्के से हिलाने के बाद 0.5 से 1 किलोग्राम शुद्ध अजोला इनोकूलम पानी पर एक सामान फैला दी जाती है। संचारण के तुरंत बाद अजोला के पौधों को सीधा करने हेतु अजोला पर ताजा पानी छिड़का जाना चाहिए। 5. एक सप्ताह के अंदर अजोला संपूर्ण क्यारी में फैल जाता है एवं एक मोटी चादर जैसी बन जाती है। 6. अजोला की तेज वृद्धि एवं पैदावार हेतु 5 दिनों में एक बार 20 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 1 किलोग्राम गाय का गोबर मिलाया जाना चाहिए। 7. अजोला में खनिज की मात्रा बढ़ाने हेतु एक-एक सप्ताह के अंतराल पर मैग्नीशियम, आयरन, कॉपर, सल्फर आदि से युक्त एक सूक्ष्मपोषक मिश्रण भी मिलाया जा सकता है। 8. नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने तथा सूक्ष्म पोषक की कमी को रोकने के लिए 30 दिनों में एक बार लगभग 5 किलोग्राम क्यारी की मिट्टी को नयी मिट्टी से बदलना चाहिए। 9. कीटों एवं बीमारियों से संक्रमित होने पर अजोला के शुद्ध कल्चर से नई क्यारी तैयार तथा संचारण किया जाना चाहिए।

अजोला की कटाई * तेजी से बढ़कर 10 से 15 दिनों में गड्ढे को भर देगा। उसके बाद से 300 से 600 ग्राम अजोला प्रतिदिन काटा जा सकता है। * प्लास्टिक की छलनी या ऐसी ट्रे जिसके निचले भाग में छेद हो की सहायता से 15वें दिन के बाद से प्रतिदिन निकाला जा सकता है। * कटे हुये अजोला से गोबर की गन्ध हटाने के लिए ताजा पानी से अच्छी तरह धोकर पशुओं को खिलाने हेतु उपयोग करना चाहिए।

अजोला उत्पादन के लाभ * कम लागत में अधिक उत्पादन * तेजी से बढ़ाने वाली फसल * पशुपालन में लागत कम करता है * अतिरिक्त आय का स्रोत * पर्यावरण के अनुकूल

अजोला उत्पादन में ध्यान रखने हेतु प्रभावी बिन्दु एवं सावधानियां * बेहतर उत्पादन प्राप्त करने के लिए संक्रमण से मुक्त वातावरण का रखना आवश्यक है। * अजोला की अधिक बढ़वार एवं उत्पादन के लिए इसे नियमित रूप से काटना चाहिए। * अच्छी वृद्धि के लिए तापमान महत्वपूर्ण कारक है। लगभग 35 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं सापेक्षिक आर्द्रता 65.80% होना चाहिए। ठंडे क्षेत्रों में ठंडे मौसम के प्रभाव को कम करने हेतु क्यारी को प्लास्टिक शीट से ढक देना चाहिए।

* माध्यम का पी.एच. 5.5 से 7 के बीच होना चाहिए। * उपयुक्त पोषक तत्व जैसे गोबर का घोल एवं सूक्ष्मपोषक तत्व आवश्यकतानुसार डालते रहना चाहिए।

निष्कर्ष-अजोला उत्पादन आधुनिक कृषि प्रणाली के लिए एक अत्यंत प्रभावी, टिकाऊ एवं बहुउद्देशीय तकनीक है। यह न केवल कृषि और पशुपालन के समन्वित विकास में सहायक है, बल्कि किसानों को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में भी एक मजबूत आधार प्रदान करता है। वर्तमान परिदृश्य में, जब सतत कृषि की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, अजोला उत्पादन किसानों के लिए एक सशक्त एवं लाभकारी विकल्प के रूप में स्थापित हो रहा है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

फील्ड पर प्रयोगात्मक फसल

(EXPERIMENTAL CROP)

आशीष रजक (सस्य विज्ञान विभाग)
कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

परिचय

कृषि विज्ञान में नई-नई तकनीकों, उन्नत बीजों, उर्वरकों और कीटनाशकों का विकास लगातार होता रहता है। इन नई खोजों को सीधे किसानों तक पहुँचाने से पहले उनकी प्रभावशीलता को जांचना आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य से खेत **(Field)** में प्रयोगात्मक फसल उगाई जाती है, जिसे **"Experimental Crop"** कहा जाता है।

प्रयोगात्मक फसल क्या है?

प्रयोगात्मक फसल वह फसल होती है जिसे वैज्ञानिक या शोधकर्ता किसी विशेष उद्देश्य के लिए उगाते हैं, जैसे-

* नई बीज किस्म का परीक्षण
* उर्वरकों के प्रभाव का अध्ययन
* सिंचाई विधियों की तुलना
* कीटनाशकों/रोग नियंत्रण के उपाय
* फील्ड प्रयोग की विशेषताएँ

यह प्राकृतिक परिस्थितियों में किया जाता है

* इसमें मिट्टी, जलवायु, वर्षा का वास्तविक प्रभाव शामिल होता है
* परिणाम अधिक व्यावहारिक और भरोसेमंद होते हैं

फील्ड प्रयोग को सही ढंग से करने के लिए वैज्ञानिक डिज़ाइन का उपयोग किया जाता है-

1. RBD (Randomized Block Design)

* खेत को ब्लॉकों में बाँटा जाता है
* हर ब्लॉक में सभी उपचार होते हैं
* मिट्टी की असमानता को कम करता है

2. CRD (Completely Randomized Design)

* उपचार पूरी तरह से यादृच्छिक (random) तरीके से दिए जाते हैं
* छोटे और समान खेतों के लिए उपयुक्त

प्रयोग करने की विधि

* **भूमि चयन :** समान उपजाऊ खेत का चयन
* **लेआउट बनाना :** प्लॉट्स और ब्लॉक्स का निर्धारण
* **उपचार देना :** जैसे अलग-अलग उर्वरक मात्रा
* **पुनरावृत्ति (Replication) :** हर उपचार को कई बार दोहराना

डेटा रिकॉर्ड करना : ऊँचाई, उत्पादन, रोग आदि का डेटा

डेटा विश्लेषण (Analysis)

* फील्ड प्रयोग के परिणामों का विश्लेषण करने के लिए ANOVA (Analysis of Variance) का उपयोग किया जाता है। इससे यह पता चलता है कि कौन-सा उपचार वास्तव में प्रभावी है।

लाभ

* नई तकनीक की सही जानकारी मिलती है
* उत्पादन बढ़ाने में मदद
* किसानों के लिए बेहतर विकल्प
* वैज्ञानिक शोध को मजबूती

सीमाएँ

* समय और लागत अधिक लगती है
* मौसम पर निर्भरता
* सही प्रबंधन की आवश्यकता

निष्कर्ष

फील्ड पर प्रयोगात्मक फसल कृषि अनुसंधान का आधार है। इसके माध्यम से नई तकनीकों को वास्तविक परिस्थितियों में परखा जाता है और सही परिणाम किसानों तक पहुँचाए जाते हैं। इससे कृषि अधिक वैज्ञानिक, उत्पादक और लाभदायक बनती है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

खेती और पशुपालन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं

आशीष रजक कृषि संकाय सस्य विज्ञान, विभाग
सुभाष गुप्ता कृषि संकाय उद्यान विभाग
डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता (असिस्टेंट प्रोफेसर)
कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया)
विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

भारत की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही खेती और पशुपालन साथ-साथ किए जाते रहे हैं। ग्रामीण जीवन में इन दोनों का विशेष महत्व है। खेती और पशुपालन एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं, इसलिए इन्हें एक ही सिक्के के दो पहलू कहा जाता है। किसान की उन्नति और ग्रामीण विकास में दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

खेती के कार्यों में पशुओं का उपयोग बहुत पहले से किया जाता रहा है। बैल खेत जोतने, सिंचाई करने तथा सामान ढोने में सहायता करते हैं। आधुनिक युग में मशीनों का उपयोग बढ़ गया है, फिर भी कई ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं का महत्व बना हुआ है। गाय, भैंस, बकरी और मुर्गी जैसे पशु किसानों को दूध, अंडे और मांस प्रदान करते हैं, जिससे किसानों की अतिरिक्त आय होती है। पशुओं से प्राप्त दूध से घी, दही, पनीर और मक्खन जैसे उत्पाद बनाए जाते हैं, जिनकी बाजार में अच्छी मांग रहती है।जैसे उत्पाद बनाए जाते हैं, जिनकी बाजार में अच्छी मांग रहती है।पशुपालन का एक बड़ा लाभ यह भी है कि पशुओं से प्राप्त गोबर खेतों के लिए प्राकृतिक खाद का कार्य करता है। इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और रासायनिक खादों पर निर्भरता कम होती है। गोबर से जैविक खाद और बायोगैस भी बनाई जाती है, जो पर्यावरण के लिए लाभदायक है। इससे किसानों के खर्च में कमी आती है और खेती अधिक लाभकारी बनती है।

दूसरी ओर, खेती भी पशुपालन के लिए अत्यंत आवश्यक है। खेतों से प्राप्त हरा चारा, भूसा और फसल अवशेष पशुओं के भोजन के रूप में उपयोग किए जाते हैं। यदि खेती अच्छी होगी तो पशुओं को पर्याप्त पोषण मिलेगा और उनका स्वास्थ्य बेहतर रहेगा। स्वस्थ पशु अधिक दूध देंगे और किसानों की आय बढ़ेगी। इस प्रकार खेती और पशुपालन एक-दूसरे को मजबूती प्रदान करते हैं।

आज के समय में केवल खेती पर निर्भर रहना कई बार जोखिम भरा हो सकता है, क्योंकि प्राकृतिक आपदाएँ, मौसम परिवर्तन और फसल रोग किसानों को नुकसान पहुँचा सकते हैं। ऐसे समय में पशुपालन किसानों के लिए आय का दूसरा साधन बनता है। दूध उत्पादन, डेयरी उद्योग और पोल्ट्री फार्मिंग ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया है। सरकार भी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किसानों को पशुपालन के लिए प्रोत्साहित कर रही है।

अंत में कहा जा सकता है कि खेती और पशुपालन का संबंध अत्यंत गहरा और अटूट है। दोनों मिलकर किसान की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाते हैं तथा देश की प्रगति में योगदान देते हैं। यदि खेती और पशुपालन का संतुलित विकास किया जाए, तो किसानों की आय बढ़ेगी, रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और ग्रामीण जीवन अधिक समृद्ध बनेगा।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

फफूंदी जनित रोग

अनमोल चौरसिया, स्नेहा गुप्ता
सुष्मिता मौर्या
पादप रोग विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

सुनील कुमार पादप रोग विज्ञान विभाग, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा

बैंगन (सोलनम मेलोंगेना एल.), जो सोलानेसी कुल का पौधा है, जो फोमोप्सिस वेक्सन्स नामक फफूंद के कारण होता है। विश्व के विभिन्न भागों में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण और स्वदेशी सब्जी है। बैंगन प्रोटीन का अच्छा स्रोत है और इसके कच्चे फल आमतौर पर सब्जी के रूप में खाए जाते हैं क्योंकि इनमें विटामिन ए, बी और सी के साथ-साथ कैल्शियम, आयरन और फास्फोरस जैसे खनिज भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके सूखे अंकुरों का उपयोग ईंधन के रूप में किया जा सकता है। इसमें पानी की मात्रा अधिक, कैलोरी और वसा कम और प्रोटीन, फाइबर और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कुछ अधिक होती है। वर्ष 2022 में, विश्व भर में बैंगन की खेती 22,64,329 हेक्टेयर भूमि पर की गई, जिससे प्रति हेक्टेयर 30.7 मीट्रिक टन की उपज और कुल उत्पादन 54,7821 1 मीट्रिक टन रहा।

भारत में बैंगन की कुल खेती 9,1 1 ,306 हेक्टेयर भूमि पर की गई, जिससे प्रति हेक्टेयर 23.1 मीट्रिक टन की उपज और कुल उत्पादन 1 6,55782 मीट्रिक टन रहा। भारत में, बैंगन का सबसे अधिक उत्पादन करने वाले राज्य पश्चिम बंगाल, ओडिशा, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, असम, उत्तर प्रदेश, झारखंड और तमिलनाडु हैं। बैंगन विभिन्न पादप रोगजनकों के कारण होने वाली कई बीमारियों के प्रति संवेदनशील होता है। बैंगन में लगने वाली आम बीमारियों में अल्टरनेरिया ब्लाइट, एन्थ्रेक्नोज, सर्कोस्पोरा मेलोंगेनी, यह कवक मिट्टी, बीजों और कृषि अपशिष्ट में जीवित रह सकता है। पत्तियों और तनों पर जहां नमी होती है, वहां इसके बीजाणु आसानी से अंकुरित हो जाते हैं। फाइटोफ्थोरा, फ्यूजेरियम, कोलेटोट्राइकम और फोमोप्सिस कवक बैंगन के फल सड़न रोग से जुड़े हैं। हालांकि, फोमोप्सिस वेक्सन्स फल सड़न, पत्ती झुलसा रोग और तना कैंकर रोग का मुख्य कारण है। यह फसल कई रोगों के प्रति संवेदनशील है, जैसे कि कवक, जीवाणु, विषाणु और नेमाटोड रोग। इन सभी रोगों में से, बीज जनित कवक रोग फोमोप्सिस ब्लाइट (फोमोप्सिस वेक्सन्स) और लीफ स्पॉट (अल्टरनेरिया सोलानी) बीज अंकुरण को कम करते हैं और उपज में 30-50 प्रतिशत तक की हानि का कारण बनते हैं। बीज जनित कवक रोगजनक न केवल फलों के बाजार मूल्य को प्रभावित करते हैं, बल्कि उनके पोषक तत्वों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। बैंगन का झुलसा रोग (मुख्यतः फोमोप्सिस फल सड़न) पत्तियों, तनों और फलों को प्रभावित करता है, जिससे पत्तियों पर भूरे काले धब्बे, पीलापन, फलों में धंसी हुई सड़न और अंततः पौधा सूख जाता है। यह कवक जनित बीमारी है जो 50 प्रतिशत तक उपज कम कर सकती है। शुरुआत में पत्तियों पर छोटे, गोल, भूरे या धूसर रंग के धब्बे बनते हैं, जिनके चारों ओर पीला घेरा हो सकता है। ये धब्बे बढ़कर आपस में मिल जाते हैं, जिससे पत्तियां झुलसी हुई और सूखी हुई दिखाई देती हैं।

तनों पर भूरे से काले रंग के फटे हुए नासूर या धब्बे बन जाते हैं, जिससे पौधा कमजोर होकर टूट सकता है या सूख जाता है।

फलों पर हल्के भूरे, धंसे हुए, गोल या अनियमित आकार के सड़न वाले धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे बड़े होकर पूरे फल को सड़ा सकते हैं और उन पर काली चित्तियां भी दिख सकती हैं।

यह बीमारी पौधशाला में छोटे पौधों को भी प्रभावित करती है, जिससे वे सड़ जाते हैं। अत्यधिक नमी होने पर पौधे जमीन के पास से सड़कर गिरने लगते हैं । एक अत्यंत हानिकारक फफूंद जनित रोग है, जो फोमोप्सिस वेक्सन्स नामक फफूंद के कारण होता है। यह रोग नर्सरी में पौधों को जल्दी नष्ट कर सकता है।

यह रोग मुख्य रूप से बीज जनित होता है, यानी संक्रमित बीज के माध्यम से खेत में आता है। संक्रमित पौधों से बीजाणु हवा, पानी की बूंदों (बारिश या सिंचाई), और कीटों के माध्यम से स्वस्थ पौधों में तेजी से फैलते हैं, जिससे कुछ ही दिनों में पूरा खेत संक्रमित हो सकता है। बैंगन में झुलसा रोग

(विशेषकर फोमोप्सिस झुलसा) के तेजी से फैलने के लिए निम्नलिखित परिस्थितियां अनुकूल होती हैं:

हवा में अधिक नमी (85-90 प्रतिशत से अधिक) या लगातार हल्की बारिश इस कवक के विकास के लिए सबसे अनुकूल है। हवा में नमी की मात्रा इस रोग के फैलाव में बहुत बड़ा योगदान देती है, तब यह रोग आसानी से एक पौधे से दूसरे पौधे तक फैलने लगता है। नमी के कारण पत्तियाँ और टहनियाँ अधिक समय तक गीली रहती है। इस रोग के फैलने के लिए मध्यम से ऊँचे तापमान की आवश्यकता होती है। विशेषकर जब वातावरण का तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है, तब यह कवक बहुत सक्रिय हो जाते हैं और तेजी से वृद्धि करते हैं। यह तापमान गर्मी के अंत और वर्षा ऋतु की शुरुआत में आमतौर पर पाया जाता है।

लंबे समय तक बारिश या भारी ओस पड़ने से पत्तियों पर पानी जमा रहता है, जो रोग के बीजाणुओं को फैलने में मदद करता है, जल निकासी की खराब व्यवस्था और खेत में पानी जमा रहना रोग को बढ़ावा देता है।

पौधों के बीच कम दूरी होने पर हवा का संचार ठीक से नहीं होता, जिससे पत्तियों पर नमी बनी रहती है और फफूंद तेजी से फैलती है।

* फसल अवशेषों को गहरी जुताई करके या जलाकर मिट्टी में दबा देना।

* जैसा कि हम जानते हैं कि रोगजनक बीजों पर भी जीवित रहते हैं, हमें स्वस्थ पौधों का चयन करना चाहिए और बीज जनित संक्रमणों से बचने हेतु रोगमुक्त बीज एकत्र करने चाहिए।

* तीन वर्षीय फसल चक्र प्रारंभिक रोगजनकों को कम करने में सहायक हो सकता है।

* कम नाइट्रोजन उर्वरक और अधिक फास्फोरस और पोटेशियम उर्वरक का उपयोग बैंगन की उपज को रोग को बढ़ाए बिना बढ़ा सकता है।

रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग भी नियंत्रण का एक प्रभावी साधन है।

* इस रोग को नियंत्रित करने के लिए विश्व भर में फफूंदनाशकों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

* इस रोग को नियंत्रित करने के लिए सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले फफूंदनाशक हैं बोर्डो मिश्रण, कार्बेन्डाजिम, कार्बोक्सिन, कॉपरऑक्सी क्लोराइड, मैनकोजेब और जिनेब, क्लोरोथैलोनिल।

* भारत के ओडिशा में फोमोप्सिस के इष्टतम नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम सबसे प्रभावी पाया गया।

* प्रयोगशाला में कार्बेन्डाजिम ने कल्चर को पूरी तरह से बाधित कर दिया।

* कार्बेन्डाजिम और मैनकोजेब से बीज उपचार करने से भी रोग की घटनाओं में कमी आई है।

* बैविस्टिन, विटावैक्स, ब्लिटॉक्स-50 और रिडोमिल सबसे प्रभावी फफूंदनाशक थे और इन्होंने इन विट्रो में रोगजनक की वृद्धि को पूरी तरह से बाधित कर दिया। निम्बिडीन और इंडोफिल एम-45 रोगजनक की वृद्धि को बाधित करने में अगले सर्वश्रेष्ठ पाए गए।

* ट्राइकोडर्मा हर्जियानम का उपयोग जैविक नियंत्रण के लिए 5 ग्राम किलोग्राम बीज की दर से करे, आमतौर पर, बीजों के उपचार के लिए उचित मात्रा में पाउडर फॉर्मूलेशन का उपयोग किया जाता है। बीजों को थोड़ी मात्रा में पानी (या 5-1 0: प्रतिशत स्टार्च गुड़ के घोल) के साथ मिलाकर उसमें स्यूडोमोनास पाउडर डालें और अच्छी तरह मिलाएं ताकि बीजों पर एक परत बन जाए। उपचारित बीजों को बुवाई से पहले छाया में सुखाया जाता है।

* स्वस्थ जड़ों के लिए, पौध को रोपने से पहले, जड़ों को स्यूडोमोनास के घोल में डुबोया जाता है।

* मिट्टी का उपचार मिट्टी की संरचना और रोग नियंत्रण में सुधार के लिए, स्यूडोमोनास को गोबर की खाद के साथ मिलाकर खेत में डाला जा सकता है।

* **फेरोमोन ट्रैप:** प्रति एकड़ 1 0-1 2 फेरोमोन ट्रैप लगाएँ ताकि नर कीटों को फंसाया जा सके।

* **जैविक कीटनाशक:** नीम के तेल अजादिराच्टिन) का उपयोग करें।

* **रासायनिक कीटनाशक:** इल्लियों के हमले पर ट्राइजोफॉस 40(750 मिली हेक्टेयर) या स्पिनोसैड 45 (1 50 मिली हेक्टेयर) का छिड़काव करें।

यह एक खतरनाक फफूंद जनित रोग है जो पत्तियों, तने और फलों पर भूरे-काले

धब्बे बनाता है।जो उत्पादन में भारी गिरावट और आर्थिक नुकसान का कारण बनता है। यह रोग अत्यधिक संक्रामक होता है और यदि समय रहते रोका न जाये, तो एक पौधे से पूरे पौधे में फैल सकता है। इस रोग के नियंत्रण के लिए केवल एक ही उपाय पर्याप्त नहीं होता, बल्कि सांस्कृतिक, रासायनिक, जैविक और यांत्रिक सभी उपायों का एक साथ पालन करना आवश्यक होता है। बीज को बोने से पहले 3 ग्राम कार्बेन्डाजिम या थायरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें रोग दिखते ही मैन्कोजेब 75% / 2.5 ग्रामलीटर या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड / 3 ग्राम लीटर का छिड़काव 1 0-1 2 दिन के अंतराल पर करें। यदि किसान समय रहते रोग के लक्षणों की पहचान कर उचित प्रबंधन तकनीकों को अपनाएँ, तो इस गंभीर रोग के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है और अच्छी गुणवत्ता वाली, अधिक मात्रा में फसल प्राप्त की जा सकती है। सतर्कता, जागरूकता और वैज्ञानिक पद्धति से खेती करना ही इसका सबसे कारगर समाधान है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

तिल में एकीकृत कीट प्रबंधन

(Integrated Pest Management - IPM) (Sesamum indicum L.)

विकास प्रताप सिंह वैज्ञानिक एवं नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी (AcSIR) गाजियाबाद (उ.प्र.)
राकेश चंद्र नैनवाल एवं देवेन्द्र सिंह
सीएसआईआर- राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ, 226001

परिचय: तिल विश्व की सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण तिलहनी फसलों में से एक है, जिसकी खेती मुख्यतः उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में की जाती है। यह फसल अपने उच्च गुणवत्ता वाले तेल, प्रोटीन की प्रचुर मात्रा तथा औषधीय गुणों के कारण विशेष महत्व रखती है। भारत तिल उत्पादन करने वाले प्रमुख देशों में सम्मिलित है, परंतु कीटों एवं रोगों के अधिक प्रकोप के कारण इसकी उत्पादकता प्रभावित होती रहती है। विभिन्न कीट एवं रोग परिस्थितियों के अनुसार फसल की उपज में लगभग 25 से 50% तक कमी ला सकते हैं। रासायनिक कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है, साथ ही पर्यावरण प्रदूषण, लाभकारी जीवों का विनाश तथा खाद्य पदार्थों में विषैले अवशेष जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु एकीकृत कीट प्रबंधन अर्थात Integrated Pest Management (IPM) को एक प्रभावी, पर्यावरण-अनुकूल एवं टिकाऊ पद्धति के रूप में अपनाया जा रहा है।

एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) की अवधारणा

एकीकृत कीट प्रबंधन एक समन्वित पद्धति है जिसमें सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक, वानस्पतिक तथा रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग करके कीटों एवं रोगों को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे नियंत्रित किया जाता है। इस पद्धति का उद्देश्य केवल कीटों का विनाश करना नहीं, बल्कि प्राकृतिक संतुलन बनाए रखते हुए फसल की सुरक्षा करना है। IPM के माध्यम से रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जाता है, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण किया जाता है तथा किसानों को आर्थिक रूप से अधिक लाभ प्रदान किया जाता है। यह पद्धति पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ सतत कृषि उत्पादन को भी बढ़ावा देती है।

तिल के प्रमुख कीट- तिल की फसल में अनेक प्रकार के कीट आक्रमण करते हैं, जिनमें पत्ती मोड़क एवं कैप्सूल बेधक (Antigastra catalaunalis) सबसे अधिक हानिकारक माना जाता है। इसकी सूंडियाँ पत्तियों को जाल बनाकर अंदर से खाती हैं तथा फूलों एवं फलियों में छेद कर देती हैं, जिससे बीज निर्माण प्रभावित होता है और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। इसके नियंत्रण के लिए समय पर बुवाई, संक्रमित पौध भागों को नष्ट करना तथा प्रकाश प्रपंच एवं फेरोमोन ट्रैप का उपयोग उपयोगी पाया गया है। नीम बीज खली अर्क (NSKE) 5 प्रतिशत का छिड़काव तथा Trichogramma chilonis जैसे परजीवी कीटों का प्रयोग भी प्रभावी नियंत्रण प्रदान करता है। गॉल मक्खी (Asphondylia sesami) भी तिल की एक प्रमुख समस्या है। इसके प्रकोप से फलियों के स्थान पर हरे गॉल जैसी संरचनाएँ विकसित हो जाती हैं, जिसके कारण बीज निर्माण

रुक जाता है। इस कीट के प्रबंधन हेतु सहनशील किस्मों का चयन, समय पर बुवाई तथा संक्रमित फलियों को नष्ट करना आवश्यक माना जाता है। संतुलित उर्वरक प्रबंधन एवं आवश्यकता अनुसार कीटनाशकों का प्रयोग भी लाभकारी होता है। जेसिड, माहू तथा सफेद मक्खी जैसे रस चूसने वाले कीट तिल की फसल को गंभीर क्षति पहुँचाते हैं। ये पत्तियों का रस चूसकर उन्हें पीला एवं कमजोर बना देते हैं तथा पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। सफेद मक्खी विशेष रूप से फिलोडी रोग के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इनके नियंत्रण हेतु खेत की स्वच्छता बनाए रखना, खरपतवारों को हटाना, पीले चिपचिपे प्रपंचों का उपयोग करना तथा नीम आधारित उत्पादों का छिड़काव प्रभावी माना जाता है। प्राकृतिक शत्रुओं जैसे लेडीबर्ड बीटल एवं Chrysoperla प्रजातियों का संरक्षण भी इन कीटों की संख्या को नियंत्रित करने में सहायता करता है।

तिल के प्रमुख रोग एवं उनका IPM प्रबंधन- तिल की फसल में कई रोग भी महत्वपूर्ण क्षति पहुँचाते हैं। इनमें फिलोडी रोग प्रमुख है, जो फाइटोप्लाज्मा के कारण होता है तथा पत्ती फुदकों द्वारा फैलता है। इस रोग में पुष्प भाग पत्तियों जैसे दिखाई देने लगते हैं और बीज निर्माण नहीं हो पाता। संक्रमित पौधों को खेत से हटाकर नष्ट करना तथा वाहक कीटों का नियंत्रण करना इसके प्रबंधन का मुख्य उपाय है।

अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग (Alternaria sesami) पत्तियों पर भूरे धब्बे उत्पन्न करता है, जिससे समय से पहले पत्तियाँ झड़ जाती हैं और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। बीजोपचार, फसल चक्र तथा संक्रमित अवशेषों को नष्ट करना इसके नियंत्रण में सहायक होता है।

चूर्णिल आसिता (Powdery Mildew) रोग में पत्तियों पर सफेद चूर्ण जैसा फफूंद दिखाई देता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। उचित पौध दूरी बनाए रखना तथा आवश्यकता अनुसार गंधक आधारित फफूंदनाशियों का प्रयोग इसके नियंत्रण में उपयोगी माना जाता है।

तिल में IPM के प्रमुख घटक- तिल में IPM के अंतर्गत सांस्कृतिक विधियों का विशेष महत्व है। समय पर बुवाई, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, उचित पौध दूरी, खरपतवार नियंत्रण एवं फसल चक्र अपनाने से कीटों एवं रोगों का प्रकोप कम हो जाता है। यांत्रिक एवं भौतिक विधियों के अंतर्गत संक्रमित पौध भागों को हटाना, सूंडियों को हाथ से नष्ट करना तथा प्रकाश एवं चिपचिपे प्रपंचों का उपयोग किया जाता है। जैविक नियंत्रण में प्राकृतिक शत्रुओं एवं सूक्ष्मजीवों जैसे Beauveria bassiana तथा Metarhizium anisopliae का उपयोग किया जाता है, जो कीटों की संख्या को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त Trichogramma chilonis, लेडीबर्ड बीटल तथा Chrysoperla प्रजातियाँ भी कीट नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

वानस्पतिक कीटनाशक IPM का एक महत्वपूर्ण भाग हैं। नीम तेल, नीम बीज खली अर्क तथा एजाडिरैक्टिन आधारित उत्पाद पर्यावरण के लिए सुरक्षित होते हैं तथा लाभकारी कीटों को कम हानि पहुँचाते हैं। रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग केवल आवश्यकता पड़ने पर एवं आर्थिक क्षति स्तर के आधार पर ही करना चाहिए। एक ही रसायन का बार-बार उपयोग नहीं करना चाहिए तथा अनुशंसित मात्रा एवं प्रतीक्षा अवधि का पालन करना आवश्यक है।

तिल में IPM के लाभ-एकीकृत कीट प्रबंधन अपनाने से पौध संरक्षण लागत में कमी आती है तथा रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग में कमी के कारण पर्यावरण प्रदूषण भी घटता है। इससे लाभकारी जीवों का संरक्षण होता है तथा मृदा स्वास्थ्य एवं पारिस्थितिक संतुलन बेहतर बना रहता है। IPM के माध्यम से किसानों को सतत एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त होता है तथा कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने की संभावना भी कम हो जाती है।

IPM अपनाने में बाधाएं-यद्यपि IPM एक प्रभावी एवं टिकाऊ पद्धति है, फिर भी इसके व्यापक प्रसार में कई बाधाएँ हैं। किसानों में जागरूकता की कमी, जैव-एजेंट की सीमित उपलब्धता, कीट पहचान का अभाव तथा रासायनिक कीटनाशकों पर अत्यधिक निर्भरता इसके प्रमुख कारण हैं। इसके अतिरिक्त कृषि विस्तार सेवाओं की कमी भी किसानों तक IPM तकनीकों के प्रभावी प्रसार में बाधा उत्पन्न करती है।

भविष्य की संभावनाएं-भविष्य में तिल की फसल में IPM को अधिक प्रभावी बनाने हेतु प्रतिरोधी किस्मों का विकास, जैव-कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग, डिजिटल कीट निगरानी प्रणाली तथा किसानों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आधुनिक तकनीकों एवं पारंपरिक ज्ञान के समन्वय से तिल उत्पादन को अधिक टिकाऊ, सुरक्षित एवं लाभकारी बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष-निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एकीकृत कीट प्रबंधन तिल की सतत खेती के लिए अत्यंत आवश्यक एवं प्रभावी पद्धति है। यह न केवल कीटों एवं रोगों का सफल नियंत्रण करती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, लाभकारी जीवों के संरक्षण तथा किसानों की आर्थिक उन्नति में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। IPM तकनीकों को अपनाकर तिल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि के साथ-साथ कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को भी सुरक्षित रखा जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

प्राकृतिक संसाधनों और मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण

मयंक कुमार, अनुराग पीएच.डी. शोध छात्र
डॉ. अनिल कुमार सिंह सह-प्राध्यापक,
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौ. वि.वि. कानपुर (उ.प्र.)

प्राकृतिक संसाधनों और मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण मानव जीवन और पर्यावरण संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक है। भूमि, जल, वन और खनिज जैसे संसाधन सीमित हैं, इसलिए उनका उचित उपयोग करना चाहिए। मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए जैविक खाद, फसल चक्र और वृक्षारोपण अपनाना आवश्यक है। रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग मिट्टी की गुणवत्ता को नुकसान पहुँचाता है। जल संरक्षण, वनों की रक्षा और प्रदूषण नियंत्रण से प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि हम संसाधनों का संरक्षण करेंगे, तो आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ पर्यावरण और उपजाऊ भूमि प्राप्त होगी। हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जहाँ हमने विकास की अंधी दौड़ में अपनी ही जीवनदायिनी 'पृथ्वी' को दांव पर लगा दिया है। अथर्ववेद में कहा गया है– 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। लेकिन क्या हम एक अच्छे पुत्र या पुत्री का धर्म निभा रहे हैं?

प्राकृतिक संसाधन–हवा, पानी, जंगल, और मिट्टी–हमारे लिए प्रकृति के मुफ्त उपहार नहीं हैं, बल्कि यह भविष्य की पीढ़ियों की धरोहर हैं जिसे हमने उधार लिया है। आज जलवायु परिवर्तन, जल संकट और बंजर होती धरती हमें चेतावनी दे रही है। यह पत्रिका एक प्रयास है यह समझने का कि हम कहाँ गलत जा रहे हैं और कैसे हम अपनी मिट्टी और संसाधनों को बचा सकते हैं।

प्राकृतिक संसाधन - जीवन का आधार-प्राकृतिक संसाधन वे सभी तत्व हैं जो प्रकृति में स्वतंत्र रूप से मौजूद हैं और मानव जीवन के अस्तित्व और विकास के लिए अपरिहार्य हैं। इन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है: नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय।

1. जल: (नीले सोने का संकट) - पृथ्वी का 71% हिस्सा पानी से ढका है, लेकिन इसमें से केवल 2.5% ही पीने योग्य मीठा पानी है। आज औद्योगीकरण, कृषि में अंधाधुंध भूजल दोहन और प्रदूषण के कारण जल संकट एक वैश्विक महामारी बन चुका है।

समस्या: नदियाँ सूख रही हैं या जहरीली हो गई हैं। भूजल स्तर हर साल कई मीटर नीचे जा रहा है।

संरक्षण के उपाय: जल संचयन को हर घर का हिस्सा बनाना होगा। कृषि में ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी सूक्ष्म-सिंचाई तकनीकों का उपयोग करना होगा ताकि हर बूंद से अधिक फसल मिल सके।

2. वन: (पृथ्वी के फेफड़े)-जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं हैं, वे एक पूरा पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) हैं जो कार्बन डाइऑक्साइड को सोखते हैं, बारिश लाते हैं और मिट्टी को बांध कर रखते हैं।

समस्या: शहरीकरण और कृषि भूमि के विस्तार के लिए हर साल लाखों हेक्टेयर जंगल काटे जा रहे हैं।

संरक्षण के उपाय: वनीकरण और पुनर्वनीकरण। हमें 'एग्रोफॉरेस्ट्री' (कृषि वानिकी) को बढ़ावा देना चाहिए जहाँ किसान अपनी फसलों के साथ-साथ पेड़ भी लगाएँ।

मिट्टी की उर्वरता - धरती की जान- मिट्टी कोई निर्जीव वस्तु नहीं है। यह लाखों सूक्ष्म जीवों, खनिजों, कार्बनिक पदार्थों, हवा और पानी का एक जीवित, साँस लेता हुआ तंत्र है। एक इंच उपजाऊ मिट्टी को बनने में प्रकृति को 500 से 1000 साल तक लग जाते हैं, लेकिन हम इसे कुछ ही सालों में नष्ट कर रहे हैं।

मिट्टी क्या है? : मिट्टी पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है। इसमें मौजूद 'ह्यूमस'- जो सड़े-गले पौधों और जीवों से बनता है- मिट्टी की जान होता है। यही ह्यूमस मिट्टी को स्पंज की तरह बनाता है, जिससे वह पानी और पोषक तत्वों को सोख कर रख पाती है।

"जिस राष्ट्र की मिट्टी नष्ट हो जाती है, वह राष्ट्र स्वयं नष्ट हो जाता है।" - फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट

उर्वरता में कमी के मुख्य कारण

1.रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग: 1960 के दशक की 'हरित क्रांति' ने हमें अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भर तो बनाया, लेकिन यूरिया और डीएपी जैसे रासायनिक खादों के अत्यधिक उपयोग ने मिट्टी के प्राकृतिक सूक्ष्म जीवों (केंचुए, लाभकारी बैक्टीरिया) को मार डाला है। आज मिट्टी नशे की आदि हो गई है; बिना रसायन के उपज नहीं होती।

2. कीटनाशकों का जहर: पेस्टिसाइड्स न केवल हानिकारक कीटों को मारते हैं, बल्कि मधुमक्खियों, केंचुओं और मिट्टी के मित्र कीटों का भी सफाया कर देते हैं।

3. मृदा अपरदन: पेड़ों की कटाई के कारण मिट्टी की जड़ें ढीली पड़ जाती हैं। तेज हवा और बारिश के कारण उपजाऊ3. ऊपरी परत (Topsoil) बह जाती है।

4. फसल चक्र का अभाव: एक ही खेत में साल दर साल एक ही फसल (जैसे केवल गेहूं और धान) उगाने से मिट्टी में विशिष्ट पोषक तत्वों की भारी कमी हो जाती है।

5. जलभराव और लवणता: अत्यधिक सिंचाई के कारण जमीन में पानी भर जाता है, जिससे मिट्टी में नमक की मात्रा बढ़ जाती है और वह बंजर (ऊसर) हो जाती है।

मिट्टी और संसाधनों को बचाने के महा-उपाय (The Solutions)- अगर हमें आने वाले कल को बचाना है, तो हमें खेती और जीवनशैली के प्राकृतिक तरीकों की ओर लौटना होगा। यहाँ कुछ प्रमाणित और वैज्ञानिक तरीके दिए गए हैं:

1. जैविक खेती- यह वह खेती है जिसमें रसायनों का बिल्कुल उपयोग नहीं होता। इसकी जगह गोबर की खाद, कम्पोस्ट, और हरी खाद का उपयोग किया जाता है।

केंचुआ खाद: केंचुए कृषि कचरे को खाकर उसे उत्तम खाद में बदल देते हैं। इसे 'काला सोना' भी कहा जाता है। यह मिट्टी की जल-धारण क्षमता को कई गुना बढ़ा देता है।

2. शून्य लागत प्राकृतिक खेती - भारत में यह तकनीक बहुत तेजी से लोकप्रिय हो रही है। इसमें बाजार से कुछ भी खरीदने की जरूरत नहीं होती।

जीवामृत: गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन और जंगल की मिट्टी से तैयार किया गया यह घोल खेत में करोड़ों लाभकारी सूक्ष्मजीवों को पैदा करता है।

आच्छादन: खेत की मिट्टी को कभी नंगा नहीं छोड़ना चाहिए। उसे फसल के अवशेषों (पराली/सूखे पत्तों) से ढक कर रखना चाहिए। इससे वाष्पीकरण रुकता है, खरपतवार नहीं उगते, और सड़ने पर यह मिट्टी को ह्यूमस देता है।

फसल चक्र और मिश्रित खेती (Crop Rotation & Mixed Farming)- लगातार अनाज उगाने के बजाय, बीच में दलहनी फसलें (Pulses/Legumes) उगानी चाहिए। दालों की जड़ों में 'राइजोबियम' नामक बैक्टीरिया होता है, जो हवा की नाइट्रोजन को खींचकर मिट्टी में फिक्स कर देता है। यह प्राकृतिक यूरिया का काम करता है। एक साथ कई फसलें उगाने से कीटों का हमला कम होता है और अगर एक फसल खराब हो जाए, तो किसान को दूसरी से आमदनी हो जाती है।

4. समोच्च कृषि और सीढ़ीदार खेत- पहाड़ी या ढलान वाले इलाकों में पानी के तेज बहाव को रोकने के लिए ढलान के विपरीत दिशा में क्यारियाँ बनाकर खेती की जाती है। इससे पानी रुक-रुक कर बहता है और मिट्टी कटकर नहीं बहती।

नवीकरणीय ऊर्जा की ओर कदम- प्राकृतिक संसाधनों (जैसे कोयला, पेट्रोलियम) को बचाने का सबसे सीधा उपाय है नवीकरणीय ऊर्जा को अपनाना।

सौर ऊर्जा : सूर्य की किरणें ऊर्जा का असीम और स्वच्छ स्रोत हैं। सोलर पैनल लगाकर हम बिजली की जरूरतों को पूरा कर सकते हैं।

पवन ऊर्जा और बायोगैस: ग्रामीण क्षेत्रों में बायोगैस प्लांट एक बेहतरीन विकल्प है। इससे पशुओं के गोबर और कृषि कचरे से खाना पकाने की गैस भी मिलती है और बची हुई 'स्लरी' (Slurry) खेतों के लिए एक बेहतरीन खाद का काम करती है।

हमारी व्यक्तिगत और सामुदायिक जिम्मेदारी: संरक्षण केवल सरकार का काम नहीं है। एक समाज के रूप में हमारी भूमिका सबसे अहम है:

1.Reduce, Reuse, Recycle (कम करें, पुनः उपयोग करें, पुनर्चक्रण करें): इस 3R के सिद्धांत को अपने जीवन में उतारें।

2.भोजन की बर्बादी रोकें: एक किलो अनाज उगाने में हजारों ली. पानी और उपजाऊ मिट्टी की ताकत लगती है। भोजन बर्बाद करना सीधे तौर पर प्राकृतिक संसाधनों की बर्बादी है।

3.जल संरक्षण की आदतें: ब्रश करते समय नल बंद रखना, बारिश के पानी को सहेजना और गाड़ियों को पाइप के बजाय बाल्टी से धोना जैसे छोटे कदम बड़ा बदलाव ला सकते हैं।

4.प्लास्टिक को 'ना' कहें: सिंगल-यूज़ प्लास्टिक मिट्टी में मिलकर उसे जहरीला बना देता है और यह सैकड़ों सालों तक नष्ट नहीं होता।

5.पेड़ लगाएँ और बचाएँ: अपने जन्मदिवस या अन्य खास मौकों पर पेड़ लगाने की परंपरा शुरू करें और कम से कम 3 साल तक उसकी देखभाल का संकल्प लें।

निष्कर्ष: हम विकास के ऐसे मोड़ पर खड़े हैं जहाँ 'स्थायी विकास' अब एक विकल्प नहीं, बल्कि हमारी मजबूरी और जरूरत बन चुका है। हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए वैसी ही हरी-भरी पृथ्वी, शुद्ध हवा और उपजाऊ मिट्टी छोड़कर जानी चाहिए जैसी हमें हमारे पूर्वजों से मिली थी। मिट्टी की उर्वरता और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कोई एक दिन का काम नहीं है, यह एक निरंतर चलने वाली जीवनशैली है। यदि आज हम प्रकृति का सम्मान करेंगे, तो कल प्रकृति हमारा पोषण करेगी।

"प्रकृति हमारी जरूरतों को पूरा कर सकती है, लेकिन हमारे लालच को नहीं।" — महात्मा गांधी

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

वृक्षायुर्वेद आधारित मशरूम की वैज्ञानिक खेती

श्री खेताराम असिस्टेंट प्रोफेसर (वृक्षायुर्वेद)
प्रो.सुमित नथानी विभागाध्यक्ष , वृक्षायुर्वेद विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान (मानद विश्वविद्यालय), जयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना

वर्तमान समय में जैविक खेती, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण तथा स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों की मांग निरंतर बढ़ रही है। ऐसे में मशरूम की खेती एक लाभकारी, वैज्ञानिक एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि पद्धति के रूप में उभरकर सामने आई है। मशरूम न केवल उच्च पोषण मूल्य वाला खाद्य पदार्थ है, बल्कि इसमें औषधीय गुण भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। वृक्षायुर्वेद, जो प्राचीन भारतीय कृषि विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग है, प्राकृतिक एवं जैविक सिद्धांतों पर आधारित है। यदि मशरूम की खेती को वृक्षायुर्वेद के सिद्धांतों के साथ जोड़ा जाए, तो यह एक उत्कृष्ट सतत कृषि मॉडल बन सकता है।

मशरूम का महत्व

मशरूम को ÷सुपर फूड÷ भी कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रोटीन, विटामिन क्र एवं ष्ठ, कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन तथा एंटीऑक्सीडेंट तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, हृदय स्वास्थ्य सुधारने तथा मधुमेह नियंत्रण में भी सहायक माना जाता है। इसके अतिरिक्त मशरूम की खेती कृषि अपशिष्ट जैसे धान का भूसा, गेहूं का पुआल, लकड़ी का बुरादा आदि का उपयोग करके की जाती है, जिससे अपशिष्ट प्रबंधन भी संभव होता है।

वृक्षायुर्वेद का दृष्टिकोण

वृक्षायुर्वेद में पौधों के पोषण, संरक्षण एवं रोग नियंत्रण के लिए प्राकृतिक उपायों का वर्णन किया गया है। इसमें पंचगव्य, जीवामृत, गोमूत्र, वर्मीवॉश, नीमास्त्र, अग्नास्त्र एवं ब्रह्मास्त्र जैसे जैविक उत्पादों का उपयोग किया जाता है। इन सिद्धांतों को मशरूम उत्पादन में अपनाकर रसायन-मुक्त, स्वास्थ्यवर्धक एवं पर्यावरण-अनुकूल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

मशरूम की प्रमुख प्रजातियाँ

भारत में मुख्यतः बटन मशरूम, ऑयस्टर मशरूम, मिल्की मशरूम, शिटाके तथा गैनोडर्मा जैसी प्रजातियाँ उगाई जाती हैं। इनमें ऑयस्टर मशरूम कम लागत एवं सरल तकनीक के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय है, जबकि गैनोडर्मा औषधीय उपयोग के लिए विशेष महत्व रखता है।

वैज्ञानिक खेती की विधि

1. सब्सट्रेट की तैयारी

मशरूम उत्पादन के लिए धान या गेहूं का भूसा सबसे उपयुक्त माध्यम माना जाता है। भूसे को साफ कर छोटे टुकड़ों में काटा जाता है तथा गर्म पानी या भाप द्वारा उसका पाश्चुरीकरण किया जाता है ताकि हानिकारक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाएँ।

2. स्पॉन (बीज) का चयन

अच्छी गुणवत्ता वाले, प्रमाणित एवं रोगमुक्त स्पॉन का चयन अत्यंत आवश्यक है। स्पॉन को उचित तापमान पर सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

3. बीजारोपण

पॉलीबैग या ट्रे में भूसे की परत लगाकर उसके बीच स्पॉन डाला जाता है। यह प्रक्रिया पूर्ण स्वच्छता के साथ की जानी चाहिए ताकि संक्रमण से बचाव हो सके।

4. तापमान एवं आर्द्रता नियंत्रण

मशरूम उत्पादन के लिए 20-28 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 80-90 प्रतिशत आर्द्रता उपयुक्त मानी जाती है। उचित वेंटिलेशन भी आवश्यक है।

5. सिंचाई एवं देखभाल

हल्के स्प्रे द्वारा नमी बनाए रखी जाती है। अधिक पानी देने से फफूंद रोग बढ़ सकते हैं, इसलिए संतुलित सिंचाई आवश्यक है।

वृक्षायुर्वेद आधारित पोषण एवं संरक्षण

मशरूम उत्पादन में पंचगव्य का हल्का छिड़काव, जीवामृत का नियंत्रित उपयोग तथा गोमूत्र आधारित प्राकृतिक रोग नियंत्रण उपयोगी सिद्ध होते हैं। नीमास्त्र एवं धूपन विधि (नीम पत्ती, गुग्गुल आदि) से रोग एवं कीट नियंत्रण किया जा सकता है। इससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

आर्थिक महत्व

मशरूम की खेती कम लागत में अधिक लाभ देने वाली गतिविधि है। 100 किलोग्राम भूसे से लगभग 60-80 किलोग्राम मशरूम प्राप्त किया जा सकता है। बाजार में इसकी कीमत रु. 150-300 प्रति किलोग्राम तक होती है। भारत में सामान्य बटन मशरूम (Button Mushroom) की कीमत थोक में लगभग रु. 100-150 प्रति किलो और खुदरा बाजार में रु. 150-250 प्रति किलो (लगभग 200 ग्राम के पैकेट के लिए रु. 50-60) के बीच रहती है। सामान्य मशरूम के रेट शहर और गुणवत्ता के अनुसार प्रतिदिन बदलते रहते हैं। इसके अतिरिक्त ड्राई मशरूम, पाउडर, अचार एवं औषधीय उत्पादों के रूप में मूल्य संवर्धन करके आय बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष

वृक्षायुर्वेद आधारित मशरूम की वैज्ञानिक खेती सतत कृषि, जैविक उत्पादन एवं ग्रामीण उद्यमिता का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह न केवल किसानों के लिए आय का बेहतर स्रोत है, बल्कि विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं स्टार्टअप उद्यमियों के लिए भी एक प्रभावी मॉडल प्रस्तुत करती है। आयुर्वेदिक सिद्धांतों एवं आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों के समन्वय से मशरूम उत्पादन को अधिक सुरक्षित, लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक बनाया जा सकता है। यही भविष्य की टिकाऊ कृषि की दिशा है।

शीतला कृषि सेवा केन्द्र
बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)
99267-31867, 83055-69923
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।

पता : पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

बकरियों की जनन समस्याएं: रोकथाम और उपचार

नितेश शर्मा विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन)
डॉ. महेन्द्र सिंह चांदावत (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)
डॉ. निधि (प्रसार शिक्षा विशेषज्ञ) कृषि विज्ञान केंद्र रायपुर पाली-II कृषि विश्वविद्यालय जोधपुर (राजस्थान)

भारतवर्ष में पशुपालन की दृष्टि से बकरियों का योगदान अत्यधिक महत्व रखता है। बकरी पालन से अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के लिये अच्छी नस्ल, चयन, खान-पान, रहन-सहन आदि के साथ-साथ जनन संबंधी विकारों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। बकरी पालकों को जनन एवं प्रजननात्मक रोगों की समुचित जानकारी के अभाव में काफी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी तो पशु जनन के योग्य ही नहीं रहता है। प्रसूति जनक रोगों के होने से जनसंख्या में कमी आने के साथ-साथ उनके दूध, मांस तथा अन्य उत्पादों के उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत आलेख में इन्हीं के निदान, उपचार व बचाव की जानकारी दी गई है।

बकरों में जनन समस्याएं

बकरों में जनन समस्याएँ मुख्यतः वृषण कोशों के असामान्य होने से संबंध रखती हैं। ऐसे बकरों से प्राप्त वीर्य उत्तम न होने से बकरी गर्भित होने में असमर्थ रहती है। इसलिए प्रत्येक बकरे को प्रजनन के काम में लाने से पहले उसके जनन अंगों की जांच तथा उसके द्वारा उत्पादित वीर्य का परीक्षण करना आवश्यक है। **प्रत्येक बकरे के बारे में संपूर्ण जानकारी का अभिलेख रखने से जनन संबंधी परेशानियों की चिकित्सा करने में मदद मिलती है। मुख्य जनन समस्याएँ निम्न हैं-**

वृषण कोशों का विकार

वृषण कोशों में विकार होने से बकरों को कभी-कभी बाँझपन का शिकार होना पड़ता है। शोषण, थैली में न उतरना एवं सूजन इत्यादि वृषण कोशों की मुख्य बीमारियाँ हैं। अध्ययन से ज्ञात होता है कि कभी-कभी वृषण कोशों के आकार में कमी आ जाती है। सामान्य वृषण कोश की अपेक्षा क्षीण वृषण कोश ठोस और स्थिर होते हैं। परिणाम स्वरूप वृषण अपने स्थान पर दृढ़ता से स्थिर होने के कारण थैली में नहीं उतरते। वृषण कोश विकार से ग्रसित बकरों को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए। कभी-कभी कम उम्र के बकरों में ज्वर, विषैले पदार्थों का सेवन, पोषण में असंतुलन एवं विपरीत परिस्थितियों के कारण वृषण ग्रंथि में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें शुक्राणु के अपरिपक्व होने की वजह से उर्वरता शक्ति भी नष्ट हो जाती है। प्रारंभिक अवस्था में वृषण कोश सिकुड़े और कठोर होते हैं। प्रभावित बकरों के रहन-सहन और पालन-पोषण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए तथा इनके प्राप्त वीर्य का प्रत्येक 2-3 महीने बाद परीक्षण करते रहना चाहिए। कभी-कभी एक या दोनों वृषण कोश आनुवंशिक कारणों से थैली में उतरने से वंचित रह जाते हैं, जिससे उर्वरता में कमी या बाँझपन की समस्या होती है। इनका उपचार कठिन है, परंतु कुछ मात्रा में गोनाडोट्रोपिन (हार्मोन) देने से कुछ हद तक उपचार संभव है। ऐसे पशुओं का उपयोग प्रजनन के लिये कदापि नहीं करना चाहिए। वृषण कोश में घाव या चोट लगने से होते हैं। वृषण कोश एवं अंडकोष में सूजन मुख्यतः जीवाणुओं के संक्रमण से होती है। बकरों में इसे कभी-कभी देखा जाता है। इसके मुख्य लक्षण हैंकूउदासीनता, चारा कम खाना, थैली में सूजन, स्पर्श से गर्मी और दर्द महसूस करना। इस प्रकार के पशुओं को अलग करके उचित मात्रा में एंटीबायोटिक दवाओं से उपचार करना लाभदायक होता है।

संक्रमण

बकरों में जननांग अनेक प्रकार के जीवाणुओं, विषाणुओं और क्लैमाइडियल कारकों से संक्रमित होते हैं। इससे बकरे की उर्वरता में कमी आ जाती है। ब्रूसेलोसिस का संक्रमण जीवाणुओं द्वारा होता है। पशुओं में एंटीबायोटिक का उपयोग लक्षण के अनुसार किया जा सकता है। उपचार द्वारा रोकथाम संभव न हो तो संक्रमित पशु को समूह से अलग कर देना चाहिए, जिससे उसे स्वस्थ पशुओं के संपर्क में आने से रोका जा सके।

(3) पोषण की कमियां

आहार में प्रोटीन, कॉपर, फास्फोरस, आयोडीन और विटामिन ए की कमी से लैंगिक परिपक्वता और कामुकता में कमी आ जाती है। वयस्क पशुओं की अपेक्षा कम उम्र वाले पशु पोषण कमियों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। उर्वरता में कमी आने से बचाने के लिए पशुओं को विटामिन एवं खनिज युक्त संतुलित आहार खिलाना चाहिए।

(4) रखरखाव में कमी

स्वस्थ एवं उचित उम्र के बकरों का चयन, संतुलित भोजन, वीर्य संग्रह का उचित प्रशिक्षण, कमियाँ दूर व्यायाम इत्यादि पर ध्यान देना चाहिए अन्यथा उर्वरता शक्ति में कमी आ जाती है।

बकरियों में जनन एवं प्रसूतिजनक समस्याएं

मादा पशुओं का ऋतु में न आना या समय पर ऋतु में न आना, बार-बार ऋतु में आना और गर्भित न होना, गर्भपात तथा मृत बच्चे को जन्म देना आदि प्रमुख जनन समस्याएँ हैं। इनके अलावा अनेक प्रसूतिजनक रोग जैसे योनि या बच्चेदानी का बाहर आना या फंसना तथा जेर न गिरना प्रमुख हैं। यह सभी पशुओं की उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल असर डालते हैं।

ऋतु में न आना

अधिक गर्मी, दुग्धकाल, वृद्धावस्था, कुपोषण और शरीर में हार्मोन्स का सामान्य स्तर न होना इत्यादि कारणों से बकरियाँ ऋतु में नहीं आती हैं। किसी विशेष मौसम में ऋतु में आना बकरियों की नस्ल और वातावरण पर निर्भर करता है। जंगली बकरियाँ वर्ष के सभी मौसमों में ऋतु में नहीं आती। आहार में ऊर्जा का स्तर कम होने से ऋतु में आने की क्रिया विधि प्रभावित होती है। खनिजों में फास्फोरस, कॉपर, मैग्नीशियम, विटामिन ए और ई का स्तर ऋतु में आने को प्रभावित करता है। अधिक उम्र, हार्मोन्स का असंतुलन और गर्भाशय में बदलाव भी ऋतु में न आने के कारण हैं। ऋतु में न आने का उपचार इस बात पर निर्भर करता है कि किस कारण से बकरियाँ ऋतु में नहीं आई। ऋतु में न आने पर निम्न उपचार प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

प्रजनन से पहले 20-30 दिन तक अधिक पोषक आहार देना चाहिए। इनको को-फू गोली दिन में एक बार पन्द्रह दिन तक लगातार देनी चाहिए और उसके साथ-साथ टोनोफास्फोन 2-3 मि.ली. एक दिन छोड़कर 10 दिन तक देना चाहिए। फर्टिवेट की एक गोली प्रतिदिन के हिसाब से पाँच दिन तक खिलाना चाहिए। अगर इन उपचारों से फायदा न हो तो अंत में 0.15 मिलीग्राम एम.जी.ए. (प्रोजेस्टेरोन) प्रतिदिन 16 दिन तक आहार में मिलाकर खिलाना चाहिए।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

आधुनिक टिण्डा उत्पादन तकनीक अपनाएं, बेहतर उपज पाएं

डॉ. प्रवीण कुमार हटवाल
डॉ. विष्णु शंकर मीना
डॉ. शशि कुमार बैरवा, डॉ. श्वेता सिंह
डॉ. प्रवीण पिलानिया, डॉ. पार्वती दीवान
एस.के.एन. कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर (राजस्थान)

टिंडा (सिटरुलस लेनेटस किस्म फिस्टुलोसस) एक कद्दूवर्गीय सब्जी है तथा टिंडे का सब्जियों में एक विशेष स्थान है। टिंडा की खेती गर्मी और वर्षा दोनों ही ऋतुओं में की जाती है। टिंडा से लगभग सभी प्रकार के पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवण प्राप्त होते हैं। इसके प्रति 100 ग्राम फलों में प्रोटीन (1.5 ग्राम), वसा (0.2 ग्राम), रेशा (1.0 ग्राम), कैल्शियम (25 मि.ग्रा.), फॉस्फोरस (24 मि.ग्रा.) तथा आयरन (0.9 ग्राम) आदि प्रमुखता से पाए जाते हैं। टिंडे की खेती लगभग पूरे भारत में और मुख्यतः पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, यूपी, बिहार, मप्र, राजस्थान और आंध्रप्रदेश में की जाती है। निर्यात की दृष्टि से भी सब्जियों में टिंडा अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृषक बंधुओं को चाहिए की वो इसकी खेती परंपरागत तरीके से न करके वैज्ञानिक तकनीकी से करें जिससे उनको अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके। इस लेख में टिंडा की उन्नत तकनीक से खेती कैसे करें का उल्लेख किया गया है।

टिंडा की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु: टिंडा मुख्य रूप से गर्म जलवायु की फसल है। इसमें ठंड तथा पाला सहन करने की क्षमता नहीं होती है। बीज के अंकुरण और पौधों की बढ़वार के लिए 25 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। तापमान के 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर फसल की बढ़वार, उपज तथा गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अधिक वर्षा और बादल वाला मौसम रोग और कीटों के प्रकोप को बढ़ावा देता है।

टिंडा की खेती हेतु भूमि का चयन: टिंडे की खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है लेकिन अच्छे विकास और पैदावार हेतु अच्छे जल निकास वाली, उच्च जैविक तत्वों वाली जीवांश पदार्थ से युक्त बलुई दोमट या दोमट मृदा उत्तम रहती है। बढ़िया विकास हेतु मिट्टी का पीएच मान 6 से 7 के बीच होना चाहिए। पानी के ऊंचे स्तर वाली मिट्टी में यह फसल बढ़िया पैदावार देती है।

टिंडा की खेती के लिए खेत की तैयारी: टिंडे की फसल के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद 2 से 3 जुताई कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करके नाली या थालें बना लेते हैं, जिसमें बीज की बुआई करते हैं। इसको अन्य सब्जियों के साथ मेड़ों पर भी उगा सकते है। टिंडा बीज की बुआई, खेत में नमी की पर्याप्त मात्रा रहने पर ही करनी चाहिए, जिससे बीजों का अंकुरण और वृद्धि अच्छी प्रकार हो सके। जल का ठहराव फसल को प्रभावित करता है इसलिए जल निकासी की व्यवस्था होनी आवश्यक है।

टिंडा की खेती के लिए उन्नत किस्में : टिंडे की लगभग किस्में जल्दी तैयार हो जाती है और गर्मी और वर्षा दोनों ऋतुओं में बिजाई हेतु अनुकूल है। इनके पत्ते हरे और थोड़े मुड़े हुए होते हैं। इनके फल गोल, चमकदार, हरे, बालों वाले और सफेद गुद्दे वाले होते हैं, जब फल कच्चा होता है तो इनका औसत वजन 60 से 70 ग्राम होता है। इन टिंडा किस्मों की पहली तुड़ाई बिजाई से 40 से 60 दिन बाद की जा सकती है। टिंडा की उन्नत किस्में जैसे-पूसा रौनक, अर्का टिण्डा, टिण्डा सलेक्शन-48, हिसार सलेक्शन-1, पंजाब टिंडा, स्वाति, टोंक टिण्डा, गोल्डन सलेक्शन-1, अन्नामलाई टिंडा, माहिको टिंडा, बीकानेरी ग्रीन मुख्य है।

टिंडा की उन्नत खेती।

टिंडा बुवाई का समय और बीज की मात्रा

बुवाई का समय: ग्रीष्मकालीन टिंडा फसल की बुवाई फरवरी-मार्च तथा वर्षाकालीन फसल की बुवाई जून-जुलाई में करनी चाहिए।

बीज की मात्र और उपचार: एक हेक्टेयर में टिंडा की बुवाई के लिए 2.5-3.0 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई से पहले बीजों को 10-12 घण्टे तक पानी में भिगोना चाहिए जिससे अंकुरण जल्दी होता है। बीजों को बुवाई से पहले केप्टान या थिरम या कार्बण्डाजिम (2 ग्राम प्रति किग्रा) से उपचारित करना चाहिए।

टिंडे की खेती के लिए बुआई का तरीका: टिंडा की बुवाई के लिए नाली या थाला (हिल तथा चैनल) विधि सर्वोत्तम रहती है। खेत में पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर 45-60 सेमी चौड़ी तथा 30-40 सेमी गहरी नालियाँ बना लेना चाहिए। एक नाली से दूसरी नाली के बीच की दूरी 2.0 मीटर रखना चाहिए। प्रत्येक नाली के किसी एक किनारे पर 50-60 सेमी की दूरी पर थाला बनाकर एक जगह 2-3 बीजों को 1-2 सेमी की गहराई पर बोना चाहिए। बूंद-बूँद सिंचाई की व्यवस्था होने पर खेत में लेटरल को अनुसंशित दूरी पर बिछाकर बीजों को ड्रिपर्स के पास बोना चाहिए। टिंडा बुवाई के लगभग 15 दिन बाद जब पौधों के 2-4 पत्तियां आने पर अतिरिक्त पौधों को निकालकर प्रति थाला 1-2 स्वस्थ पौधा रखना चाहिए।

टिंडा की फसल में खाद और उर्वरक : टिंडा की फसल हेतु खाद और उर्वरक की मात्रा मृदा की उर्वरता पर निर्भर करती है। खेत की अन्तिम जुताई के समय 200 से 250 क्विं. सड़ी-गली गोबर की खाद प्रति हे. की दर से मिलाना चाहिए। नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा क्रमशः 80:60:60 किग्रा प्रति हे. की दर से मिलानी चाहिए। नत्रजन की एक तिहाई तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय देनी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा को दो समान भागों में बांटकर बुवाई के 25 से 30 तथा 45 से 50 दिनों के बाद खड़ी फसल में देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पौधों में लता बनने व पुष्पन के समय जल में घुलनशील एनपीके 19:19:19 की 8-10 किग्रा मात्रा प्रति हे. की दर से बूंद-बूंद सिंचाई के साथ देने से उपज में वृद्धि होती है। गुणवत्तायुक्त उपज प्राप्त करने हेतु पुष्पन और फलत के समय सूक्ष्म तत्वों का पर्णीय छिड़काव; 5-6 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से करना लाभदायक होता है।

टिंडा की फसल में सिंचाई प्रबंधन : टिंडा के सफल अंकुरण के लिए खेत में पर्याप्त नमी का होना अत्यन्त आवश्यक हैए इसके लिए फसल में समय पर पानी देना चाहिए। अंकुरण के बाद सप्ताह में एक बार सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। गर्मी की फसल को औसतन 2-3 दिन पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु के दौरान सिंचाई की आवश्यकता पौधों की लता विकास अवस्था में होती है तथा इस दौरान जल निकास का भी उचित प्रबन्ध करना चाहिए। टिंडा फसल की क्रांतिक अवस्थाओं जैसे लता विकास, फूल तथा फलों के विकास के समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए अन्यथा उपज में बहुत कमी हो जाती है। कम पानी की स्थिति में बूंद.बूंद सिंचाई प्रणाली सबसे अधिक उपयुक्त होती है, क्योंकि इस विधि में पानी की बचत सर्वाधिक होती है। इस प्रणाली में 4 ली. प्रति घंटे के ड्रिपर से 2-3 दिन के अन्तराल पर 1-1.5 घंटे सिंचाई करनी चाहिए।

टिंडा की फसल में खरपतवार नियंत्रण: टिंडा बीज की बुवाई के 48 घंटे के अंदर पेंडीमेथालीन की 3.3 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद खेत को खरपतवारमुक्त रखने हेतु समय-समय पर निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को निकालते रहना चाहिए। गर्मी की फसल में 2-3 तथा वर्षाकालीन फसल में 3-4 निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

टिंडा की फसल में कीट और रोग नियंत्रण

तेला और चेपा: यह टिंडा फसल के पत्तों का रस चूसते हैंए जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं और मुरझा जाते हैं। तेले के कारण पत्ते मुड़ जाते हैं, जिससे पत्तों का आकार मुड़ कर कप की तरह हो जाता है। अगर खेत में इसका हमला दिखाई दें तो, थाइमैथोक्सम 5 ग्राम को 15 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

पत्तों पर सफेद धब्बे: इस रोग से पत्तों के ऊपरी सतह पर सफेद रंग के पाउडर के धब्बे पड़ जाते हैं, इससे पौधे का तना भी प्रभावित होता है। ये पत्तों को खाद्य स्त्रोत के रूप में प्रयोग करते हैं। इसके हमले के कारण टिंडा फसल के पत्ते और फल पकने से पहले ही गिर जाते है। इसका हमला दिखाई दें तो पानी में घुलनशील सलफर 20 ग्राम को 10 लीटर पानी में मिलाकर 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करें।

एंथ्राक्नोस: एंथ्राक्नोस से प्रभावित टिंडा फसल के पत्ते झुलसे हुए दिखाई देते हैं। इसकी रोकथाम के लिए, कार्बेनडाज़िम 2 ग्राम से प्रति किलो बीजों का उपचार करें। अगर इसका हमला खेत में दिखाई दें तो मैनकोजेब 2 ग्राम या कार्बेनडाज़िम 0.5 ग्राम को प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।

विषाणु रोग: इसके नियंत्रण के लिए रोगग्रस्त पौधे या शाखा को निकाल देना चाहिए। इस रोग को फैलाने वाले कीटों के नियंत्रण हेतु डाईमिथोएट या ट्राइजोफोस 40 ईसी का 2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर छिड़काव करें। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में 2-3 छिड़काव करके इस रोग के प्रकोप से फसल को बचाया जा सकता हैं।

टिंडा फलों की तुड़ाई और उपज: आमतौर पर बुवाई के 45-50 दिनों बाद टिंडा फलों की तुड़ाई शुरू हो जाती है। फलों को कच्ची अवस्था में तोड़ना चाहिए क्योंकि पके फल सब्जी के लिए उपयुक्त नहीं रहते हैं। उपरोत वैज्ञानिक तकनीक से टिंडा की प्रति हेक्टेयर 125-200 क्विंटल तक उपज प्राप्त होती है।

टिंडे के फलों का भंडारण: आवश्यकता अनुसार टिंडा फलों को किसी छायादार स्थान पर 2 से 3 दिन तक किसी टोकरी में रखकर भण्डारित कर सकते हैं। इस दौरान फलों पर बीच-बीच में पानी का छिड़काव करना जरूरी होता है। 4 से 6 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले प्रशीतन गृहों में टिण्डे को 15 दिनों तक सुरक्षित अवस्था में भंडारित किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

कीटनाशक नियम और किसानों के अधिकार: कीटनाशक उपयोग हेतु कानूनी मानदंड और हानिकारक रसायनों से किसानों की सुरक्षा

आशीष कुमार (सहायक प्रोफेसर)
APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY, (जयपुर राजस्थान)

परिचय: आज आधुनिक कृषि में कीटनाशकों का इस्तेमाल अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। ये रसायन रोगाणु और कीड़ों को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक हैं। हालांकि, इन रसायनों का अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग किसान और पर्यावरण दोनों के लिए खतरा बन चुका है। इसलिए, यह आवश्यक हो गया है कि कीटनाशक नियम और किसानों के अधिकार स्पष्ट रूप से परिभाषित किए जाएं। इसके साथ ही, कानूनी मानदंडों का पालन करना और हानिकारक रसायनों से किसानों को सुरक्षित रखना भी प्राथमिक जिम्मेदारी है। इस लेख में हम इन सभी पहलुओं का विश्लेषण करेंगे। साथ ही, यह भी समझेंगे कि कैसे किसान अपने अधिकारों का संरक्षण कर सकते हैं और उनके जीवन को सुरक्षित बना सकते हैं।

कीटनाशक नियम एक आवश्यक ढांचा : आधुनिक कृषि में कीटनाशक नियम एक स्थायी और सुरक्षित खेती के लिए अनिवार्य हैं। इन नियमों का उद्देश्य केवल रसायनों का नियंत्रण नहीं है, बल्कि किसानों को जागरूक भी बनाना है। वर्तमान में, केंद्रीय कृषि मंत्रालय ने कई दिशानिर्देश जारी किए हैं, जिनके तहत कीटनाशक का उपयोग कैसे करना है, इसकी सीमा क्या है, और किस प्रकार की सुरक्षा आवश्यक है, यह स्पष्ट किया गया है।

गुणवत्ता मानदंड और प्रमाणपत्र व्यवस्था: कानूनी मानदंडों का पालन सुनिश्चित करने के लिए, सबसे पहले, कीटनाशकों की गुणवत्ता मानदंड तय किए गए हैं। इन मानदंडों के अनुसार, रसायनों का उत्पादन करने वाली कंपनियों को जरूरी प्रमाणपत्र हासिल करना अनिवार्य है। ये प्रमाणपत्र यह सुनिश्चित करते हैं कि जिन रसायनों का प्रयोग किया जाएगा, वे नियंत्रित मात्रा में हानिकारक तत्वों से मुक्त हैं। साथ ही, किसानों को भी निर्देशित किया गया है कि वे केवल अभिप्रेत मानदंडों का पालन करने वाले ही कीटनाशक का उपयोग करें।

पंजीकरण और अनुमोदन प्रक्रिया: कीटनाशकों का उपयोग तभी किया जा सकता है, जब वे सरकार द्वारा संचालित पंजीकरण प्रक्रिया को पास कर चुके हों। यह सुनिश्चित करता है कि केवल सुरक्षित और प्रभावी रसायनों का ही उपयोग किया जाए। इसके अलावा, नए रसायनों के परीक्षणों और परीक्षण रिपोर्टों को भी आवश्यक माना गया है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि कृषि में इस्तेमाल होने वाले रसायन हानिकारक नहीं होंगे, और किसान सीधे लाभान्वित होंगे।

विनियामक प्रावधान और निगरानी प्रणाली: कानूनी मानदंडों के अंतर्गत, नियम उल्लंघन करने वालों पर दंडात्मक कार्रवाई का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही नियमित निरीक्षण और निगरानी भी की जाती है। यह प्रक्रिया सुनिश्चित करती है कि कोई भी अनुचित प्रयोग न हो और यदि कोई व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता है, तो उसे तुरंत दंडित किया जाए। यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह जागरूकता अभियान चलाए और नियमों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित करे।

किसानों के अधिकार-एक महत्वपूर्ण स्तंभ: किसानों के अधिकारों को मजबूत करने का उद्देश्य सिर्फ उनकी सुरक्षा नहीं, बल्कि उनके जीवन को बेहतर बनाने का भी है। जब तक किसान जागरूक और सशक्त नहीं होंगे, तब तक कीटनाशकों का सुरक्षित और प्रभावी उपयोग संभव नहीं है।

सूचना और जागरूकता का अधिकार: सबसे पहले, किसानों का अधिकार है कि उन्हें कीटनाशक नियमों और कानूनी मानदंडों के बारे में पूरी जानकारी मिले। सरकार और संबंधित निकाय इस दिशा में कदम उठा रहे हैं। जागरूकता अभियान आयोजित किए जाते हैं जिससे किसानों को पता चलता है कि कौन से रसायनों का उपयोग किया जा सकता है, कितनी मात्रा में करना चाहिए, और कब नहीं करना चाहिए। इसके अलावा, उन्हें सुरक्षा उपकरणों का उपयोग कैसे करना है, इसकी भी जानकारी दी जाती है।

प्रशिक्षण और सहायता का अधिकार: कृषि से जुड़े सभी किसानों को समय-समय पर प्रशिक्षण देना चाहिए। इन प्रशिक्षणों में उन्हें बताया जाता है कि इन नियमों का पालन क्यों जरूरी है। साथ ही, यदि कोई किसान किसी नियम का उल्लंघन करता है, तो उसे तुरंत सुधार करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण से न केवल उनका ज्ञान बढ़ता है, बल्कि उनकी सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है। इसके अलावा, सरकार को सहायता सेवाएं भी प्रदान करनी चाहिए ताकि किसान सुरक्षित और जिम्मेदार तरीके से कीटनाशक का उपयोग कर सकें।

सुरक्षा और बर्खास्तगी का अधिकार: यदि किसानों में कोई अनिश्चितता या समस्या है, तो उन्हें उचित संसाधनों की उपलब्धता हो। उन्हें यह अधिकार भी है कि यदि किसी कीटनाशक से उन्हें या उनके खेतों को नुकसान पहुंचता है, तो वे कानूनी कदम उठा सकें। उन्हें मुआवजा लेने का हक है और साथ ही, जिम्मेदार अधिकारियों से न्याय की आशा भी करनी चाहिए।

कानूनी मानदंड

खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण: कानूनी मानदंड यह सुनिश्चित करते हैं कि भोजन सुरक्षित हो और पर्यावरण संरक्षित रहे। इन नियमों के बिना, फसलों में हानिकारक रसायनों का प्रयोग बढ़ जाता है, जिससे मानव और पर्यावरण दोनों को नुकसान हो सकता है। इसलिए, कानून का कड़ाई से पालन आवश्यक है।

फसल उत्पादन में सीमा निर्धारित करना: कीटनाशक उपयोग की सीमा निर्धारित करना सबसे महत्वपूर्ण है। हर रसायन की एक अधिकतम सीमा तय की गई है। यदि किसान इन मानकों का उल्लंघन करते हैं, तो उन्हें दंडित किया जाता है। यह सीमा इंगित करती है कि कितना मात्रा में रसायन का प्रयोग फायदेमंद है, और कब तक यह सुरक्षित है। साथ ही, यह सीमा रसायनों की असरकारिता और किसानों की सुरक्षा दोनों का ध्यान रखती है।

समय सीमा एवं उपयोग के निर्देश: कीटनाशक का समय सीमा का निर्धारण भी सुरक्षा की दृष्टि से जरूरी है। फसलों पर उपयोग की सही अवधि स्पष्ट करना आवश्यक है, ताकि फसलें काटने से पहले रसायनों का प्रभाव खत्म हो जाए। इस तरह, उपभोक्ता को हानिकारक रसायनों से मुक्त खाद्य सामग्री मिलती है।

निरीक्षण और उल्लंघन पर दंड: कानूनी मानदंड के तहत, अधिकारियों को अधिकार दिए गए हैं कि वे नियमित निरीक्षण करें और उल्लंघन करने वालों पर कार्रवाई करें। जो किसान नियम तोड़ते हैं, उन्हें जुर्माना, लाइसेंस रद्द, या जेल जैसी सजा भी दी जा सकती है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि कानून का सम्मान किया जाए और कोई भी नियम तोड़ने की हिम्मत न करे।

हानिकारक रसायनों से किसानों की सुरक्षा: कृषि में अत्यधिक प्रयोग से हानिकारक रसायनों का प्रसार हो रहा है, जो सीधे किसानों के स्वास्थ्य, पर्यावरण, और उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा करते हैं। इस स्थिति में, आवश्यक है कि सरकार, किसानों, और संबंधित संस्थान मिलकर कदम उठाएं।

जोखिम एवं प्रभाव: हानिकारक रसायनों का प्रयोग यदि अतिशय मात्रा में किया जाए, तो वे मिट्टी, जल स्रोत, और वायु की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा, ये रसायन यदि गलत तरीके से इस्तेमाल किए जाएं, तो फसलों में जहर भी बन सकते हैं। इससे न केवल फसलें कम उत्पादन देती हैं, बल्कि किसान भी जानलेवा बीमारियों का शिकार हो सकते हैं।

विकल्पित तरीकों का प्रचार एवं प्रयोग: ऐसे में, जैविक खेती, नॉन-रासायनिक विकल्प, और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है। सरकार को चाहिए कि वे इन विकल्पों का प्रचार करें और किसानों को प्रशिक्षित करें। इससे न केवल रसायनों का प्रयोग कम होगा, बल्कि किसानों का स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहेगा।

सुरक्षित उपयोग और नियमित परीक्षण: यदि रसायनों का प्रयोग अनिवार्य है, तो उन्हें सुरक्षित तरीके से और निर्धारित मात्रा में ही उपयोग करना चाहिए। साथ ही, नियमित परीक्षणों के माध्यम से यह भी जांचना चाहिए कि फसलों में हानिकारक रसायनों का स्तर मानकों से नीचे है या नहीं। इससे उपभोक्ता की सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

किसानों के अधिकार का संरक्षण और प्रभावी कार्यवाही: कृषि कानूनों का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई अनिवार्य है। साथ ही, किसानों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना बेहद जरूरी है। इससे न केवल उनका जीवन बेहतर होगा, बल्कि वे अधिक जिम्मेदार भी बनेंगे।

मामलों में राहत और मुआवजा: यदि किसी किसान को उनकी फसल में हानिकारक रसायनों से नुकसान होता है, तो उन्हें तुरंत मुआवजा मिलना चाहिए। इसके लिए कानूनी प्रावधान स्पष्ट रूप से बनाए गए हैं। इन प्रावधानों का पालन करवाने हेतु अधिकारियों को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

जागरूकता अभियान और सीखना: सरकार और संबंधित संगठन किसानों को नियमित तौर पर जागरूकता अभियान आयोजित करें। इन अभियानों में उन्हें बताया जाए कि कैसे कानूनी मानदंडों का पालन किया जाए, और हानिकारक रसायनों से कैसे सुरक्षित रहा जाए। इसके अतिरिक्त, उन्हें उचित प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाना चाहिए।

न्याय प्रक्रिया में तेजी: किसानों के लिए न्याय प्रक्रिया का त्वरित और निष्पक्ष होना आवश्यक है। इससे उन्हें अपनी शिकायतों का निराकरण शीघ्र ही मिल सकेगा। इस तरह, वे अपने अधिकारों का प्रभावी ढंग से संरक्षण कर सकते हैं।

निष्कर्ष: अंत में, यह कहना जरूरी है कि कीटनाशक नियम और किसानों के अधिकार दोनों सुरक्षा और जिम्मेदारी का प्रतीक हैं। यदि हम इन नियमों का सही ढंग से पालन करें और किसानों को जागरूक बनाएं, तो निश्चित रूप से एक सुरक्षित, स्वस्थ, और समृद्ध कृषि व्यवस्था बनाई जा सकती है। इसके साथ ही, हमें हानिकारक रसायनों की उपयोगिता को नियंत्रित करने के लिए प्रतिबंधात्मक कानूनी प्रावधानों को सख्ती से लागू करना चाहिए। यह न केवल किसानों के जीवन को सुरक्षित बनाएगा, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और उपभोक्ता स्वास्थ्य के लिहाज से भी महत्वपूर्ण है। अतः, किसानों का अधिकार सुरक्षित रखने और उन्हें उचित कानूनी समर्थन देने के लिए निरंतर प्रयास करना आवश्यक है। इसी में हमारा लाभ है, और यही हमारे भविष्य की समृद्धि का आधार है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

सब्जियों की पौध तैयार करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

युवराज कुमावत यंग प्लांट ब्रीडर, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऐंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर, (राजस्थान)

रोहित कुमावत पशु उत्पादन विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

अधिकतर सब्जी फसलें जैसे कि टमाटर, गोभी व प्याज जिनके बीज छोटे व पतले होते है, उनकी स्वस्थ व उन्नत पौध तैयार कर लेना ही आधी फसल उगाने के बराबर होता है स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए पौधशाला के स्थान का चयन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

1. पौधशाला की मिट्टी को 2-2.5 ग्राम/वर्गमीटर की दर से थायराम या कैप्टान से उपचारित करना चाहिए। ट्राइकोडर्मा विरिडी 4-5 कि.ग्रा./है. की दर से उपचारित कर सकते है।
2. क्यारियों का आकार सतह से 20-30 से.मी. ऊँची उठी हुई, 1 मी. चौड़ी तथा 3 मीटर लम्बी बनाना चाहिए। रबी की नर्सरी समतल भूमि में डाली जा सकती है परन्तु वर्षा ऋतु में ऊँची उठी हुई क्यारियाँ बनाना उचित होता है।
3. सिंचाई हेतु पानी की समुचित व्यवस्था तथा अधिक पानी के निकास की व्यवस्था रखनी चाहिए।
4. 2-3 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद तथा 10-20 ग्राम डी.ए.पी. प्रतिवर्ग मी. के हिसाब से मिला दें।
5. तैयार क्यारियों में चौड़ाई के समानान्तर 5 से. मी. की दूरी पर 2 से. मी. गहरी पंक्तियाँ बना लेते है। उपचारित बीज (2.5 ग्राम थायरम/किलो बीज) को इन्हीं पंक्तियों में बुवाई कर देते है तथा मिट्टी, सड़ी हुई गोबर की बारीक खाद या कम्पोस्ट खाद तथा बालू को अच्छी तरह मिलाकर, क्यारियों में इस प्रकार डालें की सभी बीज ढक जायें।
6. हजारे से हल्की सिंचाई के उपरान्त सूखी घास आदि से अच्छी तरह ढक दें समय-समय पर फुब्बारे से सिंचाई करते रहें। जब बीज उगना शुरू हो जायें तो आवरण हटा दें।
7. बुवाई के लगभग 15-20 दिन बाद थायरम या कैप्टान से 2-2.5 ग्राम/ली. पानी की दर से ड्रेन्चिंग करना चाहिए।
8. लगभग 20 दिनों बाद बायोएंल्गीन नामक पोषक (4 मिली/ली. पानी) की दर से छिड़काव करें व लगभग 2 बार मल्टीन्यूट्रीयंट घोल (2 मि.ली.ली. पानी) के हिसाब से छिड़काव करें इससे नर्सरी की वृद्धि शीघ्र एवं स्वस्थ होती है।
9. एक माह बाद यदि पौधे कमजोर या अच्छी बढ़वार न हो तो 5 ग्रा/वर्ग मीटर की दर से पानी लगाने के बाद यूरिया का बुरकाव कर दें या 1-2 ग्राम/ली. पानी में घोल कर पत्तियों पर छिड़काव कर दें।
10. खरपतार नियंत्रण हेतु स्टॉम्प 2-5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से बुवाई से 15-20 दिन पूर्व पौधशाला में डालें।

प्रो-ट्रे में पौध तैयार करना

सब्जियों के बीज खासतौर से संकर किस्में काफी मंहगा होने के कारण एक-एक बीज की कीमत है। इसलिए शत-प्रतिशत जमाव तथा निरोगी स्वस्थ पौध पैदा करने के लिए प्रो-ट्रे का उपयोग किया जाता है। प्रो-ट्रे प्लास्टिक की बनी होती है तथा अलग-अलग आकार व खानों की होती है। जिनमें 99 से 200 पौधे उगा सकते हैं। कम जगह में अधिक से अधिक पौध उगा सकते हैं तथा आवश्यकतानुसार मौसम के हिसाब से इधर-उधर स्थानान्तरित भी कर सकते है। कोकोपीट, वर्मीकुलाइट और परलाइट माध्यमों को 3:1:1 अनुपात में मिलाकर मिश्रण बना लेते हैं तथा प्रत्येक खाने को इस मिश्रण से भर देते हैं। प्रत्येक खाने में एक-एक बीज की बुवाई कर देते हैं तथा बाद में हजारे से सिंचाई कर देते हैं। प्रो-ट्रे में बीजों का अंकुरण लगभग शत-प्रतिशत होता है और चूँकि प्रत्येक पौध के लिए निश्चित खाद-पानी एक खाने से मिल रही है तो पौध की बढ़वार भी बहुत अच्छी तथा समान होती है। प्रो-ट्रे को कम जगह में रखने व दूर भेजने में भी आसानी रहती है। जबकि पौधे अलग-अलग खानें में उगते हैं और तैयार होते हैं तथा इनकी जड़ें मिश्रण को अच्छी तरह जकड़ लेती हैं और जड़ों को नुकसान नहीं पहुँचता, परिणामस्वरूप पौध खेत में समान रुप से उगते हैं तथा बहुत ही कम पौधे मरते हैं।

पौधों को कठोर बनाना

पॉलीहाऊस या अन्य नियंत्रित वातावरण में तैयार की गयी पौध बहुत ही नाजुक होती है, जो खेत में रोपाई के बाद ठीक तरह से लग नही पाती है तथा अधिक मात्रा में पौधे मरते हैं। अतः नियंत्रित वातावरण से प्राकृतिक वातावरण में ले जाने से पहले पौध को कठोर बनाना अति आवश्यक है। इसके लिए पौधों की रोपाई के 6-7 दिन पूर्व पानी देना बन्द कर देते हैं। रोपाई से 6-7 दिन पहले प्रो-ट्रे या थैलियों को बाहर निकालकर शेडनेट के नीचे खुले वातावरण में रखे और धीरे-धीरे शेडनेट हटा दें ताकि पौध रोपाई के बाद अच्छी तरह विकसित हो सकें। पौध को कठोर बनाने के लिए 1 प्रतिशत म्यूरेट आफ पोटाश (10 ग्रा./ली. पानी) का घोल स्प्रे करना चाहिए या सोडियम क्लोराइड के 6 ग्राम/ली. के घोल का स्प्रे भी कर सकते है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

मक्का (बेबी कॉर्न) की आधुनिक एवं उन्नत उत्पादन तकनीक

डॉ. पीयूष चौधरी (सहायक आचार्य), कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि वि.वि., कोटा

डॉ. जे.के. बाना (सह आचार्य), कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

विशाल गुप्ता (तकनीकी सहायक), कृषि अनुसंधान केंद्र, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. धर्मपाल सिंह (सहायक आचार्य), राजस्थान कृषि महाविद्यालय, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर

बेबी कॉर्न दोहरे उद्देश्यों वाली महत्वपूर्ण फसलों में से एक है। यह अधिक तेजी से विकास करने वाली फसल है। आजकल अपरिपक्व मक्के के भुट्टे को सब्जी के रूप में उपयोग किया जा रहा है, जिसको बेबी कॉर्न कहा जाता है। पिछले कुछ वर्षों में किसानों का रुझान बेबी कॉर्न (मक्के की प्रजाति) की खेती की तरफ बढ़ रहा है, क्योंकि बेबी कॉर्न की फसल बहुत कम समय में तैयार हो जाती है, साथ ही इसके साथ दूसरी फसलें भी ले सकते हैं। बेबी कॉर्न एक ऐसी फसल है, जो हर मौसम में उगाई जा सकती है। इसे साल में तीन से चार बार उगा सकते हैं, इसमें एक हेक्टेयर में करीब चालीस से पचास हजार रुपए तक का मुनाफा होता है। पहले बेबीकॉर्न के व्यजंन सिर्फ बड़े शहरों के होटलों में मिलते थे लेकिन अब यह आमजन के बीच काफी लोकप्रिय हो गया है। बेबी कॉर्न उद्योग उच्च आय के अवसर प्रदान करता है तथा किसानों के लिए रोजगार और निर्यात की संभावनाएं पैदा करता है।

मक्का (बेबी कॉर्न): बेबी कॉर्न मक्का का भुट्टा है, जो सिल्क (भुट्टा के ऊपरी भाग में आयी रेशमी कोपलें) की 1 से 3 सेंटीमीटर लम्बाई वाली अवस्था और सिल्क आने के 1 से 3 दिन के अंदर ऋतु के अनुसार पौधा से तोड़ लिया जाता हैद्य इस अवस्था में दाने अनिषेचित होते हैं। अच्छे बेबी कॉर्न की लम्बाई 6 से 10 सेंटीमीटर, व्यास 1 से 1.5 सेंटीमीटर एवं रंग हल्का पीला होना चाहिए। यह फसल खरीफ (गर्मी) में लगभग 50 से 60 दिनों और रबी (सर्दी) में 110 से 120 दिनों, एवं जायद (वसंत) में 70 से 80 दिनों में तैयार हो जाती है। एक वर्ष में बेबी कॉर्न की 3 से 4 फसलें आसानी से ली जा सकती हैं।

बेबी कॉर्न का पौष्टिक महत्व: यह एक स्वादिष्ट पौष्टिक आहार है एवं पत्तों में लिपटे रहने के कारण कीटनाशक रसायनों के प्रभाव से लगभग मुक्त होती है। इसमें फास्फोरस प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इसके अलावा इसमें कार्बोहाईड्रेट्स, प्रोटीन, कैल्सियम, लोहा व विटामिन भी पाई जाती है। पाचन (डाइजेशन) के दृष्टि से भी यह एक अच्छा आहार है।

बेबी कॉर्न का उपयोग: इसे कच्चा या पकाकर खाया जा सकता है। इसके अनेक प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं जैसे- सूप, सलाद, सब्जियाँ, कोफ्ता, पकौड़ा, भुजिया, रायता, खीर, लड्डू, हलवा, आचार, कैन्डी, मुरब्बा, बर्फी, जैम आदि।

उत्पादन की विधि: बेबी कॉर्न की उत्पादन तकनीक कुछ विभिन्नता के अलावा सामान्य मक्का की ही तरह है। ये विभिन्नताएँ इस प्रकार है, जैसे- अगेती परिपक्वता (जल्द तैयार होने वाली) वाली एकल क्रास संकर मक्का की किस्मों को उगाना। पौधों की अधिक संख्या। झंडो को तोड़ना। भुट्टा में सिल्क आने के 1 से 3 दिन के अन्दर भुट्टा की तुड़ाई।

भूमि का चयन: आमतौर इसे सभी प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है लेकिन अम्लीय और क्षारीय मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नही है। खेत में जल निकासी की व्यवस्था करना भी आवश्यक है।

बेबी कॉर्न की श्रेष्ठ प्रभेद/प्रजाति का चयन: बेबी कॉर्न की प्रजाति का चयन करते समय भुट्टे की गुणवत्ता को ध्यान में रखना चाहिए। भुट्टे के दानों का आकार और दानों का सीधी पंक्ति में होना चयन में एक समान भुट्टे पकने वाली प्रजाति जो मध्यम ऊंचाई की अगेती परिपक्व (55 दिन) हों, उनको प्राथमिकता देनी चाहिए। भारत में पहला बेबी कॉर्न प्रजाति वीएल-78 है। इसके अलावा एकल क्रॉस हाईब्रिज एचएम-4 देश का सबसे अच्छा बेबी कॉर्न हाइब्रिड है। कुछ अन्य प्रजातियां जैसे गंगा- 5, गंगा सफेद- 2, गंगा- 11, डेक्कन- 101, डेक्कन- 103 आदि को भी उगाया जा सकता है।

बुवाई का समय: खासकर उत्तर भारत में दिसंबर और जनवरी महीनों को छोड़ कर सालों भर बेबी कॉर्न की बुवाई की जा सकती है। उत्तरी भारत में मार्च से मई माह तक बेबी कॉर्न की माँग अधिक होती है। इसके लिए जनवरी माह के अंतिम सप्ताह में बुवाई करना उपयुक्त होता है। दक्षिणी भारत में इसे पुरे साल भर उगाया जा सकता है। इस प्रकार से बाजार में बेबी कॉर्न की माँग के समय को ध्यान में रखते हुए बुवाई की जाए तो अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

बुवाई की विधि: बुवाई मेंड़ के दक्षिणी भाग में की जानी चाहिए। सीधे रहने वाले पौधे हेतु मेंड़ और पौधा से पौधा की दूरी 60×15 सेंटीमीटर एवं फैलने वाले पौधे के लिए 60×20 सेंटीमीटर दूरी रखना चाहिए।

बीज की मात्रा: किस्म के टेस्ट वेट के अनुसार लगभग 10 किलोग्राम प्रति एकड़ बीज का प्रयोग करना चाहिए ।

बीज उपचार: बुवाई से पहले प्रति किग्रा बीज मे एक ग्राम बावीस्टीन एवं एक ग्राम कैप्टन मिला देना चाहिए। रसायन उपचारित बीज को छाया में सुखाना चाहिए। इस तरह मक्का के फसल को टीएलबी, एमएलबी, बीएलएस बी आदि बीमारियों से बचाया जा सकता है। तना भेदक (शूट फ्लाई) से बचाव के लिए फिप्रोनिल 4 से 6 मिलीलीटर प्रति किग्रा. बीज में मिलाना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन: बुवाई के तुरंत बाद और अंकुरण के पहले शाकनाशी एट्राजिन या एटाट्राफ 400 से 600 ग्राम प्रति एकड़ की दर से 200 से 250 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से अधिकतर खर-पतवार का प्रबन्धन हो जाता है। यदि जरूरत पड़े तो 1 से 2 बार खुरपी से गुड़ाई कर देने से बाकी बचे हुए खरपतवार का भी प्रबंधन हो जाता है। छिड़काव या गुड़ाई करने वाले व्यक्ति को आगे के बजाय पीछे की ओर बढ़ना चाहिए ।

उर्वरक प्रबंधन: मिट्टी परीक्षण के आधार पर पोषक तत्वों का प्रयोग बेहतर होता है। समान्यतः 60 से 75: 24: 24: 10 किलोग्राम प्रति एकड़ के अनुपात में एन:पीः के एवं जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा अच्छी उपज के लिए सड़ी हुई गोबर की खाद (एफ वाई एम) 8 से 10 टन प्रति हेक्टेयर का भी प्रयोग करना चाहिए। सम्पूर्ण फास्फोरस, पोटाश, जिंक और 10 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा बुवाई के समय खेत में डालना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को चार भागों (4 पत्तियों की अवस्था में 20 प्रतिशत, 8 पत्तियों की अवस्था में 30%, नर मंजरी को तोड़ने से पहले 25% एवं नर मंजरी को तोड़ने के बाद 15 प्रतिशत) प्रयोग करने से पूरे फसल के दौरान कम से कम नुकसान के साथ-साथ इसकी उपलब्धता बनाए रखने में सहूलियत होती है।

सिंचाई प्रबंधन: मक्का की फसल में मौसम, फसल की अवस्था एवं मिट्टी के अनुसार सिंचाई की जरूरत होती है। पहली सिंचाई युवा पौध की अवस्था, दूसरी फसल के घुटने की ऊंचाई के समय, तीसरी फूल (झंडा) आने से पहले और चौथी तुड़ाई के ठीक पहले देनी चाहिए ।

अंतरवर्तीय फसलें: अंतरवर्तीय फसलों से बेबी कॉर्न की उपज पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। बल्कि दलहनी अंतरवर्तीय फसलें मिटटी की उर्वरता को बढ़ाती है। खरीफ मौसम में बेबी कॉर्न के साथ लोबिया, उड़द, मूंग आदि फसलें उगाई जा सकती है। रबी के मौसम में आलू, मटर, राजमा, चुकन्दर, प्याज, लहसुन, पालक, मेथी, फूलगोभी, नॉल-खोल, ब्रोकली, लेटयूस, शलजम, मूली, गाजर, फ्रेंचबिन ली जा सकती है। अंतरवर्ती खेती के लिये बेबी कॉर्न की निर्धारित उर्वरक के अलावा अंतरवर्ती फसल की निर्धारित उर्वरक का भी प्रयोग करना चाहिए ।

कीटों का प्रबंधन: तना छेदक मक्का का एक प्रमुख हानिकारक कीट है, पौध जमने के 10 दिन बाद इसके ऊपरी भाग (गोभ) में 85 प्रतिशत वेटेबल पाउडर बाला कारबेरिल का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करने से इस कीट का प्रबन्धन हो जाता है।

तुड़ाई: बेबी कॉर्न की तुड़ाई के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना बहुत ही जरूरी होता है, जैसे-बेबी कॉर्न की भुट्टा (गुल्ली) को 1 से 3 सेंटीमीटर सिल्क आने पर तोड़ लेनी चाहिए। भुट्टा तोड़ते समय उसके ऊपर की पत्तियों को नहीं हटाना चाहिए। पत्तियों को हटाने से ये जल्दी खराब हो जाती है। खरीफ में प्रतिदिन और रबी में एक दिन के अन्तराल पर सिल्क आने के 1 से 3 दिन के अन्दर भुट्टे की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। एकल क्रॉस संकर मक्का में 3 से 4 तुड़ाई जरूरी होता है।

पैदावार: बेबी कॉर्न की पैदावार इसकी किस्मों की क्षमता और मौसम पर निर्भर करती है। एक ऋतु में 6 से 8 क्विंटल प्रति एकड़ बेबी कॉर्न (बिना छिलका) की उपज ली जा सकती है। इससे 80 से 160 क्विंटल प्रति एकड़ हरा चारा भी मिल जाता है। इसके अलावा कई अन्य पौष्टिक पौध उत्पाद जैसे- नरमंजरी, रेशा, छिलका, तुड़ाई के बाद बचा हुआ पौधा आदि प्राप्त होता है, जिन्हें पशुओं को हरा चारा के रूप में खिलाया जा सकता है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन: इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए, जैसे-बेबी कॉर्न का छिलका तुड़ाई के बाद उतार लेनी चाहिए। यह कार्य छायादार एवं हवादार जगहों पर करना चाहिए। ठंडे जगहों पर बेबी कॉर्न का भंडारण करना चाहिए। छिलका उतरे हए बेबी कॉर्न को ढेर लगा कर नहीं रखना चाहिए, बल्कि प्लास्टिक की टोकड़ी, थैला या अन्य कंटेनर में रखना चाहिए। बेबी कॉर्न को तुरंत मंडी या संसाधन इकाई (प्रोसेसिंग प्लांट) में पहुँचा देना चाहिए।

प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग): नजदीक के बाजार में बेबी कॉर्न (छिलका उतरा हुआ) को बेचने के लिये छोटे-छोटे पोलिबैग में पैकिंग किया जा सकता है। इसे अधिक समय तक संरक्षित रखने के लिये काँच(शीशा) की पैकिंग सबसे अच्छी होती है। काँच के पैकिंग में 52% बेबी कॉर्न और 48% नमक का घोल होता है। बेबी कॉर्न को डिब्बा में बंद करके दूर के बाजार या अन्तराष्ट्रीय बाजारों में बेचा जा सकता है। कैनिंग (डिब्बाबंदी) की विधि निम्न फ्लो डाईग्राम में प्रदर्शित है, जैसे- छिलका उतरा हुआ बेबी कॉर्न- सफाई करना, उबालना, सुखाना, ग्रेडिंग करना, डिब्बा में डालना, नमक का घोल डालना, वायुरुद्ध करना, डिब्बा बंद करना, ठंडा करना, गुणवत्ता की जाँच करना आदि।

प्रिजर्वेशन: बेबी कॉर्न को डिब्बा में डालने के बाद 2% नमक और 98% पानी का घोल बनाकर या 3% नमक, 2% चीनी, 0.3% साइट्रिक एसिड और शेष पानी का घोल बनाकर डिब्बा में डाल देना चाहिए।

विपणन (मार्केटिंग): इसकी बिक्री बड़े शहरों (जैसे- दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता आदि) के मंडियों में की जा रही है। कुछ किसान बन्धु इसकी बिक्री सीधे ही होटल, रेस्तरां, कम्पनियों (रिलायन्स, सफल आदि) को कर रहे हैं। कुछ यूरोपियन देशों तथा यू एस ए में बेबी कॉर्न के आचार एवं कैन्डी की बहुत ही ज्यादा माँग है। उत्तर भारत में कुछ कम्पनियां किसानों से सीधा अनुबंधन भी कर रही है।

निष्कर्ष: बेबी कॉर्न एक उच्च मूल्य एवं कम अवधि में तैयार होने वाली लाभकारी फसल है, जो किसानों को अतिरिक्त आय के साथ-साथ पशुओं के लिए गुणवत्तायुक्त हरा चारा भी प्रदान करती है। इसकी बढ़ती मांग, बेहतर बाजार मूल्य तथा वर्ष में कई बार खेती की संभावना इसे एक आकर्षक कृषि उद्यम बनाती है। उन्नत किस्मों का चयन, संतुलित पोषण प्रबंधन, उचित सिंचाई, समय पर खरपतवार एवं कीट-रोग नियंत्रण तथा सही अवस्था में भुट्टों की तुड़ाई अपनाकर किसान अधिक उत्पादन एवं बेहतर गुणवत्ता प्राप्त कर सकते हैं। वैज्ञानिक खेती पद्धतियों के माध्यम से बेबी कॉर्न की खेती कृषि विविधीकरण, पोषण सुरक्षा तथा किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

छोटे किसानों की समृद्धि का रास्ता: कम लागत वाली आधुनिक कृषि तकनीकें

लक्ष्मी मीणा पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

सरजीत यादव पी.एच.डी. स्कॉलर, विस्तार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

डॉ. सोनम अग्रवाल विस्तार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

परिचय

आज के बदलते कृषि परिवेश में, खेती को अधिक टिकाऊ और मुनाफ़ेदार बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों को अपनाना अब आवश्यक हो गया है। कम लागत वाली उन्नत कृषि तकनीकें आज छोटे और सीमांत किसानों के लिए नई उम्मीद लेकर आई हैं। खेती अब केवल परंपरागत तरीकों पर निर्भर नहीं रही; बल्कि नई तकनीकें अपनाने से अब कम लागत में भी अधिक उत्पादन पाना संभव होता जा रहा है। भारत में लगभग 85त्न छोटे और सीमांत वर्ग के किसान हैं, जिनके लिए खेती की लागत और जोखिम लगातार बढ़ते जा रहे हैं। इस परिस्थिति में उन तकनीकों को अपनाने की ज़रूरत है जो खेती की उपज को बढ़ाएं और लागत को घटाने में किसानों की सहायता करे। उन्नत कृषि की तकनीकें शुरुआती दौर में महंगी लग सकती हैं, लेकिन असल में बहुत तरीक़े ऐसे हैं जिन्हें सामान्य किसान भी बिना ज़्यादा खर्च के आसानी से अपना सकता है और इनका लाभ उन्हें तुरंत दिखाई देने लगता है। धीरे-धीरे खेती में तकनीक का उपयोग बढ़ रहा है, जिससे किसान भी समझने लगे हैं कि यदि खेती को समझदारी और वैज्ञानिक तरीके से किया जाए, तो कम लागत में भी अच्छी आमदनी हासिल की जा सकती है।

छोटे किसानों के लिए सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि उत्पादन खर्च को कम करना जैसे कि बीज, खाद, पानी, मज़दूरी और कीटनाशक और कम लागत वाली तकनीकों का मुख्य उद्देश्य यही होता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक उत्पादन करना। उदाहरण के लिए, अनेक क्षेत्रों में किसान मिट्टी की सेहत की जानकारी लिए बिना ही उर्वरक डालते हैं, इससे लागत बढ़ती है और मिट्टी की उर्वरता घटती है। लेकिन यदि किसान मिट्टी की जांच करवा लें और आवश्यकतानुसार ही खाद का उपयोग करें, तो लागत 20-30% तक कम किया जा सकता है। यही नहीं, फसल को सही पोषक तत्व मिलने से उपज भी बढ़ती है।

इसी तरह, जैविक और प्राकृतिक तकनीकों का उपयोग भी छोटे किसानों के लिए कम खर्च में अधिक लाभ देने का एक प्रभावी तरीका है। जैसे कि गोबर खाद, कंपोस्ट, जीवामृत, घनजीवामृत, वर्मी कम्पोस्ट आदि जैविक कृषि सामग्री घर पर ही तैयार किए जा सकते हैं। इससे न केवल रासायनिक खाद पर खर्च कम होता है बल्कि मिट्टी की मिट्टी की संरचना और नमी बनाए रखने की क्षमता में भी सुधार होता है। बड़ी संख्या में किसान अपने ही द्वारा तैयार किए हुए नीम अर्क, लहसुन-अदरक घोल या देशी कीटनाशक से कीट नियंत्रण करते हैं, जिससे ना केवल रासायनिक दवाओं पर होने वाला खर्च कम होता है, बल्कि खेत की उपजाऊ क्षमता को लंबे समय तक बनाए रखने में भी मदद करता है।

सूक्ष्म सिंचाई (माइक्रो इरिगेशन) जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर भी एक बेहद उपयोगी तकनीक है। ड्रिप सिंचाई में पानी सीधे पौधे की जड़ों तक पहुंचता है और 50-60% पानी की बचत होती है। साथ ही, फसल की वृद्धि बेहतर होती है और उर्वरकों का उपयोग भी कम होता है। पहले ड्रिप या स्प्रिंकलर जैसी प्रणालियाँ को अपनाना महँगा समझा जाता था, लेकिन अब सरकारी योजनाओं के चलते छोटे किसान भी इन्हें आसानी से अपनाने लगे हैं। कई राज्यों में माइक्रो इरिगेशन पर 60-80% सब्सिडी मिलती है, और किसान चाहें तो इसे आसान किश्तों में भी लगवा सकते हैं, जिससे शुरुआती खर्च काफी कम हो जाता है।

कम लागत वाली तकनीकों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन कृषि उपकरणों की साझा उपयोग प्रणाली, यानी कस्टम हायरिंग सेंटरों के रूप में देखने को मिला है। पहले छोटे किसानों के लिए ट्रैक्टर, रोटावेटर, रीपर, थ्रेशर जैसे उपकरण खरीदना असंभव जैसा था, क्योंकि इनकी लागत बहुत अधिक होती है। लेकिन अब गांवों में मशीनरी बैंक और सामुदायिक कृषि केंद्र स्थापित हो रहे हैं, जहाँ किसान जरूरत के अनुसार उपकरण किराए पर ले सकते हैं।

बीज प्रबंधन और उन्नत किस्मों का चयन भी छोटे किसानों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तकनीक है। उत्तम गुणवत्ता वाले बीज ना केवल अधिक उपज देते हैं, बल्कि रोगों का सामना करने में भी ज्यादा सक्षम होते हैं। कई विश्वविद्यालय और कृषि विभाग ऐसी नई किस्में तैयार कर रहे हैं जो सूखा, अत्यधिक तापमान, कीटों और बदलती जलवायु परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम हों। किसान यदि प्रमाणित बीज लें या स्थानीय स्तर पर बीज ग्राम बनाकर खुद बीज उत्पादन करें, तो लागत काफी हद तक कम किया जा सकता हैं।

फसल विविधीकरण छोटे किसानों के लिए एक प्रभावी तरीका है, जो खेती में होने वाले जोखिमों को काफी हद तक कम करता है। जब किसान सिर्फ एक ही फसल पर आश्रित होता है, तो सूखा, ज्यादा बारिश, कीट-रोग या बाजार भाव गिरने जैसी परिस्थितियों में नुकसान का खतरा कई गुना बढ़ जाता है। इसके विपरीत, यदि किसान सब्ज़ियों, दलहन, तिलहन, पशुपालन या बागवानी जैसी अतिरिक्त गतिविधियाँ शामिल कर लेते हैं, तो उनकी आय और ज्यादा स्थिर व सुरक्षित बनी रहती है।

डिजिटल तकनीकें अब छोटे किसानों के लिए बेहद सरल और उपयोगी साबित हो रही है। जैसे, कि मौसम की जानकारी, बाजार भाव, कीट-रोग और उर्वरक संबंधी जानकारी मोबाइल ऐप्स और व्हाट्सऐप से तुरंत मिल जाती है, वह भी बिना ज्यादा खर्च के। सही समय पर मिली ये सूचनाएँ किसानों को सही निर्णय लेने में मदद करती हैं जैसे खराब मौसम होने पर सिंचाई रोक देना या कीट रोग के खतरे पर समय से स्प्रे कर देना। इससे अनावश्यक खर्च बचता है और नुकसान का जोखिम भी कम हो जाता है।

इन सभी तकनीकों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इन्हें अपनाने के लिए अधिक लागत की आवश्यकता नहीं होती। बस थोड़ी सी जागरूकता, सही जानकारी और अच्छी योजना से किसान इन तकनीकों का पूरा फायदा ले सकते हैं। कृषि का भविष्य सिर्फ बड़े किसानों या महंगी मशीनों तक सीमित नहीं है, बल्कि छोटे किसान भी आधुनिक तरीकों को अपनाकर अपनी खेती को ज्यादा लाभदायक बना सकते हैं।

निष्कर्ष

अंततः, छोटे किसानों को तकनीक से डरने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उन्हें इसे अपनी ताकत के रूप में अपनाना चाहिए। खेती अपने-आप में एक कला है, और तकनीक उसी कला को और अधिक प्रभावी और सुंदर बनाने का साधन बन सकती है। यदि किसान कम लागत वाली उन्नत तकनीकों को नियमित खेती का हिस्सा बना लें, तो न केवल खेत की उत्पादकता बढ़ेगी, बल्कि उनका आत्मविश्वास और आजीविका भी मजबूत होगी।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

जैविक कीट नियंत्रण रसायन मुक्त एवं टिकाऊ कृषि की ओर एक कदम

डॉ. जे.के. बाना, डॉ. किशोर पुजार
डॉ. पीयूष चौधरी
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

भारतीय कृषि आज अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, जिनमें कीट एवं रोगों का प्रकोप प्रमुख है। फसलों को कीटों से बचाने के लिए रासायनिक कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है। प्रारम्भ में ये कीटनाशक कीट नियंत्रण में प्रभावी सिद्ध होते हैं, किन्तु इनके लगातार एवं अविवेकपूर्ण उपयोग से कई गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। पर्यावरण प्रदूषण, खाद्य पदार्थों में विषैले अवशेष, मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव, लाभकारी जीवों का विनाश तथा कीटों में प्रतिरोधक क्षमता का विकास आज कृषि के लिए चिंता का विषय बन चुका है। वर्तमान समय में सुरक्षित खाद्य उत्पादन, पर्यावरण संरक्षण तथा टिकाऊ कृषि प्रणाली की आवश्यकता को देखते हुए जैविक कीट नियंत्रण एक प्रभावी एवं पर्यावरण अनुकूल विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है। यह तकनीक प्राकृतिक शत्रुओं एवं जैविक एजेंटों के माध्यम से हानिकारक कीटों की संख्या को नियंत्रित करता है तथा रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैविक कीट नियंत्रण क्या है?: जैविक कीट नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसमें प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले लाभकारी जीवों जैसे परभक्षी, परजीवी कीट एवं रोगजनक सूक्ष्मजीवों का उपयोग करके हानिकारक कीटों की संख्या को नियंत्रित किया जाता है। यह विधि पर्यावरण के लिए सुरक्षित होने के साथ-साथ कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बनाए रखने में भी सहायक है।

प्राकृतिक शत्रुओं की भूमिका: वे लाभकारी जीव जो हानिकारक कीटों को खाकर, उनमें परजीवी बनकर अथवा उनमें रोग उत्पन्न करके उनकी संख्या को नियंत्रित करते हैं, प्राकृतिक शत्रु कहलाते हैं। प्रकृति में ये जैविक संतुलन बनाए रखने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं।

प्राकृतिक शत्रु मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं

1.परभक्षी (Predators) 2.परजीवी कीट (Parasitoids)
3.रोगजनक सूक्ष्मजीव (Pathogens)

एक प्रभावी जैविक नियंत्रण एजेंट (प्राकृतिक शत्रु) में निम्नलिखित गुण होने चाहिए

* नए क्षेत्र की पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल होने की क्षमता।
* परपोषी के सभी आवासों में जीवित रहने की क्षमता। * विशिष्ट परपोषी होना। * परपोषी की तुलना में अधिक तेजी से वृद्धि एवं गुणन करना। * अधिक प्रजनन क्षमता होना।
* जीवन चक्र परपोषी से छोटा होना चाहिए।
* परपोषी को खोजने की अच्छी क्षमता होना।
* प्रयोगशाला में आसानी से बहुगुणित किया जा सके।
* तीव्र प्रसार क्षमता होना। * अतिपरजीवियों से मुक्त होना।

प्राकृतिक शत्रुओं के प्रमुख प्रकार

1.परभक्षी: वे जीव हैं जो अपने जीवनकाल में बड़ी संख्या में हानिकारक कीटों को भोजन के रूप में खाते हैं। सामान्यतः ये अपने शिकार से आकार में बड़े होते हैं।

उदाहरण

* **लेडीबर्ड बीटल** -माहू का भक्षण
* **क्राइसोपा (ग्रीन लेसविंग)**-सफेद मक्खी एवं माहू का नियंत्रण
* **मकड़ियाँ** -विभिन्न कीटों का शिकार
* **व्याध पतंग**-छोटे कीटों का भक्षण
* **प्रेइंग मैंटिस**- कैटरपिलर एवं अन्य कीट

2.परजीवी: कीट एक ऐसा परजीवी कीट जो केवल अपनी अपरिपक्व अवस्था में परजीवी होता है, अपने विकास के दौरान मेज़बान को मार देता है तथा वयस्क अवस्था में स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करता है।

उदाहरण

* ***ट्राइकोग्रामा प्रजातियाँ*** - लेपिडोप्टेरन कीटों के अंडे
* ***ब्रेकॉन प्रजातियाँ***- इल्ली
* ***चेलोनस ब्लैकबर्नी***-स्पॉटेड बॉलवर्म के अंडों का परजीवी।
* ***कोपिडोसोमा कोहलेरी***-आलू कंद पतंगा का परजीवी
* ***कोटेसिया प्लूटेला***-डायमंड बैक मॉथ की इल्ली का परजीवी।
* ***एन्कार्सिया फॉर्मोसा***- कपास की सफेद मक्खी का परजीवी।
* ***एपिरिकेनिया मेलानोल्यूका***-गन्ना पायरीला का परजीवी।

3.श्रोगजनकज: सूक्ष्मजीव कुछ सूक्ष्मजीव कीटों में रोग उत्पन्न कर उन्हें नष्ट करते हैं।

उदाहरण

* ***एन.पी.वी.***-चना फली छेदक, तंबाकू इल्ली / आर्मीवर्म
* ***बवेरिया बेसियाना***- व्हाइटफ्लाई, एफिड, बीटल
* ***मेटाराइजियम एनिसोप्ली***- दीमक, भृंग
* ***बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस***- इल्ली एवं लेपिडोप्टेरन कीट

जैविक नियंत्रण की तकनीकें

1. संरक्षण (Conservation): इस विधि में खेतों में पहले से उपस्थित प्राकृतिक शत्रुओं जैसे परभक्षी, परजीवी एवं रोगजनक सूक्ष्मजीवों का संरक्षण किया जाता है। इसके लिए ऐसे कृषि उपाय अपनाए जाते हैं जिससे प्राकृतिक शत्रुओं को भोजन, आश्रय एवं अनुकूल वातावरण प्राप्त हो सके।

प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण के उपाय

1. कीटनाशकों का विवेकपूर्ण उपयोग

* आवश्यकता पड़ने पर ही कीटनाशकों का प्रयोग करें। * अत्यधिक विषैले एवं व्यापक प्रभाव वाले कीटनाशकों से बचें। * चयनात्मक कीटनाशकों का उपयोग करें। *आर्थिक क्षति स्तर के आधार पर छिड़काव करें।

2. जैविक कीटनाशकों का उपयोग * नीम आधारित उत्पाद, Bt, NPVU एवं फफूंद आधारित जैव-कीटनाशक प्राकृतिक शत्रुओं के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित होते हैं।

3. आवास संरक्षण * प्राकृतिक शत्रुओं के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना आवश्यक है।

प्रमुख उपाय * खेत की मेड़ों पर पुष्पीय पौध लगाना * मिश्रित एवं अंतरवर्ती फसलें अपनाना * लाभकारी खरपतवारों का संरक्षण * खेतों में जैव विविधता बनाए रखना

4. अनावश्यक छिड़काव से बचाव * बार-बार एवं बिना आवश्यकता के छिड़काव करने से प्राकृतिक शत्रु नष्ट हो जाते हैं। इसलिए आवश्यकता आधारित छिड़काव करें।

5. समेकित कीट प्रबंधन अपनाना * समेकित कीट प्रबंधन में सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक एवं रासायनिक विधियों का संतुलित उपयोग किया जाता है, जिससे प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण संभव होता है।

2. आयात/परिचय (Importation/Introduction): इस तकनीक में किसी बाहरी या नए क्षेत्र में पाए जाने वाले हानिकारक कीटों के नियंत्रण हेतु उनके प्राकृतिक शत्रुओं को दूसरे स्थान से लाकर स्थापित किया जाता है। इसका उद्देश्य नए क्षेत्र में जैविक संतुलन स्थापित करना होता है।

उदाहरण * विदेशी कीटों के नियंत्रण हेतु उनके मूल स्थान से परजीवी या परभक्षी लाकर छोड़ना। * नई फसलों में आक्रमण करने वाले कीटों हेतु उपयुक्त जैव नियंत्रण एजेंटों का परिचय कराना।

3. संवर्धन (Augmentation): इस विधि में प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कृत्रिम रूप से बढ़ाकर खेतों में छोड़ी जाता है ताकि कीटों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सके। संवर्धन दो प्रकार का होता है-

1.इनोकुलेटिव रिलीज़ (Inoculative Release): इस विधि में प्राकृतिक शत्रुओं को कम संख्या में छोड़ा जाता है ताकि वे खेत में स्थापित होकर अपनी संख्या बढ़ा सकें तथा लंबे समय तक कीटों का नियंत्रण करते रहें।

उदाहरण * *ट्राइकोग्रामा* परजीवी का सीमित मात्रा में प्रयोग। * ग्रीनहाउस फसलों में प्रारंभिक अवस्था में परभक्षी कीटों का छोड़ना।

2. इनन्डेटिव रिलीज़ (Inundative Release)- इस विधि में प्राकृतिक शत्रुओं को बहुत बड़ी संख्या में छोड़ा जाता है ताकि कीटों का त्वरित एवं प्रभावी नियंत्रण किया जा सके। इसका प्रभाव जैविक कीटनाशक के समान तुरंत दिखाई देता है।

उदाहरण- *ट्राइकोकार्ड का बड़े पैमाने पर प्रयोग। * क्राइसोपा, लेडीबर्ड बीटल अथवा NPV का बड़े स्तर पर उपयोग।

प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण का महत्व

1.पर्यावरण संरक्षण प्राकृतिक शत्रु बिना प्रदूषण फैलाए कीटों की संख्या नियंत्रित करते हैं। इससे पर्यावरण संतुलन बना रहता है।

2.रासायनिक कीटनाशकों का कम उपयोग प्राकृतिक शत्रुओं की सक्रियता से कीटों का प्रकोप कम होता है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता घट जाती है।

3.टिकाऊ कृषि प्रणाली प्राकृतिक शत्रु दीर्घकालीन एवं स्थायी कीट नियंत्रण प्रदान करते हैं। इससे टिकाऊ एवं सुरक्षित कृषि को बढ़ावा मिलता है।

4.कीट पुनरुत्थान की रोकथाम अत्यधिक कीटनाशक उपयोग से लाभकारी कीट नष्ट हो जाते हैं, जिससे हानिकारक कीट पुनः तेजी से बढ़ते हैं। प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण इस समस्या को रोकता है।

5.कीटों में प्रतिरोधक क्षमता का विकास कम होना प्राकृतिक नियंत्रण के कारण कीटों पर रासायनिक दबाव कम पड़ता है, जिससे उनमें प्रतिरोधक क्षमता धीरे-धीरे विकसित होती है।

6.मानव एवं पशु स्वास्थ्य की सुरक्षा प्राकृतिक शत्रुओं के उपयोग से खाद्य पदार्थों में कीटनाशक अवशेष कम होते हैं, जो मानव एवं पशुओं के लिए सुरक्षित है।

निष्कर्ष-जैविक कीट नियंत्रण रसायन मुक्त एवं टिकाऊ कृषि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। प्राकृतिक शत्रुओं एवं जैविक एजेंटों के माध्यम से कीटों का नियंत्रण न केवल पर्यावरण संरक्षण में सहायक है, बल्कि सुरक्षित खाद्य उत्पादन एवं मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में किसानों को जैविक नियंत्रण आधारित तकनीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है, ताकि कृषि उत्पादन को सुरक्षित, संतुलित एवं टिकाऊ बनाया जा सके।

आधुनिक रिश्तों में बदलाव और जीवन-शैली पर प्रभाव

माधुस्मिता नाहक, रीना मेहरा एवं रजनी खन्ना
मानव विकास एवं परिवार अध्ययन, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

आजकल मध्य आयु या बुजुर्ग अवस्था में अलग होने की प्रवृत्ति पहले की तुलना में अधिक देखने को मिल रही है। लंबे समय तक साथ रहने के बाद भी रिश्तों में दरार आने लगी है। जीवन के लंबे सफर के बाद भी कई बार रिश्तों में दूरी बढ़ती दिखाई देने लगी है। जो लोग वर्षों तक साथ रहते हैं उनके बीच में धीरे-धीरे समझ और अपनापन कम होता जा रहा है। कई बार समस्याएं इतनी बढ़ जाती हैं। अलग -अलग होने की नौबत आ जाती हैं जिस करण बात तलाक तक पहुंच जाती हैं ÷जीवन के मध्य या अंतिम चरण में होने वाला तलाक÷ को ग्रे तलाक कहा जाता है। पहले समय में साथ निभाने और हर परिस्थिति में एक-दूसरे का सहारा बनने की सोच बहुत मजबूत होती थी, लेकिन अब सोच में बदलाव आने लगा है। लोग अपनी व्यक्तिगत खुशी और शांति को अधिक महत्व देने लगे हैं। जिस करण जीवनशैली पर असर हो रहा हैं, रिश्तों में बदलाव होता जा रहा हैं ये बहुत ही चिंता का विषय हैं इस पर हमें चर्चा करनी चाहिए ।

रिश्तों में बदलाव क्यों हो रहा हैं- पहले समय में रिश्ते अधिकतर जिम्मेदारी और समझौते पर आधारित होते थे। लोग परिवार को साथ रखने के लिए अपने कई फैसले बदल लेते थे और बच्चों की परवरिश, अपने बूढ़े माँ- बाप की सेवा करना, एक-दूसरे के साथ निभाने को प्राथमिकता देते थे। पर आज समय बदल गया हैं लोग व्यक्तिगत खुशी और स्वतंत्रता को अधिक महत्व देने लगे हैं । अपने मन की शांति और अपनी इच्छाओं को पहले स्थान पर रखने लगे हैं। सोच में आए इस बदलाव का सीधा असर संबंधों पर पड़ रहा है। रिश्तों में पहले जैसी सहनशीलता और समझ कम होती जा रही है, जिससे दूरी और अलगाव की स्थिति बढ़ने लगी है। इस करण रिश्तों में दरार आने लगी हैं लोगों का व्यव्हार स्वार्थी हो गया हैं, अपने आप से ही मतलब रखते हैं, न परिवार की चिंता और न ही समाज की भलाई के बारे में सोचते हैं ।

मुख्य क्या करण हैं रिश्ते टूटने का

- लंबे समय से चली आ रही अनबन और नाराज़गी धीरे-धीरे बढ़ती रहती है और समय के साथ रिश्तों में दूरी आ जाती है।
- आपसी बातचीत की कमी के करण और एक-दूसरे को पर्याप्त समय न देने के करण भी रिश्तों में गलतफहमियाँ बढ़ जाती हैं और रिश्तों के बीच दूरी और अधिक हो जाती है।
- बच्चों के बड़े हो जाने के बाद जीवन में एक प्रकार का खालीपन महसूस होने लगता है, जिससे दंपति के बीच जुड़ाव कम हो जाता है।
- समय के साथ भावनात्मक जुड़ाव कमजोर हो जाने से रिश्ते पहले जैसे मजबूत नहीं हो पाते ।
- आधुनिक जीवनशैली और अधिक व्यस्तता के कारण लोग एक-दूसरे को समय नहीं दे पा रहे हैं, जिससे रिश्तों में दूरी बढ़ रही है।
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सोच बढ़ने लगी है, जिससे लोग अपने फैसलों और इच्छाओं को अधिक महत्व देने लगे हैं।
- सहनशीलता और धैर्य में कमी आने से छोटी-छोटी बातों पर भी मतभेद बढ़ जाते हैं।
- आर्थिक स्वतंत्रता के कारण लोग पहले की तुलना में अधिक आत्मनिर्भर हो गए हैं जिससे रिश्तों में आपसी निर्भरता कम हो गई है।

रिश्तों में बदलाव के करण जीवन शैली पर क्या प्रभाव पड़ता हैं

- **अकेलापन महसूस होना:** रिश्तों में दूरी बढ़ने पर व्यक्ति स्वयं को अकेला और असहाय महसूस करने लगता है।
- **तनाव और उदासी बढ़ना:** लगातार मन में चिंता और दुख बना रहता है, जिससे मानसिक तनाव बढ़ जाता है।
- **जीवन में खालीपन का एहसास:** लंबे समय के साथ के बाद अचानक दूरी आने से जीवन अधूरा और खाली-सा लगने लगता है। जिससे जीवन में खालीपन का एहसास होता हैं ।
- **आत्मसम्मान पर असर:** रिश्तों में दूरी के कारण व्यक्ति के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिससे उनके मन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होने लगती हैं ।
- **परिवारिक ढांचे का कमजोर होना:** लंबे समय से रिश्तों में दूरी आने से परिवार की एकता और मजबूती कम होने लगती है।
- **बच्चों और रिश्तेदारों पर भावनात्मक असर:** अलगाव का असर परिवार के अन्य सदस्यों, खासकर बच्चों और रिश्तेदारों की भावनाओं पर पड़ता है।
- **सामाजिक स्तर पर चर्चा और दबाव:** समाज में ऐसे मामलों पर चर्चा होती है, जिससे परिवार पर मानसिक और सामाजिक दबाव बढ़ जाता है।
- **बुजुर्गों में अकेलेपन की समस्या:** जीवन के अंतिम पड़ाव में अलगाव होने पर बुजुर्ग लोग अधिक अकेलापन और असुरक्षा महसूस करने लगते हैं।

रिश्तों को मजबूत कैसे बनाएं

- रिश्तों में खुलकर बात करना बहुत जरूरी है। जब लोग अपनी बात और अपनी परेशानी साफ-साफ बताते हैं, तो गलतफहमी कम हो जाती है और समझ बढ़ती है।
- बच्चों को समय दे उनके साथ दिनचर्या की बाते करे , जिससे रिश्ते मजबूत होंगे और आपसी प्रेम भी बना रहेगा ।
- एक-दूसरे को समय देना और सम्मान करना रिश्ते को मजबूत बनाता है। छोटी-छोटी बातों में भी ध्यान और अपनापन दिखाना बहुत फर्क डालता है।
- जो पुरानी नाराज़गी और गलतफहमियाँ मन में जमा हो गई हैं, उन्हें धीरे-धीरे शांत बातचीत के जरिए दूर करने की कोशिश करनी चाहिए, ताकि दिल का बोझ कम हो सके, और रिश्तों में मिठास बनी रहे ।

कई बार रिश्तों में गलतफमी इतनी बढ़ जाती हैं, ऐसे में किसी समझदार व्यक्ति या परामर्शदाता की मदद लेनी चाहिए है, जिससे सही रास्ता मिल सकता है और रिश्ते फिर से बेहतर हो सकते हैं। रिश्ते समय की वजह के साथ -साथ आपसी समझ और प्रेम की वजह से मजबूत बने रहते हैं। जब दो लोग एक-दूसरे को समझते हैं और सम्मान देते हैं, तो संबंध लंबे समय तक टिके रहते हैं। उम्र बढ़ने के साथ रिश्तों को और अधिक ध्यान, धैर्य और अपनापन देने की जरूरत होती है, ताकि वे कमजोर न पड़ें बल्कि और मजबूत बनें। "जहाँ समझ होती है, वहाँ रिश्ते उम्र के हर पड़ाव को पार कर जाते हैं।"

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता: अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

वस्त्र हस्तशिल्प उद्योग में जूट रेशे का उपयोग

डॉ. मोना वर्मा एवं साक्षी परिधान एवं वस्त्र विज्ञान विभाग, इंदिरा चक्रवर्ती सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय (हरियाणा)

जूट का उत्पादन: भारत में जूट उत्पादन एक महत्त्वपूर्ण कृषि एवं औद्योगिक गतिविधि के रूप में स्थापित है। विशेष रूप से पूर्वी भारत, विशेषकर पश्चिम बंगाल, बिहार, ओडिशा तथा असम के क्षेत्रों में जूट की खेती बड़े स्तर पर की जाती है। जूट उद्योग संगठित मिलों, व्यापारिक इकाइयों तथा प्रसंस्करण केंद्रों के माध्यम से लाखों लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार प्रदान करता है। यह न केवल किसानों के लिए आय का साधन है बल्कि परिवहन, व्यापार, प्रसंस्करण तथा लघु उद्योगों को भी आर्थिक आधार प्रदान करता है।

जूट एक वर्षा आधारित फसल है, जिसे अन्य रेशेदार फसलों की अपेक्षा कम उर्वरक तथा कीटनाशकों की आवश्यकता होती है। इसी कारण इसकी उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम रहती है। जूट मुख्यतः कोरकोरस प्रजाति के पौधों से प्राप्त होता है, जिनमें सफेद जूट तथा टोसा जूट प्रमुख हैं। जूट का रेशा पौधे के तने की बाहरी परत से प्राप्त किया जाता है। इसके लिए तनों को जल में भिगोकर सड़ाने की प्रक्रिया अपनाई जाती है, जिसके बाद रेशों को अलग कर सुखाया जाता है। यह प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्रों में सरलता से की जा सकती है, जिससे स्थानीय स्तर पर अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध होता है। जूट रेशे के गुणः जूट रेशा अपेक्षाकृत सस्ता, मजबूत तथा बहुमुखी प्राकृतिक रेशा है, जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के वस्त्र एवं हस्तशिल्प उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। इसकी उच्च तन्यता शक्ति इसे मजबूत धागे, कपड़े, बैग तथा घरेलू उपयोगी वस्तुओं के लिए उपयुक्त बनाती है। जूट रेशा स्थैतिक विद्युत उत्पन्न नहीं करता तथा इसमें विद्युतरोधी गुण पाए जाते हैं, जिससे यह विशेष उपयोगों के लिए भी लाभकारी सिद्ध होता है। यह रेशा वायु पारगम्य तथा नमी अवशोषित करने वाला होता है, जिससे इससे बने उत्पाद आरामदायक और टिकाऊ रहते हैं। इसकी कम तापीय चालकता ऊष्मा एवं ध्वनि रोधन में सहायक होती है। जूट की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी जैव-अपघटनीयता है, जिसके कारण यह पर्यावरण के अनुकूल माना जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें कम विस्तारशीलता, प्राकृतिक सुनहरी चमक तथा खुरदरी किंतु आकर्षक बनावट पाई जाती है। यही गुण जूट से बने हस्तनिर्मित उत्पादों को विशिष्ट सौंदर्य और उपयोगिता प्रदान करते हैं। आर्थिक दृष्टि से भी यह एक किफायती रेशा है, इसलिए कम निवेश में मूल्यवान उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं।

सरकार द्वारा जूट के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए उठाए गए महत्वपूर्ण कदम: भारत सरकार जूट किसानों तथा जूट उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए निरंतर विभिन्न योजनाएँ संचालित कर रही है। जूट उत्पादकों को न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से उचित मूल्य उपलब्ध कराया जाता है, जिससे किसानों को आर्थिक सुरक्षा मिलती है। इसके साथ ही जूट पैकेजिंग सामग्री अधिनियम, 1987 के अंतर्गत खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की पैकेजिंग में जूट बोरों के उपयोग को बढ़ावा दिया गया है, जिससे जूट की मांग स्थिर बनी रहती है और किसानों को नियमित बाजार मिलता है।

सरकार द्वारा "जूट-स्मार्ट" डिजिटल प्लेटफॉर्म लागू किया गया है, जिसके माध्यम से जूट बोरियों की खरीद, आपूर्ति एवं मांग प्रबंधन को अधिक पारदर्शी और व्यवस्थित बनाया गया है। "जूट-आईकेयर" कार्यक्रम के अंतर्गत जूट रेशे की गुणवत्ता सुधार, उत्पादन लागत में कमी तथा किसानों की आय बढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। राष्ट्रीय जूट बोर्ड प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन, डिजाइन विकास तथा जूट उत्पादों के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। इन सरकारी प्रयासों से जूट उद्योग को नए बाजार, बेहतर उत्पादन प्रणाली तथा मूल्य संवर्धित उत्पादों की दिशा में प्रोत्साहन मिला है।

जूट द्वारा बनाए जाने वाले कुछ उत्पादों की जानकारी: वर्तमान समय में जूट का उपयोग केवल पारंपरिक बोरे, टाट और रस्सियों तक सीमित नहीं है, बल्कि इससे अनेक उपयोगी, सजावटी तथा बाजारोन्मुख उत्पाद तैयार किए जा रहे हैं। वस्त्र एवं हस्तशिल्प उद्योग में जूट से शॉपिंग बैग, फाइल फोल्डर, टेबल मैट, टोकरियाँ, पेन स्टैंड, लैंप शेड, गिफ्ट पैकिंग सामग्री तथा घरेलू सजावटी वस्तुएँ निर्मित की जाती हैं। जूट से बने बैग विशेष रूप से प्लास्टिक बैग का पर्यावरण-अनुकूल विकल्प बन चुके हैं तथा व्यापारिक प्रचार सामग्री के रूप में भी उपयोग किए जा रहे हैं। इसी प्रकार जूट रस्सी और जूट कपड़े से वॉल डेकोरेटिव आइटम, हैंगिंग्स, नाम-प्लेट, कलात्मक सजावटी वस्तुएँ तथा कार्यालय उपयोगी सामग्री तैयार की जाती है। जूट से बने पेन स्टैंड, टेबल ऑर्गेनाइज़र तथा छोटे उपहार उत्पाद कम लागत में अधिक आकर्षण प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त जूट से कुशन कवर, परदे, रनर, लैम्प कवर, ज्वेलरी तथा फैशन एसेसरीज़ भी तैयार की जा रही हैं। इसकी प्राकृतिक बनावट, पुनः उपयोगिता, मजबूती तथा जैव-अपघटनीयता के कारण जूट आधारित उत्पादों की लोकप्रियता निरंतर बढ़ रही है।

वस्त्र हस्तशिल्प उद्योग में जूट रेशे का बढ़ता महत्व: जूट रेशा आज वस्त्र हस्तशिल्प उद्योग में केवल उपयोगी सामग्री के रूप में नहीं बल्कि सतत विकास के प्रतीक के रूप में उभर रहा है। इसकी कम लागत, आसानी से उपलब्धता तथा सरल प्रसंस्करण के कारण ग्रामीण महिलाओं, स्वयं सहायता समूहों तथा लघु उद्यमों द्वारा इससे अनेक हस्तनिर्मित उत्पाद तैयार किए जा रहे हैं। इससे कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिलता है तथा आय सृजन के नए अवसर प्राप्त होते हैं। वर्तमान फैशन उद्योग में भी जूट रेशा सस्टेनेबल फैशन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। फैशन डिजाइनरों द्वारा जूट को आधुनिक डिजाइनों, रंग संयोजनों तथा कलात्मक अलंकरण के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे इसकी बाजार उपयोगिता में निरंतर वृद्धि हो रही है। साथ ही प्लास्टिक प्रतिबंध, हरित उपभोग की प्रवृत्ति तथा पर्यावरण जागरूकता के कारण उपभोक्ता जूट आधारित उत्पादों को प्राथमिकता देने लगे हैं। इस प्रकार जूट रेशा आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय तीनों स्तरों पर लाभकारी सिद्ध हो रहा है और भविष्य के हरित उद्योग का सशक्त आधार बन रहा है।

निष्कर्ष: जूट रेशा वस्त्र हस्तशिल्प उद्योग में एक बहुउपयोगी, किफायती तथा पर्यावरण-अनुकूल संसाधन के रूप में स्थापित हो चुका है। जूट का उत्पादन, इसके विशिष्ट गुण, सरकारी प्रोत्साहन तथा विविध उपयोग यह स्पष्ट करते हैं कि यह रेशा आधुनिक बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप है। जूट आधारित बैग, सजावटी वस्तुएँ, फैशन एसेसरीज़ तथा घरेलू उपयोगी उत्पाद न केवल बाजार में लोकप्रिय हैं बल्कि ग्रामीण रोजगार, महिला सशक्तिकरण तथा कुटीर उद्योग विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। अतः भविष्य में जूट रेशा सतत वस्त्र हस्तशिल्प उद्योग का एक सशक्त आधार सिद्ध होगा।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

वर्मी कम्पोस्ट: टिकाऊ एवं लाभकारी जैविक खेती का आधार

आशीष शिवरान, अशोक ढिल्लों
राजपाल यादव
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़, चौ- चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। पिछले कुछ दशकों में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के उद्देश्य से रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग किया गया। इससे प्रारम्भ में उत्पादन बढ़ा, लेकिन धीरे-धीरे मिट्टी की उर्वरता घटने लगी, भूमि की जलधारण क्षमता कम हुई तथा पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बढ़ी। इन समस्याओं के समाधान के लिए जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। जैविक खेती में वर्मी कम्पोस्ट का विशेष महत्व है। वर्मी कम्पोस्ट एक ऐसी जैविक खाद है जिसे केंचुओं की सहायता से तैयार किया जाता है। यह मिट्टी को प्राकृतिक रूप से उपजाऊ बनाती है तथा फसलों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराती है। वर्तमान समय में यह तकनीक किसानों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रही है क्योंकि इससे कम लागत में अच्छी गुणवत्ता की खाद तैयार की जा सकती है।

वर्मी कम्पोस्ट क्या है?

"वर्मी" शब्द का अर्थ केंचुआ तथा "कम्पोस्ट" का अर्थ जैविक खाद होता है। अतः केंचुओं द्वारा जैविक पदार्थों को विघटित करके तैयार की गई खाद को वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं। इस प्रक्रिया में मुख्यतः गोबर, फसल अवशेष, सूखे पत्ते, सब्जियों एवं फलों के छिलके, रसोई का जैविक कचरा आदि का उपयोग किया जाता है। केंचुए इन पदार्थों को खाकर उन्हें महीन एवं पोषक तत्वों से भरपूर खाद में बदल देते हैं। वर्मी कम्पोस्ट में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सूक्ष्म पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो पौधों की वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

वर्मी कम्पोस्ट के लिए उपयुक्त केंचुए

वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए विशेष प्रकार के केंचुओं का उपयोग किया जाता है। इनमें प्रमुख हैं 1. आइसिनिया फेटिडा 2. यूड्रिलस यूजीनिया 3. पेरीऑनिक्स एक्सकेवेटस

ये केंचुए जैविक पदार्थों को तेजी से विघटित करते हैं और उत्तम गुणवत्ता की खाद तैयार करते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि

1. स्थान का चयन

* छायादार एवं समतल स्थान का चयन करें।
* स्थान पर जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
* प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाश एवं वर्षा से बचाव आवश्यक है।

2. बेड या टैंक की तैयारी

* ईंट, लकड़ी या सीमेंट से बेड बनाया जा सकता है।
* सामान्यतः 10 फीट लंबा, 3 फीट चौड़ा एवं 1 फीट ऊँचा बेड उपयुक्त माना जाता है।

3. आधार सामग्री बिछाना

सबसे नीचे सूखी घास, भूसा या नारियल रेशा बिछाया जाता है ताकि वायु संचार बना रहे।

4. जैविक पदार्थ डालना

* गोबर एवं फसल अवशेषों को अच्छी तरह सड़ा लें।
* इसके बाद इन्हें परतों में बेड में भरें।

5. केंचुओं का प्रयोग

तैयार बेड में उचित मात्रा में केंचुए छोड़े जाते हैं। सामान्यतः एक टन जैविक पदार्थ के लिए लगभग 1 से 1.5 किलोग्राम केंचुए पर्याप्त होते हैं।

6. नमी बनाए रखना

* बेड में 60 से 70% नमी बनाए रखना आवश्यक है।
* नियमित रूप से पानी का हल्का छिड़काव करें।

7. खाद तैयार होना

लगभग 45 से 60 दिनों में वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाती है। तैयार खाद का रंग गहरा भूरा या काला तथा बनावट भुरभुरी होती है।

वर्मी कम्पोस्ट में पाए जाने वाले पोषक तत्व

पोषक तत्व	अनुमानित मात्रा
नाइट्रोजन	1.5 से 2.0
फास्फोरस	1.0 से 1.5
पोटाश	1.0 से 1.5
जैविक कार्बन	15 से 20

इसके अतिरिक्त इसमें लाभकारी सूक्ष्मजीव भी पाए जाते हैं जो मिट्टी की गुणवत्ता सुधारते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

1. मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि

वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी में जैविक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है जिससे मिट्टी उपजाऊ बनती है।

2. जलधारण क्षमता में सुधार- यह मिट्टी की पानी रोकने की क्षमता बढ़ाती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है।

3. पौधों की बेहतर वृद्धि- इस खाद से पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है और फसल स्वस्थ रहती है।

4. रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम- वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग से रासायनिक खादों पर निर्भरता घटती है, जिससे खेती की लागत कम होती है।

5. पर्यावरण संरक्षण- जैविक कचरे का उपयोग होने से प्रदूषण कम होता है और स्वच्छता बनी रहती है।

6. रोग एवं कीट नियंत्रण में सहायता- वर्मी कम्पोस्ट पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होती है।

7. किसानों की आय में वृद्धि- किसान स्वयं खाद तैयार करके उपयोग कर सकते हैं तथा अतिरिक्त खाद बेचकर अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन में सावधानियाँ

1. बेड में अत्यधिक पानी नहीं भरना चाहिए।
2. सीधे धूप एवं भारी वर्षा से बचाव करें।
3. ताजे गोबर का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
4. रासायनिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों का प्रयोग नहीं करें।
5. समय-समय पर नमी एवं तापमान की जाँच करते रहें।

कृषि में वर्मी कम्पोस्ट का महत्व

आज के समय में टिकाऊ कृषि की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी की संरचना सुधारने, उत्पादन बढ़ाने तथा पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह जैविक खेती का एक मजबूत आधार है और किसानों को कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त करने में सहायता करती है। सरकार एवं कृषि विभाग भी किसानों को वर्मी कम्पोस्ट इकाइयाँ स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। कई किसान इसे व्यवसाय के रूप में अपनाकर अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं।

वर्मी कम्पोस्ट एक सरल, सस्ती एवं पर्यावरण अनुकूल तकनीक है जो कृषि को टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसके उपयोग से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है, फसल उत्पादन में वृद्धि होती है तथा किसानों की लागत कम होती है। वर्तमान समय में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग अत्यंत आवश्यक है। यदि किसान इस तकनीक को बड़े स्तर पर अपनाएँ, तो कृषि उत्पादन के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
नई दिल्ली

कृषि जैव विविधता संरक्षण का महत्व

पुष्पेन्द्र यादव, शुभ्रांशु सिंह कृषि विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप, कृषि अनुसंधान भवन-I, पूसा नई दिल्ली- 110012

रिचा यादव रामा विश्वविद्यालय मंधना, कानपुर (उ.प्र.)

सार: कृषि मानव सभ्यता की आधारशिला है। मनुष्य के भोजन, वस्त्र और जीवनयापन का प्रमुख स्रोत कृषि ही है। कृषि केवल फसल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मिट्टी, जल, वनस्पति, पशुधन और सूक्ष्मजीवों का समन्वय भी शामिल होता है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण, रासायनिक खेती और जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि व्यवस्था पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। इन परिस्थितियों में कृषि जैव विविधता का संरक्षण अत्यंत आवश्यक हो गया है। जैव विविधता प्रकृति की वह संपदा है जो कृषि को स्थिरता, उत्पादन क्षमता और पर्यावरणीय संतुलन प्रदान करती है।

कृषि जैव विविधता का अर्थ: कृषि जैव विविधता का अर्थ उन सभी जीवित संसाधनों से है जो कृषि और खाद्य उत्पादन में उपयोगी होते हैं। इसमें विभिन्न प्रकार की फसलें, बीज, फल, सब्जियाँ, पशुधन, कीट, पक्षी तथा सूक्ष्मजीव शामिल हैं। यह विविधता प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने और कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने में सहायता करती है। प्राचीन समय में किसान अनेक प्रकार की फसलें उगाते थे। हर क्षेत्र की अपनी पारंपरिक किस्में होती थीं, जो स्थानीय जलवायु और मिट्टी के अनुकूल थीं। लेकिन आधुनिक कृषि में सीमित उन्नत किस्मों पर निर्भरता बढ़ने के कारण कई पारंपरिक प्रजातियाँ समाप्त होती जा रही हैं। यह स्थिति कृषि और पर्यावरण दोनों के लिए चिंता का विषय है।

खाद्य सुरक्षा में कृषि जैव विविधता का महत्व: कृषि जैव विविधता खाद्य सुरक्षा की आधारशिला है। विभिन्न प्रकार की फसलें हमें संतुलित और पौष्टिक भोजन प्रदान करती हैं। यदि केवल कुछ सीमित फसलों पर निर्भरता होगी तो खाद्य संकट उत्पन्न हो सकता है। दालें, अनाज, फल, सब्जियाँ और तिलहन मानव शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। विविध कृषि प्रणाली से लोगों को विटामिन, प्रोटीन और खनिज पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। इससे कुपोषण जैसी समस्याओं को कम किया जा सकता है। यदि किसी एक फसल को रोग या प्राकृतिक आपदा से नुकसान हो जाए, तब भी अन्य फसलें खाद्य आवश्यकता को पूरा कर सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन से सुरक्षा: आज विश्व जलवायु परिवर्तन की गंभीर समस्या का सामना कर रहा है। अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ और अत्यधिक तापमान जैसी परिस्थितियाँ खेती को प्रभावित कर रही हैं। ऐसी स्थिति में कृषि जैव विविधता किसानों के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करती है। कुछ पारंपरिक फसलें सूखा सहन करने में सक्षम होती हैं, जबकि कुछ अधिक वर्षा में भी अच्छी पैदावार देती हैं। यदि विभिन्न प्रकार की प्रजातियाँ सुरक्षित रहेंगी तो भविष्य में बदलती जलवायु के अनुसार नई खेती प्रणालियाँ विकसित की जा सकेंगी। इस प्रकार जैव विविधता कृषि को संकटों से बचाने में सहायता करती है।

मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में योगदान: मिट्टी कृषि का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। कृषि जैव विविधता मिट्टी की गुणवत्ता और उर्वरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विभिन्न फसलें मिट्टी से अलग-अलग पोषक तत्व ग्रहण करती हैं। फसल चक्र अपनाने से मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है। दालों की फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाती हैं, जिससे भूमि अधिक उपजाऊ बनती है। इसके अतिरिक्त केंचुए और सूक्ष्मजीव मिट्टी को भुरभुरी और उपजाऊ बनाने में सहायता करते हैं। यदि जैव विविधता नष्ट हो जाएगी तो मिट्टी की गुणवत्ता भी प्रभावित होगी।

पर्यावरण संरक्षण में भूमिका: कृषि जैव विविधता पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। पेड़-पौधे, पक्षी, कीट और सूक्ष्मजीव एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यह पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संतुलन बनाए रखता है। मधुमक्खियाँ और अन्य परागण करने वाले कीट फसलों की उपज बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि इनका अस्तित्व खतरे में पड़ेगा तो कृषि उत्पादन भी प्रभावित होगा। इसके अलावा जैव विविधता प्राकृतिक रूप से कीट नियंत्रण में सहायता करती है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम होता है। इससे पर्यावरण प्रदूषण में कमी आती है।

रासायनिक खेती और जैव विविधता पर प्रभाव: हरित क्रांति के बाद कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग किया जाने लगा। इससे उत्पादन तो बढ़ा, लेकिन पर्यावरण और जैव विविधता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। रासायनिक पदार्थों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता घटती है, जल स्रोत प्रदूषित होते हैं और लाभकारी जीव नष्ट हो जाते हैं। कई स्थानीय बीज और पारंपरिक प्रजातियाँ विलुप्त होने लगी हैं। इसलिए आज आवश्यकता है कि किसान जैविक खेती और प्राकृतिक खेती को अपनाएँ। इससे कृषि और पर्यावरण दोनों सुरक्षित रहेंगे।

पारंपरिक बीजों का संरक्षण: पारंपरिक बीज कृषि जैव विविधता की अमूल्य धरोहर हैं। पहले किसान अपने बीज स्वयं तैयार करके सुरक्षित रखते थे। ये बीज स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होते थे और कम संसाधनों में भी अच्छी पैदावार देते थे। आज बाजार आधारित कृषि व्यवस्था के कारण किसान बाहरी कंपनियों पर निर्भर होते जा रहे हैं। इससे पारंपरिक बीजों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। बीज बैंक, सामुदायिक बीज भंडारण और स्थानीय बीजों के उपयोग को बढ़ावा देकर इनका संरक्षण किया जा सकता है।

किसानों की आर्थिक सुरक्षा: कृषि जैव विविधता किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में भी सहायक होती है। यदि किसान केवल एक ही फसल पर निर्भर रहेगा और वह फसल खराब हो जाए, तो उसे भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है। बहुफसली खेती, पशुपालन, बागवानी और मत्स्य पालन जैसे विविध कृषि कार्य किसानों की आय के अलग-अलग स्रोत बनाते हैं। इससे जोखिम कम होता है और आर्थिक स्थिरता बनी रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं।

भारत में कृषि जैव विविधता: भारत जैव विविधता की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध देश है। यहाँ विभिन्न जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अनेक प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। देश के अलग-अलग क्षेत्रों में चावल, गेहूँ, दालें, मोटे अनाज, मसाले, फल और सब्जियों की हजारों पारंपरिक किस्में पाई जाती हैं। बासमती चावल, रागी, ज्वार और बाजरा जैसी फसलें भारतीय कृषि संस्कृति की पहचान हैं। इनका संरक्षण हमारी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के समान है।

संरक्षण के उपाय:

कृषि जैव विविधता संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं— 1. जैविक और प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देना। 2. पारंपरिक बीजों का संरक्षण करना। 3. फसल चक्र और मिश्रित खेती अपनाना। 4. रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का सीमित उपयोग करना। 5. जल और मिट्टी संरक्षण पर ध्यान देना। 6. किसानों को जागरूक और प्रशिक्षित करना। 7. वृक्षारोपण और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना। इन उपायों के माध्यम से कृषि को अधिक टिकाऊ और सुरक्षित बनाया जा सकता है।

सरकार और समाज की भूमिका: सरकार द्वारा जैव विविधता संरक्षण के लिए कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं। जैविक खेती मिशन, बीज संरक्षण कार्यक्रम और राष्ट्रीय जीन बैंक इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। लेकिन केवल सरकारी प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। समाज, किसान, वैज्ञानिक और विद्यार्थी सभी को मिलकर कार्य करना होगा। शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से लोगों को जैव विविधता के महत्व से परिचित कराना आवश्यक है।

निष्कर्ष: अंततः कहा जा सकता है कि कृषि जैव विविधता मानव जीवन, पर्यावरण और कृषि की स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह खाद्य सुरक्षा, पोषण, पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास का आधार है। वर्तमान समय में बढ़ते प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन के कारण इसका संरक्षण और भी आवश्यक हो गया है। यदि हम आज कृषि जैव विविधता की रक्षा करेंगे, तभी आने वाली पीढ़ियों को सुरक्षित भोजन और स्वच्छ पर्यावरण मिल सकेगा। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह प्रकृति और कृषि के संरक्षण में अपना योगदान दे। सामूहिक प्रयासों से ही हम एक स्वस्थ, समृद्ध और संतुलित भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार

खाद बीज एवं कृषि कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

फसल विविधीकरणः जलवायु परिवर्तन के दौर में सुरक्षित खेती का आधार

आलोक कुमार (जिला कृषि पदाधिकारी)
कालीकान्त चौधरी (उप परियोजना निदेशक आत्मा)
रौशन कुमार उप परियोजना निदेशक (आत्मा)
प्रमोद कुमार तिवारी प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी (आत्मा)
वैभव पाण्डेय प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी सिवान सदर
मनीष पाण्डेय प्रखण्ड तकनीकी प्रबंधक,जिला कृषि कार्यालय (आत्मा) सिवान, कृषि विभाग, (बिहार)

फसल विविधीकरण न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है बल्कि यह मिट्टी की सेहत, जल प्रबंधन और पोषण सुरक्षा को भी बेहतर बनाता है। यह एक टिकाऊ कृषि प्रणाली है जो भविष्य की चुनौतियों से निपटने में सक्षम है। फसल विविधीकरण एक प्रमुख शष्य क्रिया जिसके द्वारा सफल फसल उत्पादन कर फसल नुकसान को कम किया जा सकता है। साथ ही लागत को भी कम कर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। पिछले लगभग 6-7 दशकों में भारतीय कृषि उत्पादन में अमूल-चूल परिवर्तन रहा है। मुख्य उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना था। हरित क्रांति और इंद्रधनुष क्रांति के माध्यम से भारत न केवल खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाएं बल्कि एक निर्यातक देश भी बन गया। पिछले 60 वर्षों में भारत का खाद्य उत्पादन 4.5 गुना बढ़ा है। हालांकि, अब जलवायु परिवर्तनए मिट्टी की गिरती गुणवत्ता और बाजार की अस्थिरता के कारण कृषि रणनीतियों में बदलाव की आवश्यकता है। इसका सबसे प्रभावी तरीका फसल विविधीकरण है। फसल विविधीकरण को देखने के अलग-अलग दृष्टिकोण हो सकते हैं। इसे केवल 'आय बढ़ाने' तक सीमित न रखकर, हम इसे निम्नलिखित नजरियों से भी देख सकते हैं-

पर्यावरण और पारिस्थितिकी दृष्टिकोण: इस नजरिए से विविधीकरण केवल खेती नहीं, बल्कि प्रकृति का संरक्षण है।

जल संरक्षण: धान जैसी फसलें जिसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है के बजाय दलहन या मोटे अनाज उगाने से गिरते भू-जल स्तर को रोका जा सकता है।

जैव-विविधता: एक ही प्रकार की फसल लगातार उगाने से कीटों का प्रकोप बढ़ता है। विविधीकरण से प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र संतुलित रहता है।

मिट्टी का पुनर्जीवन: दालें , जैसे मूंग, अरहर, हवा से नाइट्रोजन लेकर मिट्टी के नाइट्रोजन चक्र में वापस डालती हैं जिससे मिट्टी की उर्वरता प्राकृतिक रूप से बढ़ती है।

पोषण और स्वास्थ्य दृष्टिकोण : यह दृष्टिकोण खेती को 'थाली के पोषण' से जोड़ता है।

पोषण सुरक्षा: केवल चावल-गेहूँ खाने से शरीर को सभी पोषक तत्व नहीं मिलते। विविधीकरण से किसानों के पास फल, सब्जियां और दालें उपलब्ध होती है जो कुपोषण के खिलाफ एक बड़ा हथियार हैं।

रसायन-मुक्त खेती: विविधीकरण से कीटों का हमला कम होता है जिससे कीटनाशकों का प्रयोग कम होता है और हमें सुरक्षित भोजन मिलता है।

वैश्विक बाजार आधारित दृष्टिकोण : यह दृष्टिकोण खेती को 'व्यापार और निर्यात' के रूप में देखता है।

निर्यात के अवसर: दुनिया भर में आर्गेनिक उत्पादों, मोटे अनाज और औषधीय पौधों की मांग बढ़ रही है। विविधीकरण

भारतीय किसान को वैश्विक बाजार से जोड़ता है।

मूल्य संवर्धन: फसलों को बदलकर किसान सीधे 'प्रोसेसिंग' जैसे टमाटर से सॉस या मेंथा से तेल) की ओर बढ़ सकते हैए जिससे लाभ कई गुना बढ़ जाता है।

जोखिम प्रबंधन दृष्टिकोण

इसे एक 'बीमा' की तरह देखा जा सकता है।

जलवायु लचीलापन: यदि अचानक ओलावृष्टि या सूखा पड़ जाएए तो संभव है कि एक फसल बर्बाद हो जाए लेकिन दूसरी (जैसे बाजरा या कोई विशेष फल) बची रहे।

आर्थिक सुरक्षा: यह किसान को श्मोनोकल्चरश् ;एक ही फसल की खेतीद्ध के जुए से बाहर निकालता है।

सामाजिक दृष्टिकोण

ग्रामीण पलायन पर रोक: जब किसान साल भर अलग-अलग फसलें (सब्जियां, फल, डेयरी) उगाता है तो उसे साल भर रोजगार मिलता है। इससे गांवों से शहरों की ओर होने वाला पलायन कम हो सकता है।

महिला सशक्तिकरण: सब्जी और मशरूम जैसी छोटी लेकिन लाभदायक फसलों के प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती है जिससे वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती हैं।

फसल विविधीकरण क्या है: इसका अर्थ है पारंपरिक एक या दो फसलों (जैसे सिर्फ गेहूँ-धान) की जगह विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन करना जैसे-* अनाज, दलहन (दालें), तिलहन। * फल, सब्जियां, मसालें। * औषधीय पौधे और चारा फसलें।

फसल विविधीकरण के सिद्धांत * ज्यादा पानी चाहने वाली फसल के बाद कम पानी चाहने वाली फसल का चयन किया जाता है। * ज्यादा उर्वरक ग्रहण करने वाली फसल के बाद कम उर्वरक ग्रहण करने वाली फसल का चुनाव करना। * स्थानीय बाजार से अंर्तराष्ट्रीय बाजार तक उत्पाद को पहुंचाना। * कम भाव पर बिकने वाली फसल से ज्यादा भाव पर बिकने वाली फसल का चयन करना। * एकीकृत फसल प्रणाली अपनाना।

इसके मुख्य लाभ-

1. जोखिम में कमी: केवल एक फसल पर निर्भरता कम होने से कीटों या खराब मौसम से होने वाले नुकसान का खतरा कम होता है।

2. आर्थिक स्थिरता: अलग-अलग समय पर अलग.अलग फसलों से आय के स्रोत बने रहते हैं।

3. मृदा स्वास्थ्य: फसल चक्र बदलने से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और रासायनिक उर्वरकों की जरूरत कम होती है।

रोजगार: विविध खेती में श्रमिकों की आवश्यकता अधिक होती हैए जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ता है।

विविधीकरण के लिए प्रमुख फसलें

श्रेणी	उदाहरण
अनाज	गेहूं, धान, मक्का, जौ, बाजरा, ज्वार
दलहन	चना, मटर, मसूर, अरहर, मूंग, उड़द, राजमा
सब्जियां	टमाटर, आलू, प्याज, भिंडी, बैंगन, गोभी, मिर्च
बागवानी फसलें	आम, अमरूद, केला, नींबू, पपीता, तरबूज
औषधीयध्विशेष	तुलसी, अश्वगंधा, सर्पगंधा, लेमनग्रास, मेंथा ,हल्दी, अदरक, सौंफ एवं धनिया आदि।
नकदी फसलें	गन्ना, कपास, तंबाकू, चाय, कॉफी
चारे वाली फसलें	बरसीम, रिजका, जई, ज्वार/चरी, मक्का, मकचरी और लोबिया आदि।

सीवान जिले (बिहार) के संदर्भ में देखें तो यहां की भौगोलिक स्थिति और संसाधनों के आधार पर फसल विविधीकरण की अपार संभावनाएं हैं।

सीवान जिले के लिए फसल विविधीकरण के प्रमुख अवसर एवं सुझाव:

सीवान जिले में फसल विविधीकरण -सीवान की मिट्टी (जलोढ़ मिट्टी) और जलवायु विभिन्न प्रकार की उच्च-मूल्य वाली फसलों हेतु बहुत उपयुक्त है। यहाँ के किसान निम्नलिखित क्षेत्रों में अपनी आय बढ़ा सकते हैं-

1. बागवानी का विस्तार

सीवान में फलों के बाग लगाकर किसान पारंपरिक अनाज के मुकाबले कई गुना अधिक मुनाफा कमा सकते हैं-

केला और पपीता: सीवान की जलवायु केले और पपीते की खेती के लिए बहुत अनुकूल है। ये कम समय में तैयार होने वाली और नकद आय देने वाली फसलें हैं।

आम, लीची एवं अमरू: यहाँ के पुराने बागों का जीर्णोद्धार करके और नई उन्नत किस्मों (जैसे आम्रपाली या इलाहाबादी सफेदा) को लगाकर आय बढ़ाई जा सकती है।

2. सब्जी उत्पादन : सीवान के शहरी क्षेत्रों और आस.पास के बाजारों (जैसे छपरा, गोपालगंज और पटना) की मांग को देखते हुए सब्जियों की खेती एक बड़ा अवसर है-

बेमौसमी सब्जियां: (पॉलीहाउस) या (शेड नेट) तकनीक का उपयोग करके बेमौसमी टमाटर, शिमला मिर्च और खीरे की खेती की जा सकती है।

मशरूम उत्पादन: भूमिहीन या छोटे किसानों के लिए मशरूम उत्पादन (विशेषकर बटन और ओयस्टर मशरूम) आय का एक उत्कृष्ट अतिरिक्त स्रोत है।

3. औषधीय और सुगंधित पौधे

परंपरागत खेती के जोखिम से बचने के लिए किसान इन फसलों को अपना सकते हैं-

मेंथा और लेमनग्रास: सीवान के कई हिस्सों में मेंथा की खेती और इसके तेल निकालने की इकाइयाँ लगाई जा सकती हैं।

तुलसी और अश्वगंधा: इनकी मांग आयुर्वेद और दवा कंपनियों में बहुत अधिक है।

नकदी फसलें

गन्ना: सीवान ऐतिहासिक रूप से गन्ना उत्पादन के लिए जाना जाता रहा है। चीनी मिलों के साथ बेहतर समन्वय और आधुनिक किस्मों के उपयोग से इसकी उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

मक्का: रबी और खरीफ दोनों मौसमों में मक्के की उन्नत खेती और 'बेबी कॉर्न' का उत्पादन काफी लाभदायक हो सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

डेयरी गायों के शारीरिक अवस्था की स्कोरिंग

डॉ. अंजली कुमारी
डॉ. प्रमोद प्रभाकर, डॉ. गरिमा सिंह
बिहार कृषि विश्वविद्यालय
डॉ. रंजना सिन्हा बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

शारीरिक अवस्था के स्कोरिंग का महत्व: शारीरिक अवस्था का स्कोर ऊर्जा की स्थिति का संकेत होता है। यह प्रणाली बछड़ी तथा गायों पर इस्तेमाल की जाती है, हालांकि मुख्य रूप से इस प्रणाली का इस्तेमाल डेयरी गायों पर होता है। इस प्रणाली में वसा के परत का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के दौरान हम शारीरिक ढांचे पर जमा वसा की मात्रा का निरीक्षण करते है। इस प्रकार के मूल्यांकन की कई प्रणाली विकसित की गई है, जिनमें 1.0 से 5.0 के बीच की स्कोरिंग वाली प्रणाली सबसे अधिक इस्तेमाल की जाती है। गायों की शारीरिक अवस्था में दूध देने की अवधि के दौरान एक क्रमिक परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन का असर शरीर में जमा वसा की परत पर होता है। वसा की परत मुख्य रूप से शरीर में जमा ऊर्जा को प्रदर्शित करती है। अतरू शारीरिक अवस्था की स्कोरिंग अधिकतम उत्पादन तथा ब्यांत के समय गायों की अवस्था के मूल्यांकन के लिये एक महत्वपूर्ण साधन साबित हो सकता है।

परिचय: इस स्कोरिंग का उद्देश्य मुख्यतः यह दर्शाना है कि कैसे सरल तकनीक उत्तम पशुपालन और प्रबंधन हेतु काफी योगदान कर सकते हैं। यह तकनीक इस बात को सुनिश्चित करने में मदद करती है कि गाय उत्पादन के वार्षिक चक्र के प्रत्येक चरण में सही हालत में है और अगर नहीं तो उचित आहार में परिवर्तन करके हम इन कमियों को दूर कर सकते हैं। डेयरी गायों हेतु ब्यांत का समय और दूध देने का प्रारंभिक दौर महत्वपूर्ण अवधि मानी जाती है।ब्यांत के समय की कठिनाइयों और नुकसान से बचने हेतु ब्यांत के दौरान शरीर की सही स्थिति को प्राप्त करना आवश्यक होता है जबकि दूध देने के प्रारंभिक दौर में यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि कैसे उच्च दुग्ध उत्पादन वाली गायों में अतिरिक्त पोषण की मांग को पूरा करके वजन घटने से रोका जा सके।

यह तकनीक तीन प्रमुख कारकों को एक साथ जोड़ती है

* उचित पशु कल्याण * उचित पशुपालन * उचित प्रदर्शन

शारीरिक अवस्था तथा उत्पादन के महत्वपूर्ण चरण

ब्यांत के पूर्व: यह अवस्था इस तरह की होनी चाहिए जो गायों को मध्यम स्तर की पुरकता दे सके ताकि गाय दूध देने के लिए तैयार हो सके।

ब्यांत के दौरान: ज्यादा वसा वाली अवस्था में गायों का बियाना नहीं होना चाहिए। ज्यादा मोटी गायों में फैटी लीवर बीमारी या किटोशीस हो सकता है और ये दुग्धज्वर, थनैला, लंगड़ापन और बांझपन से शीघ्र ग्रस्त हो जाती है।

दूध देने का प्रारंभिक दौर: इस अवस्था में डेयरी गायों में काफी पोषण की कमी हो जाती है अतरू इस अवस्था में अत्यधिक वजन घटने से रोकने के लिये पर्याप्त आहार आवश्यक है।

गर्भाधान के दौरान: इस अवस्था में डेयरी गायों के शरीर में ऊर्जा की कमी में नहीं होना चाहिए क्योंकी ऊर्जा की कमी प्रजनन स्तर को कम करती है।

शारीरिक स्थिति की स्कोरिंग कैसे करें: शरीर की ऊर्जा के भंडार के आकलन के लिए लगातार स्कोरिंग आवश्यक है लेकिन शरीर के एक समग्र दृश्य का निरीक्षण भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यह तकनीक पूंछ में

वसा कवर की मोटाई, कमर में जमा वसा और हड्डी के किनारे पे जमा वसा का मूल्यांकन करती है। इसस्कोरिंग को करने के लिए सबसे पहले हमे गाय के पीछे सीधे खड़े हो जाना चाहिए। यह तब किया जाता है जब गाय बंधी हुई हो। कुछ गाये इतनी सीधी होती है की हम इनको बिना बांधे भी इनकी स्कोरिंग कर सकते है, लेकिन ज्यादातर गायों की स्कोरिंग करने के लिए इनको हेड-गेट से बांधना होता है। इसके लिए प्रायः दाई तरफ से निकट जाया जाता है। स्कोरिंग अंतिम पसली और उसके रीढ़ की हड्डी के शूल से शुरू करना चाहिए। अंतिम पसली और हुक के बिच का क्षेत्र स्कोरिंग के लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। सबसे पहले हम इस क्षेत्र में जमा वसा का मूल्यांकन करते है। उसके बाद हमे हुक, पिन और दुम वाले भाग पर ध्यान देना चाहिए। किसी भी गाय के स्कोरिंग के पहले हमे अलग अलग स्कोर का अर्थ समझ लेना चाहिए।

विभिन्न स्कोरिंग (बी.सी.एस.) और इनके मूल्य : बी.सी.एस.-1 इस स्कोर वाले पशु पूरी तरह से दुबले दिखाई देते है। उनका पूरा शारीरिक ढांचा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पूछ के शीर्ष और छाती पर भी कोई वसा जमा नहीं होती है। सारी पसलियां और रीढ़ की हड्डी के शूल स्पष्ट रूप से पता चलते है। हम दो पसलियों के बिच अपनी ऊँगली रख सकते है, इतनी जगह होती है। छोटी वाली पसली बाहर निकली हुई दिखाई देती है और छूने पे बहुत नुकीली लगती है। हुक के ऊपर का पिन भी बहुत नुकीला और बाहर निकला हुआ दिखाई देता है। इस तरह की गाये शरीर पर वसा और मांस की कमी के कारण ज्यादा दिन जिन्दा भी नहीं रह पाती है। इनमे कुपोषण और बीमार होने का खतरा भी सबसे ज्यादा होता है। ऐसी गायों को ब्यांत के दौरान काफी कठिनाई होती है क्योकि इनमे नहीं तो ऊर्जा जमा होती है, नहीं मांस होता है। ऐसी गायों में प्रसव के दौरान भी काफी जटिलता आती है। ऐसी गाये ब्याने के उपरांत काफी काम दूध देती है तथा गर्म में भी ब्यांत के काफी दिनों के बाद आती है वो भी तब जब भार बढ़ाने के लिए काफी पोषणन ले लें। ऐसी गाये चारा ज्यादा खाती है और अपने शरीर को ठीक करने की कोशिश करती है। इन गायों के निम्न तापमान बर्दास्त करने की क्षमता भी अन्य गायों से कम होती है। क्योकि इनमे वसा और जमा ऊर्जा की कमी होती है। बी.सी.एस.-2 ऐसी गाये दुबली तो होती है लेकिन बी.सी.एस.-1 वाली गायों के जितना बीमारी और कुपोषण का खतरा इनमे नहीं होता है इन गायों में गर्भाधान दर कम होता है और ब्यांत के दौरान कठिनाई भी होती है। अतः यह जरुरी है की समय रहते सही आहार से इनकी अवस्था में सुधार कर लिया जाये। इन गायों में मांस तो होता है लेकिन पर्याप्त नहीं होता। इनके शारीर का ढांचा (पसली, मेरुदण्ड, पिन की हड्डी) बाहर निकला हुआ होता है। ऐसे पशुओ में पूछ के चारो तरफ हिप पे थोड़ी कोशिकाएं होती है। इन गायों में हर एक पसली महसूस की जा सकती है पर ये नुकीली प्रतीत नहीं होती है। इस तरह की गायों की दो पसलियों के बिच ऊँगली रखने जितना जगह नहीं होता है। बी.सी.एस.-3 इस स्कोर वाली गाये ब्यांत के समय की आदर्श अवस्था को दर्शाती है। इन गायों में पसली बहुत हलकी प्रतीत होती है। हुक और पिन दिखते तो है, लेकिन निकले हुए नहीं दिखते। इनमे मांस की कोशिकाएं भी काफी ज्यादा होती है तथा कंधो के पीछे और छाती पर काफी वसा जमा होती है। इनकी रीड की हड्डी भी थोड़ी स्पष्ट प्रतीत होती है और ऐसा लगता है की वसा ऊपर फैलना शुरू कर रही है। इन गायों में हम अगर हड्डीओं को महसूस करना चाहे तो दबाव लगाना पड़ेगा। इन गायों में दुबले होने का खतरा तो बना रहता है। ऐसी गाये बिना कठिनाई के ब्याती भी है और पर्याप्त मात्रा में दूध भी देती है। ऐसी गायों की निम्न तापमान को सहन करने की क्षमता भी ज्यादा होती है। जो यह दर्शाता है की ऐसी गाये निम्न तापमान पर भी अच्छा प्रदर्शन करती है। बी.सी.एस.-4 ऐसी गायों के शारीरिक ढांचे को पहचानना मुश्किल होता है क्योंकि इनमे कंधे के पीछे, दुम पर, छाती पर तथा कंधे के ऊपर काफी वसा जमा होती है। इनके शारीर का ऊपरी हिस्सा काफी सपाट दिखाई देता है। इनमे मेरुदण्ड भी महसूस नहीं कर सकते। इनमे पसलिओ और जांघ के ऊपर वसा की परत चढ़ना शुरू हो जाती है। इनमे पसली बहुत दबाव के बाद भी महसूस नहीं होती। इस अवस्था में गायों के शारीर पर मध्यम मात्रा में वसा जमा हो चुकी होती है। कुछ गायों में इस स्कोर की वजह से ब्यांत तथा दूध देने के दौरान कठिनाई भी आती है। क्योकि ऐसी गायों में गर्भाशय तथा प्रशव नली पर वसा की परत जमा हो जाती है। जिस से प्रशव के दौरान इन अंगो में खींचाव की क्षमता नहीं होती। साथ ही साथ वसा थन में भी जमा होती जाती है जो की दूध देने की क्षमता को प्रभावित करता है। बी.सी.एस.-5 इस अवस्था में गाय काफी मोटी हो जाती है। इसमें गाय पूरी तरह से वसा के कवर से ढकी दिखाई देती है। इस अवस्था में छाती के ऊपर काफी वसा जमा हो जाती है। तथा हिप और दुम भी पूरी तरह से वसा से ढक जाता है। इसमें किसी भी तरीके से पसलियों को महसूस नहीं किया जा सकता। इस अवस्था में छोटी पसली भी पूरी तरह से वसा से ढक जाती है। बहुत ज्यादा वसा जमा हो जाने के कारण ऐसी गायों को चलने में भी कठिनाई होती है। ऐसी गायों में कम ऊर्जा वाला आहार दे कर शारीरिक अवस्था को सही करने की आवश्यकता होती है।

गायों के विभिन्न अवस्था में सही बी.सी.एस में लाने का लक्ष्य

स्कोर का चरण	आदर्श शारीरिक स्थिति स्कोर की सीमाए
सुखाते समय	3.5-4.0
प्रशव (पुरानी गायों में)	3.5-4.0
एक महीना प्रसवोत्तर	2.5-3.0
दूध देने का मध्यम दौर	3.0
दूध देने का अंतिम दौर	3.25-3.75
प्रशव (पहला ब्यांत)	3.5

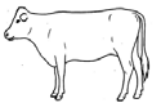

सारांश: शारीरिक स्थिति की स्कोरिंग दुग्ध उत्पादकों के लिए एक उपयोगी प्रबंधन तकनीक हो सकती है। यह तकनीक न सिर्फ अच्छे प्रबंधन तथा अच्छे पोषण के लिए भी बहुत उपयोगी है। इस तकनीक के उपयोग से हम सही समय पर आहार में जरुरी परिवर्तन करके उत्पादन क्षमता को भी काफी हद तक बढ़ा सकते है। यह तकनीक न सिर्फ उत्पादन क्षमता का मानक है यद्दिप ये प्रजनन क्षमता तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रबंधन में काफी लाभकारी सिद्धः हो सकती है। कम अथवा अत्यधिक ऊर्जा वाली गाये कभी भी अच्छा प्रदशन नहीं कर सकती। अतः वर्तमान पशु प्रबंधन के लिए यह आवश्यक है इस तकनीक की जानकारी किसानों को हो जिससे वो बिना किसी लागत के अपने पशुओं की उचित अवस्था तथा उस से जुडी कठिनाईयों के लिए पहले से तैयार हो सके और सही समय पे उचित प्रबंधन तकनीक को अपना सके।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

औषधीय पौधों का लघु-स्तरीय प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

डॉ. दिनेश राजक (सह-प्राध्यापक)
डॉ. विशाल कुमार सह-प्राध्यापक एवं (प्राध्यापक)
डॉ. देवेन्द्र कुमार प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी, कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, डॉ. आरपीसीएयू, पूसा (बिहार)

1. **परिचय:** औषधीय पौधे सदियों से मानव स्वास्थ्य देखभाल प्रणालियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं और आयुर्वेद, यूनानी तथा सिद्ध जैसी पारंपरिक पद्धतियों की रीढ़ बने हुए हैं। हाल के वर्षों में, उनके औषधीय लाभ और कम दुष्प्रभावों के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण हर्बल और प्राकृतिक उत्पादों की वैश्विक मांग में काफी वृद्धि हुई है। हालांकि, अधिकांश औषधीय पौधे कच्चे रूप में बेचे जाते हैं, जिससे किसानों और संग्राहकों को कम आर्थिक लाभ मिलता है। कच्चे पदार्थ जल्दी खराब होने वाले होते हैं और अनुचित संभाल, भंडारण और परिवहन के कारण उनकी गुणवत्ता भी घट जाती है।

लघु-स्तरीय प्रसंस्करण का अर्थ है साधारण और कम लागत वाली तकनीकों द्वारा कच्चे औषधीय पौधों को अर्ध-प्रसंस्कृत या तैयार उत्पादों में बदलना। इसमें सफाई, सुखाना, पीसना, निष्कर्षण और पैकेजिंग शामिल हैं। मूल्य संवर्धन (Value Addition) के माध्यम से कच्ची जड़ी-बूटियों को पाउडर, अर्क, आवश्यक तेल, हर्बल चाय और अन्य उत्पादों में बदलकर उनकी उपयोगिता, स्थिरता और बाज़ार मूल्य बढ़ाया जाता है।

यह प्रक्रियाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये:

* कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करने में सहायक होती हैं * उत्पाद की गुणवत्ता एवं सुरक्षा को बेहतर बनाती हैं * किसानों की आय में वृद्धि करती हैं * औषधीय पौधों के सतत एवं संतुलित उपयोग को प्रोत्साहित करती हैं

लघु-स्तरीय प्रसंस्करण का महत्व: लघु-स्तरीय प्रसंस्करण औषधीय पौधों के आर्थिक, सामाजिक और व्यावहारिक मूल्य को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, विशेषकर किसानों, स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और ग्रामीण उद्यमियों हेतु। इसके प्रमुख महत्व निम्नलिखित हैं:

आय में वृद्धि : कच्चे उत्पाद की तुलना में प्रसंस्कृत उत्पाद अधिक मूल्य पर बिकते हैं, जिससे किसानों की आय बढ़ती है।

कटाई के बाद नुकसान में कमी: प्रसंस्करण (जैसे सुखाना) से खराब होने की संभावना कम होती है और नुकसान घटता है।

भंडारण अवधि में वृद्धि: प्रसंस्कृत उत्पाद लंबे समय तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं जिससे उनकी उपलब्धता वर्षभर बनी रहती है।

गुणवत्ता और सुरक्षा में सुधार: सफाई और उचित प्रसंस्करण से अशुद्धियाँ हटती हैं और औषधीय गुण सुरक्षित रहते हैं।

रोजगार के अवसर : ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसंस्करण से नए रोजगार पैदा होते हैं, विशेषकर महिलाओं के लिए।

ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा: कम लागत और सरल तकनीकों के कारण छोटे व्यवसाय स्थापित करना आसान होता है।

मूल्य संवर्धन: कच्ची जड़ी-बूटियों को पाउडर, अर्क, तेल आदि में बदलकर उनका बाजार मूल्य बढ़ाया जाता है।

पारंपरिक चिकित्सा को समर्थन: गुणवत्तापूर्ण औषधीय कच्चा माल उपलब्ध होता है जिससे आयुर्वेद जैसी प्रणालियाँ मजबूत होती हैं।

बाजार विस्तार : प्रसंस्कृत उत्पादों को आसानी से पैक, परिवहन और विभिन्न बाजारों में बेचा जा सकता है।

सतत उपयोग को प्रोत्साहन : संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है और अपव्यय कम होता है।

औषधीय पौधों के प्रसंस्करण के चरण

संग्रह एवं कटाई: सही समय पर कटाई से औषधीय गुणवत्ता और प्रभावशीलता बनी रहती है। बहुत जल्दी या बहुत देर से कटाई करने पर सक्रिय तत्व कम हो सकते हैं।

सफाई एवं छंटाई: सफाई एवं छंटाई औषधीय पौधों के प्रसंस्करण की प्रारंभिक और अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रियाएँ हैं, जो अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता, शुद्धता और सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं। कटाई के बाद पौध सामग्री में अक्सर मिट्टी, धूल, कीट, पत्थर और अन्य अवांछित पदार्थ मौजूद होते हैं, जो औषधीय गुणों को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए इन अशुद्धियों को हटाना आवश्यक होता है।

सफाई (Cleaning): सफाई के अंतर्गत पौध सामग्री से सभी प्रकार की बाहरी अशुद्धियों को हटाया जाता है। इसके लिए निम्न विधियाँ अपनाई जाती हैं: * पानी से धोना * ब्रशिंग करना * हाथ से चुनकर अशुद्धियाँ हटाना

छंटाई (Sorting): छंटाई में अच्छे और उपयोगी भागों को खराब, रोगग्रस्त या निम्न गुणवत्ता वाले भागों से अलग किया जाता है। साथ ही आकार, रंग और गुणवत्ता के आधार पर ग्रेडिंग भी की जाती है।

महत्व: * अशुद्धियों और सूक्ष्मजीवों से बचाव * औषधीय सक्रिय तत्वों की सुरक्षा * उत्पाद की गुणवत्ता और आकर्षण में सुधार * बाजार में स्वीकृति बढ़ती है

सुखाना: सुखाना औषधीय पौधों के प्रसंस्करण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है, क्योंकि यह अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता, शेल्फ लाइफ और औषधीय गुणों को सीधे प्रभावित करता है। ताजे पौधों में नमी की मात्रा अधिक होती है, जिससे वे जल्दी खराब हो सकते हैं तथा उनमें सूक्ष्मजीवों का विकास हो सकता है। सुखाने का मुख्य उद्देश्य नमी को सुरक्षित स्तर तक कम करना है, ताकि पौध सामग्री लंबे समय तक सुरक्षित रह सके और उसके सक्रिय तत्व संरक्षित रहें।

औषधीय पौधों को सुखाने की विधियाँ निम्न प्रकार है:

छाया में सुखाना: संवेदनशील औषधीय तत्वों की रक्षा हेतु उपयुक्त

धूप में सुखाना : सरल और कम लागत वाली विधि

यांत्रिक सुखाना: नियंत्रित तापमान पर तेज और प्रभावी सुखाने की प्रक्रिया

आकार में कमी (Size Reduction): आकार में कमी औषधीय पौधों के प्रसंस्करण का एक महत्वपूर्ण चरण है, जिसमें पौध सामग्री को छोटे-छोटे टुकड़ों या पाउडर में परिवर्तित किया जाता है। यह प्रक्रिया आगे की क्रियाओं को अधिक प्रभावी और सुविधाजनक बनाती है। जब पौध सामग्री का आकार छोटा किया जाता है, तो उसका सतह क्षेत्र बढ़ जाता है, जिससे सुखाने, निष्कर्षण और मिश्रण की प्रक्रिया अधिक कुशल हो जाती है। इसके अलावा, यह पैकेजिंग और भंडारण को भी आसान बनाता है।

निष्कर्षण (Extraction): निष्कर्षण औषधीय पौधों के प्रसंस्करण का एक महत्वपूर्ण चरण है, जिसमें पौध सामग्री से सक्रिय औषधीय तत्वों (फाइटोकेमिकल्स) को उपयुक्त माध्यम (solvent) की सहायता से अलग किया जाता है। यही सक्रिय घटक पौधों के चिकित्सीय गुणों हेतु जिम्मेदार होते हैं। निष्कर्षण का मुख्य उद्देश्य इन सक्रिय तत्वों को सघन (concentrated) और उपयोगी रूप में प्राप्त करना है, ताकि उन्हें विभिन्न हर्बल उत्पादों में आसानी से उपयोग किया जा सके।

पैकेजिंग एवं भंडारण: पैकेजिंग एवं भंडारण औषधीय पौधों के प्रसंस्करण के अंतिम और अत्यंत महत्वपूर्ण चरण हैं, जो तैयार उत्पाद की गुणवत्ता, सुरक्षा और शेल्फ लाइफ को बनाए रखते हैं। प्रसंस्करण के बाद औषधीय उत्पाद नमी, प्रकाश, वायु और तापमान जैसे पर्यावरणीय कारकों के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं। यदि सही तरीके से पैकेजिंग और भंडारण न किया जाए, तो उत्पाद की गुणवत्ता और औषधीय गुण प्रभावित हो सकते हैं।

पैकेजिंग (Packaging)- पैकेजिंग का उद्देश्य उत्पाद को बाहरी प्रभावों और संदूषण से बचाना है। इसके लिए उपयुक्त सामग्री का उपयोग किया जाता है, जैसे:

एयरटाइट (हवा बंद) कंटेनर * कांच की बोतलें * प्लास्टिक या लैमिनेटेड पाउच * कागज के बैग (अल्पकालिक भंडारण हेतु)

भंडारण (Storage): उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए उचित भंडारण आवश्यक है।

प्रमुख सावधानियाँ: * ठंडी और सूखी जगह पर रखना * सीधे सूर्य प्रकाश से बचाना * नमी और कीटों से सुरक्षा * उचित लेबलिंग (उत्पाद का नाम, तिथि, बैच नंबर)

मूल्य संवर्धन तकनीकें मूल्य संवर्धन तकनीकें औषधीय पौधों को अधिक उपयोगी, सुरक्षित और बाजार योग्य उत्पादों में परिवर्तित करने की प्रक्रियाएँ हैं। इन तकनीकों के माध्यम से कच्चे पौधों का आर्थिक मूल्य बढ़ाया जाता है और उनकी मांग में वृद्धि होती है।

मूल्य संवर्धन को मुख्यत: तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है: * प्राथमिक मूल्य संवर्धन (Primary Value Addition)- यह प्रारंभिक स्तर की सरल प्रक्रियाएँ होती हैं, जिनका उद्देश्य कच्चे माल की गुणवत्ता में सुधार करना है।

* सफाई (Cleaning) * सुखाना (Drying) * ग्रेडिंग (Grading) * पाउडर बनाना (Powdering)

ii. द्वितीयक मूल्य संवर्धन (Secondary Value Addition)

इस स्तर पर कच्चे माल को अर्ध-तैयार या तैयार उत्पादों में बदला जाता है।

* अर्क (Extracts – तरल या शुष्क) * आवश्यक तेल (Essential Oils) * हर्बल चाय (Herbal Tea) * कैप्सूल एवं टैबलेट

उन्नत मूल्य संवर्धन (Advanced Value Addition)

इसमें उच्च तकनीक और मानकीकरण की आवश्यकता होती है, जिससे उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद तैयार किए जाते हैं।

* मानकीकृत हर्बल फॉर्मुलेशन * न्यूट्रास्यूटिकल्स * कॉस्मेटिक उत्पाद

महत्व: * उत्पाद का बाजार मूल्य बढ़ता है * शेल्फ लाइफ और स्थिरता में सुधार होता है * उपयोग में सुविधा और आकर्षण बढ़ता है * राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा बढ़ती है। इस प्रकार, मूल्य संवर्धन तकनीकें औषधीय पौधों को अधिक लाभकारी और व्यावसायिक रूप से सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

मूल्य संवर्धित उत्पादों के उदाहरण: एक ही औषधीय पौधे से विभिन्न प्रकार के मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, जिससे उसकी उपयोगिता और बाजार मूल्य दोनों बढ़ जाते हैं। प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं:

पाउडर (Powder): जैसे अश्वगंधा, तुलसी आदि का पाउडर, जिसे सीधे सेवन या मिश्रण में उपयोग किया जाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तराखण्ड

तराई क्षेत्र के थारू समुदाय का सामाजिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य: महिलाओं की स्थिति और विकास की चुनौतियां

डॉ. अर्पिता शर्मा कांडपाल (सहायक प्राध्यापिका)
कृषि संचार विभाग, कृषि महाविद्यालय, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उधम सिंह नगर, (उत्तराखंड)

भारत विविध संस्कृतियों, परंपराओं और जनजातीय समुदायों वाला देश है, जहाँ अनेक आदिवासी समूह अपनी विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान के साथ निवास करते हैं। ये जनजातीय समुदाय प्राकृतिक संसाधनों, पारंपरिक ज्ञान और सामुदायिक जीवन शैली से गहराई से जुड़े हुए हैं। बावजूद इसके, देश के अधिकांश आदिवासी समुदाय आज भी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से जूझ रहे हैं। विकास की मुख्यधारा से दूरी, सीमित संसाधन, अशिक्षा, गरीबी तथा आधुनिक सुविधाओं तक अपर्याप्त पहुँच ने इनके समग्र विकास को प्रभावित किया है। इन परिस्थितियों का सबसे अधिक प्रभाव जनजातीय महिलाओं पर पड़ता है, जो परिवार एवं समाज की महत्वपूर्ण इकाई होने के बावजूद अनेक प्रकार की असमानताओं और चुनौतियों का सामना करती हैं।

उत्तराखंड के तराई क्षेत्र में निवास करने वाला थारू समुदाय राज्य की प्रमुख जनजातियों में से एक है। विशेष रूप से ऊधम सिंह नगर जनपद की खटीमा एवं सितारगंज तहसीलों में इस समुदाय की बड़ी आबादी निवास करती है। थारू समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक संरचना, धार्मिक मान्यताओं तथा पारंपरिक जीवन शैली के लिए जाना जाता है। कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन एवं वनोपज आधारित गतिविधियाँ इनके प्रमुख आजीविका स्रोत रहे हैं। थारू महिलाओं की भूमिका परिवार, कृषि कार्यों, घरेलू प्रबंधन तथा पारंपरिक सामाजिक संरचना में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके बावजूद वे सामाजिक उपेक्षा, सीमित शैक्षिक अवसर, आर्थिक निर्भरता तथा निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में कम भागीदारी जैसी समस्याओं से प्रभावित हैं। वर्तमान समय में भूमि से विस्थापन, मौसमी पलायन, बेरोजगारी, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच, कौशल विकास की कमी तथा असंगठित श्रम बाजार में शोषण जैसी परिस्थितियाँ थारू महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और अधिक जटिल बना रही हैं। साथ ही, आधुनिक शिक्षा एवं संचार सुविधाओं की कमी के कारण समुदाय की नई पीढ़ी विकास की मुख्यधारा से पूर्ण रूप से जुड़ नहीं पा रही है।

भारत में जनजातीय विकास की आवश्यकता: भारत विविध जनजातीय समुदायों वाला देश है, जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं वाले आदिवासी समूह निवास करते हैं। ये समुदाय प्राकृतिक संसाधनों और पारंपरिक जीवन शैली से गहराई से जुड़े हुए हैं, किन्तु सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक दृष्टि से आज भी अपेक्षाकृत पिछड़े हुए हैं। लंबे समय से विकास की मुख्यधारा से दूर रहने के कारण जनजातीय समुदाय अनेक मूलभूत समस्याओं का सामना कर रहे हैं। गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव तथा आधुनिक तकनीक एवं संचार साधनों तक सीमित पहुँच इनके समग्र विकास में प्रमुख बाधाएँ हैं। वर्तमान समय विज्ञान, तकनीक और वैश्विक संचार का युग है, फिर भी भारत की अधिकांश जनजातीय आबादी आधुनिक संचार सुविधाओं और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित है। अनेक जनजातीय परिवार आज भी भोजन, वस्त्र और आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियाँ न केवल उनके जीवन स्तर को प्रभावित करती हैं, बल्कि सामाजिक असमानता और आर्थिक बहिष्करण को भी बढ़ावा देती हैं। विशेष रूप से जनजातीय महिलाओं और युवाओं को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। मौसमी पलायन, कौशल विकास के अवसरों की कमी तथा असंगठित श्रम बाजार में शोषण की आशंका जैसी परिस्थितियाँ जनजातीय समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और अधिक कमजोर बनाती हैं। रोजगार के स्थायी अवसरों के अभाव में बड़ी संख्या में लोग असुरक्षित और कम आय वाले कार्यों पर निर्भर रहते हैं। इससे शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा जैसी आवश्यक सुविधाओं तक उनकी पहुँच सीमित हो जाती है। जनजातीय युवाओं के विकास पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा और आधुनिक संचार सुविधाएँ किसी भी समाज की प्रगति का आधार होती हैं। यदि युवाओं को उच्च शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण और रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं होंगे, तो जनजातीय समाज का समग्र और तीव्र विकास संभव नहीं हो सकेगा। आज कई जनजातीय युवा मुख्यधारा के विकास से जुड़ने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु संसाधनों और अवसरों की कमी उनके मार्ग में बड़ी बाधा बनी हुई है। थारू जनजाति उत्तर भारत और नेपाल की एक प्रमुख जनजाति है, जिसकी अधिकांश जनसंख्या हिमालयी तराई क्षेत्र तथा भारत-नेपाल सीमा के आसपास निवास करती है। उत्तराखंड के ऊधम सिंह नगर जनपद में निवास करने वाला यह समुदाय आज भी शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक जागरूकता से संबंधित अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। इसलिए जनजातीय विकास के लिए ऐसी समावेशी नीतियों और योजनाओं की आवश्यकता है, जो शिक्षा, कौशल विकास, महिला सशक्तिकरण, स्वास्थ्य सेवाओं और आर्थिक अवसरों को बढ़ावा देकर इन समुदायों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ सकें।

थारू समुदाय का परिचय: भारत एक बहुसांस्कृतिक एवं बहुजातीय देश है, जहाँ विभिन्न जनजातीय समुदाय अपनी विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक पहचान के साथ निवास करते हैं। भारतीय संविधान में ÷अनुसूचित जनजाति÷ शब्द का उल्लेख विशेष रूप से उन जनजातीय समुदायों के लिए किया गया है, जिन्हें सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ा मानते हुए संरक्षण और विकास की आवश्यकता समझी गई। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366(25) के अनुसार, अनुसूचित जनजातियाँ वे जनजातियाँ या जनजातीय समुदाय हैं जिन्हें अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। सामान्यतः जनजाति ऐसे परिवारों या समूहों को कहा जाता है जिनकी समान सांस्कृतिक पहचान, भाषा, परंपराएँ, सामाजिक नियम तथा पारस्परिक दायित्व होते हैं। भारत की जनजातीय जनसंख्या संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम होने के बावजूद अत्यंत विविधतापूर्ण है। विभिन्न जनजातियों में भाषा, संस्कृति, शारीरिक बनावट, रहन-सहन, आजीविका के साधन तथा सामाजिक संरचना में व्यापक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। यह विविधता भारतीय समाज की सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाती है तथा जनजातीय समुदायों के संरक्षण एवं विकास के लिए क्षेत्र-विशिष्ट और समावेशी नीतियों की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

थारू समुदाय उत्तर भारत और नेपाल की एक प्रमुख जनजाति है, जिसकी अधिकांश जनसंख्या हिमालयी तराई क्षेत्र तथा भारत-नेपाल सीमा के आसपास निवास करती है। उत्तराखंड राज्य के ऊधम सिंह नगर जनपद की खटीमा और सितारगंज तहसीलों में इस समुदाय की बड़ी आबादी पाई जाती है। उत्तराखंड में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियों – जौनसारी, भोटिया, बुक्सा, राजी और थारू – में थारू जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। थारू समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक मान्यताओं, लोककला और पारंपरिक जीवन शैली के लिए जाना जाता है। इस समुदाय के प्रमुख व्यवसाय कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन तथा वनोपज आधारित गतिविधियाँ हैं। थारू लोग प्रकृति के निकट जीवन व्यतीत करते हैं तथा सामुदायिक सहयोग और पारिवारिक एकता को विशेष महत्व देते हैं। धार्मिक दृष्टि से वे हिंदू धर्म का पालन करते हैं, किन्तु साथ ही अपने पारंपरिक जनजातीय देवी-देवताओं की भी पूजा करते हैं। थारू समुदाय में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। वे कृषि कार्यों, घरेलू प्रबंधन, हस्तशिल्प तथा पारिवारिक निर्णयों में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं। इसके बावजूद शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा सामाजिक जागरूकता की कमी के कारण यह समुदाय आज भी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। आधुनिक विकास की प्रक्रिया में थारू समुदाय की सांस्कृतिक पहचान और पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित रखते हुए उनके सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

थारू समुदाय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना: थारू समुदाय उत्तराखंड की प्रमुख जनजातियों में से एक है, जिसकी अधिकांश जनसंख्या राज्य के तराई क्षेत्र, विशेष रूप से ऊधम सिंह नगर जनपद की खटीमा एवं सितारगंज तहसीलों में निवास करती है। उत्तराखंड में निवास करने वाली पाँच प्रमुख जनजातियों – जौनसारी, थारू, भोटिया, बुक्सा और राजी – में थारू जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह समुदाय ऐतिहासिक रूप से भारत-नेपाल सीमा के घने एवं मलेरिया प्रभावित जंगलों में निवास करता रहा है। प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुरूप जीवन व्यतीत करने के कारण थारू समुदाय ने अपनी विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान विकसित की। समय के साथ स्वास्थ्य सुविधाओं और मच्छर नियंत्रण कार्यक्रमों के विस्तार के कारण अन्य समुदायों का भी इन क्षेत्रों में आगमन हुआ, जिससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया तेज हुई। थारू समुदाय की सामाजिक संरचना पारंपरिक मूल्यों, सामुदायिक सहयोग और पारिवारिक एकता पर आधारित है। इस समुदाय में संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रचलन अधिक देखने को मिलता है, जहाँ परिवार के सदस्य सामूहिक रूप से कृषि, घरेलू कार्यों और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते हैं। महिलाओं को परिवार और समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त है तथा वे आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। कृषि कार्यों, पशुपालन, घरेलू प्रबंधन तथा हस्तशिल्प गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तराखण्ड

बायोचार : सतत मृदा प्रबंधन एवं उच्च पैदावार के लिए उत्कृष्ट विकल्प

अंशु कुमार पाण्डेय
निखिल शर्मा, कृष्ण प्रिया (शोधार्थी)
मंजू नेगी विभागाध्यक्ष (फल विज्ञान विभाग)
दीपक मेवाड (अतिथि शिक्षक), वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौंड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड 246123

सारांश: आज की आधुनिक खेती में मिट्टी की उर्वरता निरंतर घट रही है, जबकि रासायनिक खाद-उर्वरकों पर निर्भरता और लागत दोनों बढ़ती जा रही हैं। इस समस्या के समाधान के रूप में 'बायोचार', जिसे 'काला सोना' भी कहा जाता है, एक सस्ता, टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प है। बायोचार एक कार्बन-समृद्ध, छिद्रयुक्त ठोस पदार्थ है, जिसे फसल अवशेष, लकड़ी या गोबर जैसे बायोमास को कम या बिना ऑक्सीजन की स्थिति में कार्बनीकरण द्वारा तैयार किया जाता है। इसका उपयोग खुले में फसल अवशेष जलाने की प्रवृत्ति को कम करता है, जिससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में भी कमी आती है। बायोचार मिट्टी की संरचना को सुधारकर उसे भुरभुरा बनाता है, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है। यह मिट्टी में नमी को लंबे समय तक संचित रखता है, परिणामस्वरूप कम सिंचाई में भी फसल की अच्छी वृद्धि संभव होती है। साथ ही यह पोषक तत्वों के निक्षालन को कम कर पौधों को अधिक लाभ पहुँचाता है। फल-सब्जी एवं अन्य फसल प्रणालियों में इसके प्रयोग से उपज और गुणवत्ता दोनों में सुधार देखा गया है। इस प्रकार बायोचार किसानों के लिए लाभकारी, मिट्टी-स्वास्थ्य के लिए उपयोगी तथा सतत और जलवायु-अनुकूल कृषि का प्रभावी साधन है।

परिचय: आज की खेती में मिट्टी की उर्वरता में निरंतर गिरावट होती जा रही है। रासायनिक उर्वरकों पर बढ़ती निर्भरता और जलवायु परिवर्तन बड़ी चुनौती बन चुका हैं। ऐसे में बायोचार एक ऐसा वैकल्पिक और टिकाऊ उपाय बनकर उभरा है। जो न केवल मिट्टी की सेहत सुधारता है बल्कि उत्पादन को भी बढ़ाता है। बायोचार एक कार्बन-समृद्ध और छिद्रपूर्ण पदार्थ है जो की ऑक्सीजन की सीमित परिस्थितियों में बायोमास जैसे कि पौधों के अवशेष कृषि कचरा या लकड़ी के ताप विघटन के माध्यम से उत्पादित होता है। ताप-विघटन में बायोमास को उच्च तापमान पर ऑक्सीजन की अनुपस्थिति या लगभग अनुपस्थिति में जलाया जाता है ताकि पूर्णदहन से बचा जा सके। बायोचार पूर्णदहन तथा कच्ची अवस्था के बीच का उत्पाद है, एक तरह से कोयला है। बायोचार कचरा और राख प्रबंधन के लिए, एक सतत विकल्प है। इसमें मूल कार्बन की 50 प्रतिषत मात्रा होती है, जो स्वभाव से बेहद जिद्दी होती है, इसलिए, इसका उत्पादन बायोमास में मौजूद कार्बन को स्थिर करके कार्बन संचयन में मदद करता है। बायोचार पशु गोबर के एक अच्छे विकल्प के रूप में उभर रहा है तथा यह गोबर की खाद के सामानरूप गुणवत्ता रखता है एवं समान कार्य करता है।

बायोचार के आकर्षक एवं महत्वपूर्ण बिंदु* बायोचार कार्बन-समृद्ध यौगिकों से बना होता है, जिसकी संरचना कच्चे पदार्थ और ताप-अपघटन की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। * फसल अवशेष, लकड़ी, गोबर या पीट जैसे विभिन्न जैव स्रोतों में सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज और लिग्निन की भिन्न मात्रा बायोचार की रासायनिक संरचना एवं स्थिरता को प्रभावित करती है। * उच्च ताप-अपघटन तापमान पर निर्मित बायोचार अधिक स्थिर, सुवासित कार्बन संरचनाओं वाला होता है, जिससे कार्बन पृथक्करण क्षमता बढ़ती है।

* कम तापमान पर बने बायोचार में अधिक लैबाइल कार्बन, ऑक्सीजन-युक्त कार्यात्मक समूह एवं वाष्पशील पदार्थ पाए जाते हैं। * यह मिट्टी में लंबे समय तक स्थिर बना रहता है और कार्बन को स्थायी रूप से संचित करता है। * बायोचार मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में सुधार करता है। * इसकी छिद्रयुक्त संरचना और अधिक सतह क्षेत्रफल मिट्टी की जल-धारण क्षमता बढ़ाते हैं। * यह पोषक तत्वों के धारण को बढ़ाकर मृदा उर्वरता में सुधार करता है। * लाभकारी सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल आवास प्रदान करता है। * ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम कर जलवायु-अनुकूल कृषि को बढ़ावा देता है।

बायोचार की खेती में उपयोगिता: बायोचार का प्रयोग कृषि फसल मुख्यतः धान, गेहूँ, दलहनी, तिलहनी व हरी घास वाली फसलों तथा जौ, बाजरा एवं ताजी सब्जियाँ, फलो जैसे, आम, सेब, अमरूद, लीची, नीबू वर्गीय फलों के साथ-साथ गुलाब, गेंदा, रजनीगंधा, एवं ग्लैडियोलस जैसी फूलों की फसलों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है जिससे पौधों की वृद्धि में सुधार होता है, तथा फसल उपज मे वृध्दि करता है।

* फूलों की संख्या और आकार में वृद्धि * फलों की गुणवत्ता एवं उपज में बढ़ोतरी

बायोचार तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री: फसलों की खेती में मिट्टी की ताकत बढ़ाने और उपज बढ़ाने के लिए बायोचार एक आसान और टिकाऊ उपाय है। बायोचार उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार के कच्चे पदार्थों को उपयोग में लिया जाता हैं जिसमें शामिल हैं, जैसे-कृषि अवशेष, लकड़ी आधारित जैव पदार्थ, कुक्कुट अपशिष्ट, कागज अपशिष्ट, शहरी अपशिष्ट, जलीय जैव-द्रव्य, रसोई अपशिष्ट, पशु एवं मानव मल-मूत्र, औद्योगिक अपशिष्ट, पेपर मिल अपशिष्ट आदि का उपयोग किया जाता है।

बायोचार उत्पादन की विधियाँ:

क.ढेर विधि: पारंपरिक विधि में, लकड़ी के लट्ठों और पौधों की जड़ों को रखकर पिरामिड-आकार का ढेर (मिट्टी की भट्ठी) तैयार की जाती है, जिसका उपयोग चारकोल (कोयला) बनाने के लिए किया जाता है।

प्रक्रिया: ढेर विधि में लकड़ी की छंटाई छोटी लकड़ी के लट्ठे टहनियाँ तथा लकड़ीदार फसल अवशेष जैसी जैव-अवशेष सामग्री को लगभग तीन से चार फीट ऊँचाई तक ढेर के रूप में जमा किया जाता है, और इसे मिट्टी के लेप (कीचड़) से ढक दिया जाता है। मिट्टी का लेप सूखने पर ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः हवा के छिद्र खोले जाते हैं। ढेर के एक सिरे से आग लगाई जाती है, और इसे काफी समय तक धुआँ निकलने दिया जाता है। जो सामान्यतः कुछ दिनों से लेकर एक सप्ताह तक हो सकता है। ऑक्सीजन की कमी (ऑक्सीजन तनाव) की परिस्थितियों में बायोचार का निर्माण होता है, लेकिन इस विधि में तापमान और वायु प्रवाह पर पूर्ण नियंत्रण नहीं होता।

ख. ड्रम विधि: ड्रम विधि बायोचार बनाने की एक सस्ती, आसान और छोटे स्तर पर अपनाई जाने वाली तकनीक है, जिसे किसान खेत या घर के पास स्वयं कर सकते हैं। इस विधि में लोहे के ड्रम का उपयोग करके कृषि अपशिष्ट को कम ऑक्सीजन की स्थिति में जलाया जाता है, जिससे बायोचार तैयार होता है।

विधि: सबसे पहले 200 लीटर का लोहे का ड्रम लें और उसके निचले हिस्से में छोट-छोटे छेद कर दें ताकि सीमित हवा का प्रवेश हो सके। ड्रम के ढक्कन में भी छोट-छोटे छेद कर देना उपयोगी रहता है। इसके बाद कच्चे जैव पदार्थ जैसे धान की भूसी, मक्का के डंठल, गेहूं का भूसा, लकड़ी के टुकड़े, फल-सब्जी के सूखे अवशेष आदि को अच्छी तरह सुखाकर ड्रम में भर दें। नीचे से थोड़ी आग लगाकर ड्रम को जलाना शुरू करें। ध्यान रखें कि आग की ऑच धीमी हो और सामग्री पूरी तरह खुली आग में न जले। जब ड्रम के अंदर से धुआँ निकलना कम हो जाए और ऊपर की सामग्री काली पड़ने लगे, तब ढक्कन को अच्छी तरह बंद कर दें या मिट्टी से सील कर दें, ताकि ऑक्सीजन का प्रवेश रुक जाए। इस अवस्था में अंदर की सामग्री जलने की बजाय कार्बनीकरण (पायरोलायसिस) प्रक्रिया से गुजरती है। लगभग 2-3 घंटे बाद ड्रम को पूरी तरह ठंडा होने दें। ठंडा होने पर ढक्कन खोलें और अंदर से काला, हल्का तथा भुरभुरा पदार्थ प्राप्त होगा, यही बायोचार है।

मुख्य सावधानियां

* ढेर विधि में केवल सूखी जैव सामग्री का प्रयोग करें। प्लास्टिक, पॉलिथीन या रासायनिक कचरा न डालें। * आग को नियंत्रित रखने के लिए पानी पास में रखें। * हवा तेज होने पर यह विधि न अपनाएँ, क्योंकि इससे पूरी सामग्री जलकर राख बन सकती है। * बायोचार को कभी भी अधिक मात्रा में अकेले न डालें। उसे हमेशा खाद या मिट्टी के साथ मिलाकर प्रयोग करें। * प्रयोग से पहले बायोचार पूरी तरह ठंडा और बारीक किया हुआ होना चाहिए। * प्रयोग के समय हवा मे उडने से बचाये।

निष्कर्ष: बायोचार के अध्ययनो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि बायोचार वर्तमान कृषि परिदृश्य में मृदा स्वास्थ्य सुधार, सतत उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण के लिए एक प्रभावी एवं व्यवहारिक समाधान है। बायोचार के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है, जिससे जल धारण क्षमता, पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ती है। परिणामस्वरूप फसलों की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता में वृद्धि होती है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है। इसके अतिरिक्त, बायोचार फसल अवशेषों के उचित प्रबंधन में सहायक है और कार्बन को दीर्घकालिन समय तक मिट्टी में स्थिर रूप मे संचित कर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में योगदान देता है। साथ ही अत्यंत सरल एवं कम लागत वाली उत्पादन तकनीको के कारण किसान इसे स्वयं तैयार कर सकते हैं, जिससे यह आर्थिक रूप से भी लाभकारी सिद्ध होता है। हालांकि, संतुलित मात्रा, उचित उपचारित तथा सही प्रयोग विधियों का पालन आवश्यक है। समग्र रूप से बायोचार जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने, मिट्टी की दीर्घकालिक उर्वरता बनाए रखने और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने की दिशा में एक संभावनाशील विकल्प के रूप में उभरता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

विदेशी सब्जियां: भारतीय बाजारों में उभरते रुझान

सृष्टि पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173230

सारांश

शहरीकरण, बदलती खान-पान की आदतों और उपभोक्ताओं में बढ़ती स्वास्थ्य जागरूकता के कारण विदेशी सब्जियों की बढ़ती मांग से भारतीय सब्जी बाजार में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिल रहा है। ब्रोकोली, लेट्यूस, चेरी टमाटर, रंगीन शिमला मिर्च, जुकिनी, केल और अजवाइन जैसी विदेशी सब्जियां अपने पौष्टिक गुणों, अनूठे स्वाद और अंतरराष्ट्रीय व्यंजनों में उपयोग के कारण लोकप्रियता हासिल कर रही हैं। संगठित खुदरा श्रृंखलाओं, ऑनलाइन किराना प्लेटफॉर्म और आतिथ्य क्षेत्र के विस्तार ने भारत में इनके बाजार विकास को और गति दी है। विदेशी सब्जियों की खेती किसानों को उच्च आर्थिक लाभ प्रदान करती है और संरक्षित खेती और शहरी खेती के अवसर पैदा करती है। हालांकि, उच्च उत्पादन लागत, जल्दी खराब होने की प्रवृत्ति, सीमित तकनीकी ज्ञान और बाजार तक पहुंच जैसी चुनौतियां अभी भी बड़े पैमाने पर इनके उपयोग को बाधित करती हैं। इन बाधाओं के बावजूद, बढ़ती उपभोक्ता जागरूकता, तकनीकी प्रगति और विस्तारित बाजार अवसरों के कारण भारत में विदेशी सब्जियों की भविष्य की संभावनाएं अत्यधिक आशाजनक हैं। यह लेख भारतीय बाजारों में विदेशी सब्जियों के महत्व, खेती के रुझान, चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालता है।

परिचय

भारतीय कृषि पारंपरिक रूप से टमाटर, आलू, बैंगन, पत्तागोभी और भिंडी जैसी पारंपरिक सब्जियों की खेती पर केंद्रित रही है। हालांकि, जीवनशैली में बदलाव, बढ़ते शहरीकरण, स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता और खान-पान की आदतों के वैश्वीकरण ने हाल के वर्षों में उपभोक्ताओं की पसंद को काफी हद तक बदल दिया है। परिणामस्वरूप, विदेशी सब्जियां भारतीय सब्जी बाजारों में तेजी से बढ़ते वर्ग के रूप में उभरी हैं। ये सब्जियां, जो कभी केवल आलीशान होटलों और उच्च श्रेणी के रेस्तरां तक ही सीमित थीं, अब सुपरमार्केट, ऑनलाइन किराना प्लेटफॉर्म और यहां तक कि स्थानीय खुदरा बाजारों में भी आसानी से उपलब्ध हैं। विदेशी सब्जियों से तात्पर्य उन गैर-पारंपरिक सब्जियों से है जिन्हें आम तौर पर विदेशी देशों से लाया जाता है और विशिष्ट कृषि-जलवायु परिस्थितियों में उगाया जाता है। ब्रोकोली, लेट्यूस, जुकिनी, चेरी टमाटर, लाल पत्तागोभी, शतावरी, अजवाइन, लीक, पार्सले, केल और रंगीन शिमला मिर्च जैसी सब्जियां अपने पौष्टिक मूल्य, अनूठे स्वाद और पाक कला में बहुमुखी प्रतिभा के कारण भारतीय उपभोक्ताओं के बीच लोकप्रियता हासिल कर रही हैं।

विदेशी सब्जियों की बढ़ती मांग

पिछले एक दशक में भारत में विदेशी सब्जियों की मांग में जबरदस्त वृद्धि हुई है। इस रुझान के प्रमुख कारणों में से एक आतिथ्य और खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्रों का तीव्र विकास है। इतालवी, चीनी, थाई, मैक्सिकन और महाद्वीपीय व्यंजनों जैसे अंतरराष्ट्रीय व्यंजन शहरी उपभोक्ताओं के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं, जिससे विदेशी सब्जियों की मांग बढ़ रही है। संगठित खुदरा श्रृंखलाओं और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्मों के विस्तार ने भी बाजार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अब उपभोक्ताओं को पूरे वर्ष ताजी विदेशी सब्जियां आसानी से उपलब्ध हैं। इसके अलावा, स्वस्थ खान-पान की आदतों और पोषण सुरक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता ने लोगों को ब्रोकोली, केल और लेट्यूस जैसी पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियों को अपने दैनिक आहार में शामिल करने के लिए प्रोत्साहित किया है। युवा उपभोक्ता, फिटनेस के शौकीन और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक शहरी आबादी इस बाजार के प्रमुख चालक हैं। विदेशी सब्जियों को अक्सर प्रीमियम उत्पाद माना जाता है क्योंकि ये विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट और आहार फाइबर से भरपूर होती हैं और कैलोरी में कम होती हैं।

भारत में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण विदेशी सब्जियां

ब्रोकली

ब्रोकली अपने उच्च पोषण मूल्य और एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण भारत में सबसे लोकप्रिय विदेशी सब्जियों में से एक बन गई है। यह विटामिन सी, विटामिन के और सल्फोराफेन से भरपूर है, जो अपने कैंसर-रोधी गुणों के लिए जाना जाता है।

लेट्यूस

लेट्यूस का व्यापक रूप से सलाद, बर्गर और सैंडविच में उपयोग किया जाता है। आइसबर्ग, रोमेन और लीफ लेट्यूस जैसी विभिन्न किस्में अब कई भारतीय राज्यों में व्यावसायिक रूप से उगाई जाती हैं।

चेरी टमाटर

चेरी टमाटर अपने आकर्षक रूप, मीठे स्वाद और उच्च बाजार मूल्य के कारण पसंद किए जाते हैं। इनका व्यापक रूप से सलाद और लजीज व्यंजनों में उपयोग किया जाता है।

रंगीन शिमला मिर्च

लाल, पीली और नारंगी शिमला मिर्च अपने चटख रंगों और पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण होटलों और रेस्तरां में अत्यधिक मांग में हैं।

जुकिनी

जुकिनी एक बहुमुखी सब्जी है जिसका उपयोग सूप, करी और कॉन्टिनेंटल व्यंजनों में किया जाता है। इसने शहरी घरों और रसोइयों के बीच लोकप्रियता हासिल की है।

केल और अजवाइन

इन सब्जियों में एंटीऑक्सीडेंट और फाइबर की मात्रा अधिक होने के कारण इनका सेवन स्वास्थ्यवर्धक भोजन के रूप में तेजी से बढ़ रहा है।

भारतीय किसानों के लिए संभावनाएं

विदेशी सब्जियों की खेती भारतीय किसानों, विशेषकर शहरी बाजारों के निकट स्थित किसानों के लिए अपार अवसर प्रदान करती है। ये फसलें आमतौर पर पारंपरिक सब्जियों की तुलना में अधिक आर्थिक लाभ देती हैं, क्योंकि इनका बाजार मूल्य अधिक होता है। पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस और शेड-नेट हाउस जैसी संरक्षित खेती तकनीकों ने विदेशी सब्जियों की खेती को और बढ़ावा दिया है। नियंत्रित वातावरण कृषि गुणवत्ता बनाए रखने, उपज बढ़ाने और साल भर उत्पादन सुनिश्चित करने में सहायक होती है। हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उत्तर-पूर्वी भारत के कुछ हिस्से अनुकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण विदेशी सब्जी उत्पादन के महत्वपूर्ण केंद्रों के रूप में उभर रहे हैं। कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग और होटलों, सुपरमार्केट और ऑनलाइन डिलीवरी प्लेटफॉर्म के साथ सीधा संपर्क भी उत्पादकों के लिए बेहतर विपणन अवसर पैदा कर रहा है।

विदेशी सब्जी उत्पादन में चुनौतियां

अपनी बढ़ती लोकप्रियता के बावजूद, भारत में विदेशी सब्जियों को उत्पादन और विपणन संबंधी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कई किसानों में अभी भी खेती के तरीकों, कटाई के बाद की देखभाल और बाजार की आवश्यकताओं के बारे में तकनीकी ज्ञान की कमी है। चूंकि ये सब्जियां जल्दी खराब हो जाती हैं, इसलिए परिवहन और भंडारण के दौरान गुणवत्ता बनाए रखना मुश्किल हो जाता है। एक अन्य प्रमुख चुनौती उच्च गुणवत्ता वाले बीजों, संरक्षित संरचनाओं और विशेष इनपुट की उच्च लागत है। इसके अलावा, बाजार की मांग मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों में केंद्रित है, जिससे दूरदराज के क्षेत्रों में स्थित किसानों के लिए विपणन मुश्किल हो जाता है। देश के कई हिस्सों में कुछ विदेशी सब्जियों की तैयारी और उपयोग के बारे में उपभोक्ता जागरूकता भी सीमित है।

भविष्य की संभावनाएं

भारत में विदेशी सब्जियों का भविष्य बेहद उज्ज्वल दिख रहा है। बढ़ती आय, बदलते खान-पान के तरीके और स्वस्थ जीवनशैली पर बढ़ते जोर से बाजार का विस्तार होने की उम्मीद है। शहरी कृषि, जलपोषण, छत पर बागवानी और ऊर्ध्वाधर खेती से महानगरों में विदेशी सब्जियों का साल भर उत्पादन संभव हो सकेगा। शोध संस्थान और कृषि विश्वविद्यालय भी किसानों की सहायता के लिए उन्नत किस्मों और क्षेत्र-विशिष्ट उत्पादन तकनीकों को विकसित करने पर काम कर रहे हैं। संरक्षित खेती और उच्च मूल्य वाली कृषि को बढ़ावा देने वाली सरकारी पहल इस क्षेत्र के विकास को और गति दे सकती हैं। बढ़ते निर्यात अवसरों और घरेलू मांग के साथ, विदेशी सब्जियां विविध भारतीय कृषि का एक महत्वपूर्ण घटक बनने की क्षमता रखती हैं।

निष्कर्ष

विदेशी सब्जियां आधुनिक भारतीय कृषि और उपभोक्ता बाजारों के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में तेजी से उभर रही हैं। इनकी बढ़ती मांग मुख्य रूप से बदलती जीवनशैली, पोषण संबंधी बढ़ती जागरूकता और अंतरराष्ट्रीय व्यंजनों की बढ़ती लोकप्रियता से प्रेरित है। ये सब्जियां न केवल बेहतर पोषण लाभ प्रदान करती हैं, बल्कि उच्च मूल्य वाली खेती और संरक्षित कृषि प्रणालियों के माध्यम से किसानों के लिए लाभदायक अवसर भी प्रदान करती हैं। उत्पादन, अपक्षयीता और बाजार तक पहुँच से संबंधित चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं, लेकिन कृषि तकनीकों, संगठित विपणन और उपभोक्ता जागरूकता में निरंतर प्रगति इनके विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बना रही है। आने वाले वर्षों में, विदेशी सब्जियाँ भारत में किसानों की आय, पोषण सुरक्षा और सतत बागवानी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की उम्मीद है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में कृषि शिक्षा: सब्जी विज्ञान की भूमिका

वंशिका शर्मा विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

डॉ. दीपा शर्मा वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. यशवंत सिंह परमार उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

अखिलेश शर्मा विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार , उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

अनुप्रिया भारद्वाज विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार , उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा जनसंख्या का बड़ा हिस्सा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि केवल भोजन उत्पादन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण विकास, पोषण सुरक्षा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है।देश की खाद्य आपूर्ति, निर्यात क्षमता और किसानों की आजीविका सीधे-सीधे कृषि पर आधारित है। बदलती जीवनशैली, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता दबाव तथा तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण पारंपरिक कृषि पद्धतियों में सुधार और नवाचार की आवश्यकता महसूस की गई। आज की परिस्थितियों में कृषि केवल खेती तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह तकनीकी हस्तक्षेप, मूल्य संवर्द्धन, विपणन, खाद्य प्रसंस्करण और निर्यात जैसी अनेक गतिविधियों से जुड़ चुकी है। इसलिए आधुनिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक अनुसंधान और उन्नत तकनीक को अपनाना समय की मांग बन गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 लागू की गई, जिसका उद्देश्य शिक्षा को केवल सैद्धांतिक तक सीमित न रखकर उसे अधिक व्यावहारिक, कौशल आधारित, रोजगारोन्मुखी और शोधपरक बनाना है।

कृषि शिक्षा में इस नीति ने नए आयाम जोड़े हैं जिनसे न केवल विद्यार्थियों की दक्षता में वृद्धि होगी, बल्कि कृषि को एक लाभकारी, आकर्षक और स्थायी व्यवसाय के रूप में स्थापित करने का मार्ग भी प्रशस्त होगा। **कृषि शिक्षा में इस नीति के नए आयाम निम्नलिखित हैं:-**

1.अंतरविषयी (Interdisciplinary) कौशल विकास: अब छात्रों को कृषि के साथ-साथ प्रबंधन, सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, पर्यावरण विज्ञान और विपणन जैसे अन्य विषयों का भी अध्ययन करने का अवसर मिलेगा। इससे वे केवल खेती या उत्पादन तक सीमित न रहकर, कृषि के व्यापक स्वरूप को समझ पाएंगे। बहुआयामी ज्ञान प्राप्त कर छात्र कृषि क्षेत्र में अनुसंधान, उद्यमिता, मूल्य संवर्धन, आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन और कृषि विपणन जैसे क्षेत्रों में भी सक्रिय योगदान दे सकेंगे। इस प्रकार, बहु-विषयक शिक्षा छात्रों को न केवल ज्ञानवान बनाएगी, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर, नवाचारी और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी भी बनाएगी। यह बदलाव कृषि शिक्षा को आधुनिक, व्यवहारिक और भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

2.प्रशिक्षण और इंटर्नशिप: कक्षा तक सीमित रहने की बजाय छात्रों को खेतों, अनुसंधान संस्थानों और उद्योगों से जोड़ने पर विशेष बल दिया जा रहा है। इससे वे केवल सिद्धांत तक सीमित न रहकर वास्तविक परिस्थितियों में सीखने का अवसर पाएंगे। इंटर्नशिप और लाइव प्रोजेक्ट्स के माध्यम से छात्र व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करेंगे, जिससे उनकी समस्या समाधान क्षमता और आत्मविश्वास दोनों बढ़ेंगे। खेतों में कार्य करने से उन्हें फसलों की वास्तविक चुनौतियाँ समझने का अवसर मिलेगा, जबकि अनुसंधान संस्थानों से जुड़कर वे नई तकनीकों और नवाचारों की जानकारी हासिल करेंगे। उद्योगों से सहयोग उन्हें मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण और विपणन जैसे क्षेत्रों की व्यावहारिक जानकारी देगा। इस प्रकार, यह अनुभव छात्रों को केवल नौकरी तलाशने वाला नहीं, बल्कि कृषि क्षेत्र में नए अवसर पैदा करने वाला सक्षम उद्यमी भी बना सकता है।

3. नवाचार और अनुसंधान परियोजनाएं: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 छात्रों को स्टार्टअप, नवाचार परियोजनाओं और शोध कार्यों हेतु प्रोत्साहित करती है। इससे विद्यार्थियों में सृजनात्मक सोच और समस्या समाधान की क्षमता विकसित होती है। कृषि क्षेत्र में जैसे-बीज उत्पादन, नर्सरी प्रबंधन, संरक्षित खेती, जैविक कृषि, ड्रिप सिंचाई, स्मार्ट खेती और फसल प्रसंस्करण जैसे क्षेत्रों में नए प्रयोग करने का अवसर मिल रहा है।इन परियोजनाओं से न केवल नई तकनीकों का विकास होगा, बल्कि छात्रों को आत्मनिर्भर बनने और कृषि को एक लाभकारी व्यवसाय में बदलने का अवसर भी मिलेगा। शोध और नवाचार से टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा मिलेगा, जिससे उत्पादन क्षमता बढ़ेगी और किसानों की आय में सुधार होगा। इस प्रकार, छात्र अपने विचारों को स्टार्टअप और उद्यमिता में बदलकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे।

4.रोजगार और उद्यमिता के अवसर: NEP 2020 का जोर केवल छात्रों को नौकरी दिलाने पर ही नहीं है, बल्कि उनमें उद्यमिता की भावना विकसित करने पर भी है। कृषि स्नातक और परास्नातक छात्र अब पारंपरिक रोजगार तक सीमित न रहकर छोटे स्तर से लेकर बड़े स्तर तक अपना स्वयं का व्यवसाय स्थापित कर सकते हैं। इसके अंतर्गत वे एग्रो-स्टार्टअप, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ, बीज उत्पादन केंद्र, नर्सरी प्रबंधन, जैविक खाद उत्पादन, मूल्य संवर्धन इकाइयाँ या आधुनिक तकनीक आधारित खेती जैसे विविध क्षेत्रों में काम कर सकते हैं।यह नीति छात्रों को न केवल नौकरी तलाशने वाला बनाएगी, बल्कि उन्हें रोजगार देने वाला भी बनाएगी। डिजिटल कृषि, ई-मार्केटिंग, ड्रोन तकनीक और स्मार्ट खेती जैसी नवीनतम अवधारणाओं को अपनाकर वे कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव ला सकते हैं। उद्यमिता को प्रोत्साहन देने से ग्रामीण क्षेत्रों में नए अवसर उत्पन्न होंगे, जिससे गाँवों में पलायन रुकेगा और स्थानीय स्तर पर रोजगार बढ़ेगा।

5.समग्र विकास पर बल: NEP 2020 का उद्देश्य केवल शैक्षणिक उत्कृष्टता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह छात्रों के सर्वांगीण विकास पर जोर देती है। यह नीति विद्यार्थियों की सृजनात्मकता, नेतृत्व क्षमता, आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान की योग्यता और निर्णय लेने की दक्षता को बढ़ावा देती है। साथ ही यह उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक मूल्यों और पर्यावरण संरक्षण जैसी मानवीय संवेदनाओं से भी जोड़ती है, ताकि वे केवल सफल पेशेवर ही नहीं, बल्कि जिम्मेदार नागरिक भी बन सकें। इस नीति के अंतर्गत छात्रों को खेल-कूद, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, सामुदायिक सेवा, नवाचार परियोजनाएँ और टीमवर्क जैसी गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इन अनुभवों से उनमें आत्मविश्वास, सहयोग की भावना और नेतृत्व कौशल विकसित होता है।

कृषि शिक्षा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 की भूमिका: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने उच्च शिक्षा संस्थानों को लचीला पाठ्यक्रम और बहुविषयक दृष्टिकोण अपनाने पर ज़ोर दिया है। कृषि के विद्यार्थियों को अब विभिन्न विषयों जैसे बायोटेक्नोलॉजी, सूचना प्रौद्योगिकी, प्रबंधन और उद्यमिता से भी जुड़ने का अवसर मिल रहा है। इससे वे न केवल खेती की वैज्ञानिक तकनीक समझ पाएंगे बल्कि आधुनिक प्रबंधन और विपणन कौशल भी विकसित कर सकेंगे। कृषि पाठ्यक्रमों में इंटर्नशिप और इनोवेशन प्रोजेक्ट्स पर विशेष बल दिए जाने से विद्यार्थियों को फील्ड लेवल अनुभव और उद्योग आधारित प्रशिक्षण प्राप्त होगा। यह बदलाव पारंपरिक "कक्षा आधारित अध्ययन" को "अनुभव आधारित अध्ययन" में बदल रहा है।

सब्ज़ी विज्ञान में नए अवसर: सब्ज़ी विज्ञान आज कृषि विज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें सबसे अधिक व्यावसायिक संभावनाएं हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत यह क्षेत्र छात्रों हेतु नए आयाम खोल रहा है।

1.बीजोत्पादन: गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन हर किसान की पहली आवश्यकता है, क्योंकि फसल की सफलता का आधार अच्छे बीजों पर ही टिका होता है। यदि बीज उच्च गुणवत्ता वाले और प्रमाणित हों तो उत्पादन न केवल अधिक होता है, बल्कि रोग-कीटों से भी फसल की सुरक्षा सुनिश्चित होती है। सब्ज़ियों का बीजोत्पादन साधारण प्रक्रिया नहीं है; यह एक वैज्ञानिक कार्य है, जिसमें तकनीकी जानकारी, वैज्ञानिक प्रबंधन, शुद्धता बनाए रखने की क्षमता और उत्पादन के प्रत्येक चरण पर सतर्कता की आवश्यकता होती है। विद्यार्थी इस क्षेत्र में प्रशिक्षित होकर बीज उद्योग, सरकारी बीज निगम, अनुसंधान संस्थानों तथा स्व-उद्यमिता में अवसर पा सकते हैं।

2.नर्सरी प्रबंधन: गुणवत्तापूर्ण पौध उत्पादन का व्यवसाय आज तेजी से विस्तार पा रहा है, क्योंकि फसल की सफलता काफी हद तक अच्छी पौध सामग्री पर निर्भर करती है। पारंपरिक नर्सरी पद्धतियों के साथ-साथ पॉलीबैग नर्सरी, ट्रे नर्सरी, टिश्यू कल्चर और ग्राफ्टिंग जैसी आधुनिक तकनीकें अब बड़े पैमाने पर अपनाई जा रही हैं। इनसे पौध की गुणवत्ता, समानता और रोग-मुक्तता सुनिश्चित होती है। विद्यार्थी इस क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यावसायिक नर्सरी स्थापित कर सकते हैं, जिससे वे न केवल किसानों को उच्च गुणवत्ता वाली पौध सामग्री उपलब्ध कराएँगे, बल्कि रोजगार सृजन और उद्यमिता के अवसर भी प्राप्त करेंगे। नर्सरी प्रबंधन से सब्ज़ियों, फलों, फूलों और औषधीय पौधों की मांग पूरी करने के साथ-साथ मूल्य संवर्धन और निर्यात की संभावनाएँ भी बढ़ाई जा सकती हैं।

3.संरक्षित खेती: जलवायु परिवर्तन और भूमि की घटती उपलब्धता के कारण संरक्षित खेती का महत्व लगातार बढ़ रहा है। पारंपरिक खेती की सीमाओं को दूर करने के लिए पॉलीहाउस, शेडनेट, ग्रीनहाउस और हाइड्रोपोनिक्स जैसी उन्नत तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है, जिनसे सालभर उच्च गुणवत्ता वाली सब्ज़ियों और फूलों का उत्पादन संभव हो पाता है। इन तकनीकों से फसलें रोग-कीटों से सुरक्षित रहती हैं, पानी की बचत होती है और प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। विद्यार्थी इस तकनीक में दक्ष होकर हाई-टेक खेती, कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग, ऑर्गेनिक उत्पादन और निर्यात व्यवसाय से जुड़ सकते हैं। साथ ही, संरक्षित खेती के माध्यम से वे शहरी और पेरि-अरबन कृषि में भी योगदान कर सकते हैं, जिससे शहरों में ताज़ी और पौष्टिक सब्ज़ियों की आपूर्ति सुनिश्चित होगी। यह क्षेत्र न केवल किसानों की आय दोगुनी करने में सहायक है, बल्कि युवाओं के लिए उद्यमिता और रोजगार के नए अवसर भी पैदा करता है।

निष्कर्ष: अतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने कृषि शिक्षा को नया आयाम दिया है। सब्ज़ी विज्ञान जैसे व्यावहारिक और व्यवसायोन्मुख क्षेत्र में विद्यार्थियों को बीजोत्पादन, नर्सरी प्रबंधन और संरक्षित खेती जैसे विषयों में प्रशिक्षण प्राप्त कर भविष्य निर्माण के व्यापक अवसर मिल रहे हैं। इस नीति से छात्र न केवल आत्मनिर्भर बनेंगे बल्कि भारतीय कृषि को भी नवाचार और तकनीक आधारित दिशा प्रदान करेंगे।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
जम्मू कश्मीर

अज़ोला पिन्नाटा: पानी पर तैरने वाला 'हरा सोना'

किसानों के लिए पोषण, पशुचारा और जैविक खेती का बहुमूल्य संसाधन

डॉ. ममता गोचर शोधार्थी, आनुवंशिक संसाधन एवं कृषि-प्रौद्योगिकी प्रभाग, भारतीय समवेत ओषध संस्थान, जम्मू (जम्मू और कश्मीर)

राजेन्द्र गोचर सहायक आचार्य (सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, खानपुर (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है,कि कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त करना। बढ़ती पशुचारा लागत, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता, मिट्टी की घटती उर्वरता और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएँ किसानों को नए विकल्प खोजने के लिए प्रेरित कर रही हैं। ऐसे समय में अज़ोला पिन्नाटा एक अत्यंत उपयोगी और बहुउद्देश्यीय जलीय फर्न के रूप में उभरकर सामने आया है।

अज़ोला एक छोटा, पानी पर तैरने वाला जलीय फर्न है, जो स्थिर या धीमी गति वाले पानी की सतह बहुत तेजी से बढ़ता है और पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसे "ग्रीन गोल्ड" या "जैविक सुपर फीड" भी कहा जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में यह 3-5 दिनों में अपनी मात्रा दोगुनी कर सकता है। यह पशुओं, मुर्गियों, मछलियों और सूअरों के लिए उत्तम चारा है। साथ ही यह धान की खेती में जैविक उर्वरक के रूप में भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। अज़ोला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एनाबीना एज़ोली नामक नीले-हरे शैवाल के साथ सहजीवी के रूप मे रहते हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यही कारण है कि अज़ोला प्राकृतिक नाइट्रोजन स्रोत माना जाता है।

अज़ोला का पोषण मूल्य: अज़ोला को "प्राकृतिक प्रोटीन बैंक" कहा जाता है। इसमें प्रोटीन, खनिज, विटामिन और अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

दूध उत्पादन वृद्धि	15-20%
चारा लागत में कमी	25-30%
रासायनिक खाद की बचत	20-25%
पोल्ट्री फीड बचत	15%
मिट्टी उर्वरता सुधार	30%

प्रोटीन प्रतिशत

आजोल	30%
सोयाबीन खली	45%
बरसीम	18%
नेपियर घास	10%
हरा चारा	12%

अज़ोला उपयोग से संभावित लाभ

पोषक तत्व	प्रतिशत (%)
खनिज पदार्थ	10-15%
प्रोटीन	20-30%
कार्बोहाइड्रेट	10-15%
फाइबर	10-15%
कैल्शियम	1.5-2%
लोहा	0.06-0.26%
मैग्नीशियम	0.5-0.65%
फॉस्फोरस	0.5-0.9%
विटामिन A	उच्च मात्रा
विटामिन B12	उपलब्ध

अन्य चारा स्रोतों की साथ आज़ोला के प्रोटीन एवं पाचन क्षमता की तुलना

चारा स्रोत	प्रोटीन (%)	उत्पादन लागत	वृद्धि दर	पाचन क्षमता	विशेष लाभ
अज़ोला	20-30	बहुत कम	अत्यधिक तेज	उच्च	जैविक, बहुउद्देश्यीय
बरसीम	14-18	मध्यम	मध्यम	अच्छी	हरा चारा
नेपियर घास	8-12	मध्यम	तेज	मध्यम	भारी उत्पादन
सोयाबीन खली	40-45	अधिक	लागू नहीं	उच्च	महंगा
सरसों खली	30-35	अधिक	लागू नहीं	मध्यम	सीमित उपयोग
हरा चारा	8-15	मौसम पर निर्भर	सामान्य	अच्छी	पारंपरिक विकल्प

आवश्यक सामग्री अज़ोला की वैज्ञानिक खेती अत्यंत सरल है और इसे छोटे किसान भी आसानी से कर सकते हैं। सही जल स्तर, पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा नियमित देखभाल से कम समय में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

* छायादार स्थान * प्लास्टिक शीट या टैंक * गोबर * मिट्टी * सुपर फॉस्फेट * पानी * अज़ोला कल्चर

खेती की विधि× * गड्ढे का निर्माण: एक समान जल स्तर बनाए रखने हे समतल भूमि पर 5 म 4 म 0.3 मीटर आकार का गड्ढा तैयार करें। गड्ढे के कोनों को समान रखें ताकि पानी का स्तर संतुलित बना रहे।

* **प्लास्टिक शीट बिछाना:** गड्ढे के ऊपर मजबूत सिलपॉलिन (Silpaulin) शीट बिछाएँ। शीट गड्ढे से थोड़ी अधिक लंबी और चौड़ी होनी चाहिए। बाहरी किनारों को अच्छी तरह दबाकर या मिट्टी से स्थिर कर दें ताकि पानी बाहर न निकले।

* **मिट्टी की परत तैयार करना:** शीट के ऊपर 10-15 सेंटीमीटर साफ एवं नरम उपजाऊ मिट्टी समान रूप से फैलाएँ। मिट्टी जैविक पदार्थों से युक्त होनी चाहिए।

* **पानी भरना:** गड्ढे में लगभग तीन-चौथाई स्तर तक पानी भरें। पानी का स्तर नियमित रूप से बनाए रखें। अत्यधिक गहरा पानी अज़ोला की वृद्धि को प्रभावित कर सकता है।

* **गोबर घोल का प्रयोग:** लगभग 15 किलोग्राम किण्वित गाय के गोबर को 35 लीटर पानी में अच्छी तरह घोलें। इस मिश्रण को पूरे गड्ढे में समान रूप से फैलाएँ। यह अज़ोला को प्रारंभिक पोषण प्रदान करता है।

* **सुपर फॉस्फेट मिलाना:** लगभग 50 ग्राम सुपरफॉस्फेट को 10 लीटर पानी में घोलें। इस घोल को मिट्टी के ऊपर ज़िगज़ैग तरीके से डालें। इससे अज़ोला की वृद्धि तेज होती है।

* **अज़ोला कल्चर डालना:** लगभग 5 किलोग्राम ताजा एवं शुद्ध अज़ोला कल्चर गड्ढे में डालें। धीरे-धीरे ऊपर से पानी का हल्का छिड़काव करें ताकि अज़ोला पूरे क्षेत्र में फैल सके।

* **पोषक तत्वों का नियमित प्रबंधन:** अज़ोला की निरंतर वृद्धि बनाए रखने के लिए प्रत्येक 15 दिनों में निम्न सामग्री का प्रयोग करें- गाय का गोबर घोल, सुपरफॉस्फेट, आवश्यक खनिज मिश्रण यह प्रक्रिया पोषक तत्वों की कमी को रोकती है और उत्पादन बढ़ाती है।

* **रोग एवं कीट प्रबंधन:** यदि गड्ढा कीटों या रोगों से प्रभावित हो जाए तो उसे तुरंत साफ करें। संक्रमित अज़ोला को हटाकर नया एवं शुद्ध अज़ोला कल्चर डालें। पानी को दूषित होने से बचाएँ। सीधी धूप से बचाएँ।

***अज़ोला की कटाई:** 10-15 दिनों में कटाई शुरू की जा सकती है। प्रतिदिन 500 ग्राम से 1 किलो तक उत्पादन संभव है। कटाई के बाद साफ पानी से धोना चाहिए।

पशुओं के लिए अज़ोला के लाभ 1. गाय और भैंस को प्रतिदिन 1-2 किलो अज़ोला खिलाने से दूध उत्पादन में वृद्धि होती है। 2. इसमें मौजूद विटामिन और खनिज पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं, और पशुओं को स्वस्थ रखते हैं। 3. महंगे बाजारू चारे की तुलना में अज़ोला बहुत सस्ता पड़ता है। 4. बकरी, सूअर और पोल्ट्री में तेजी से वजन बढ़ाने में सहायक।

पोल्ट्री में अज़ोला का उपयोग मुर्गियों के लिए अज़ोला अत्यंत पौष्टिक आहार माना जाता है। कुल आहार का 5-10% तक खिलाया जा सकता है।

* अंडा उत्पादन में वृद्धि * अंडे की गुणवत्ता बेहतर * ब्रॉयलर वृद्धि तेज * फ़ीड लागत कम

मत्स्य पालन में अज़ोला का महत्व: यह मछलियों के लिए प्राकृतिक भोजन का कार्य करता है।

* तालाब की उर्वरता बढ़ाता है * मछलियों की वृद्धि तेज करता है * पानी की गुणवत्ता बनाए रखने में सहायक। धान की खेती में अज़ोला एक जैविक उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है। * नाइट्रोजन की पूर्ति * रासायनिक उर्वरक की आवश्यकता कम * मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है * खरपतवार नियंत्रण में सहायता

अज़ोला के पर्यावरणीय लाभ-1. जैविक खेती को बढ़ावा: यह रासायनिक उर्वरकों का प्राकृतिक विकल्प है। **2. कार्बन उत्सर्जन में कमी:** कम रासायनिक उपयोग से पर्यावरण सुरक्षित रहता है।**3. जल संरक्षण:** कम पानी में भी इसकी खेती संभव है। **4. मिट्टी स्वास्थ्य सुधार:** जैविक पदार्थ बढ़ाकर मिट्टी को उपजाऊ बनाता है।

अज़ोला पिन्नाटा वास्तव में किसानों के लिए प्रकृति का एक अनमोल उपहार है। यह कम लागत में उच्च पोषण प्रदान करता है, पशुओं की उत्पादकता बढ़ाता है, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करता है और पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज जब टिकाऊ कृषि और जैविक खेती की आवश्यकता बढ़ रही है, तब अज़ोला जैसे प्राकृतिक संसाधनों का महत्व और भी बढ़ जाता है। यदि किसान वैज्ञानिक तरीके से इसकी खेती करें, तो वे कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं और कृषि को अधिक लाभकारी एवं पर्यावरण-अनुकूल बना सकते हैं। इस प्रकार, अज़ोला केवल एक छोटा जलीय फर्न नहीं, बल्कि भविष्य की हरित कृषि क्रांति का महत्वपूर्ण आधार बन सकता है।

अज़ोला उत्पादन की अनुमानित लागत

मद	अनुमानित लागत (रु.)
प्लास्टिक शीट	800-1000
गोबर	स्थानीय उपलब्ध
सुपर फॉस्फेट	100 -200
अज़ोला कल्चर	100-200
कुल प्रारंभिक लागत	1000-1500

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
पंजाब

मानसून पूर्व टीकाकरण के लिए दिशा निर्देश

डॉ. सुष्मिता तिवारी सहायक प्रोफेसर
(खालसा कॉलेज ऑफ वेटरनरी साइंस) (पंजाब)

भारत में मानसून या वर्षा ऋतु जून से सितंबर तक रहती है और जुलाई के पहले सप्ताह तक पूरे देश में मानसून की बारिश होने लगती है।औसतन दक्षिण भारत में उत्तर भारत की तुलना में अधिक वर्षा होती है, साथ ही उत्तर-पूर्वी भारत में सबसे अधिक वर्षा होती है। उत्तर भारत से मानसून की बारिश अक्टूबर की शुरुआत में कम होने लगती है। मानसून की बारिश का पशु स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिससे किसानों और पशुपालकों की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

उच्च जोखिम वाले पशुः

1. युवा पशु
2. बीमार पशु/बीमारी का इतिहास रखने वाले पशु
3. गर्भवती पशु
4. दूध पिलाने वाली पशु
5. भारी पशु

जागरूकता और पशु चिकित्सा देखभाल

राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि पशु मालिकों/किसानों को मानसून के प्रतिकूल प्रभावों के बारे में जागरूक किया जाए और इस अवधि के दौरान निवारक उपायों, क्या करें और क्या न करें के बारे में व्यापक प्रचार किया जाए। किसानों और पशु मालिकों को मानसून से पहले पशुओं के कृमिनाशक और टीकाकरण के बारे में पहले से ही जागरूक किया जाना चाहिए।

पशु चिकित्सा संबंधी बुनियादी ढांचे और विशेषज्ञता को व्यवस्थित/उन्नत करने की आवश्यकता है, जिसमें निम्नलिखित शामिल हो सकते हैं:

* मानसून/बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में पशु चिकित्सकों और सहायक पशु चिकित्सकों की तैनाती
* पशु चिकित्सालयों में हर समय खनिज मिश्रण, जीवन रक्षक दवाएं, तरल पदार्थ और अन्य औषधियां और उपकरण उपलब्ध कराना
* मोबाइल पशु चिकित्सा इकाइयों को सक्रिय करना
* पशु और बाढ़/मानसून प्रबंधन के संबंध में जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करना
* मृत पशुओं के निपटान स्थलों की पहचान करना
* पशु क्षेत्र में मक्खियों और कीड़ों को नियंत्रित करने के लिए नियमित उपाय करना
* आवश्यकतानुसार अन्य हितधारकों/एजेंसियों के साथ समन्वय स्थापित करना
* मानसून के मौसम में तैयारी और पशु चिकित्सा देखभाल सुनिश्चित करने के लिए राज्य स्तर, जिला स्तर और ब्लॉक स्तर पर नोडल अधिकारी नियुक्त किए जाएंगे।

तैयारी

1. राज्य स्तरीय नियंत्रण कक्षः यह नियंत्रण कक्ष 24×7 कार्यरत रहेगा और पशु चिकित्सा देखभाल और बुनियादी ढांचे से संबंधित तैयारियों की निगरानी करेगा तथा शिकायतों और मुद्दों का समाधान करेगा। यह नियंत्रण कक्ष राज्य में कार्यरत सभी जिला नियंत्रण कक्षों के कामकाज की निगरानी करेगा।

2. जिला स्तरीय नियंत्रण कक्षः यह नियंत्रण कक्ष

मानसून के दौरान तैयारियों और पशु चिकित्सा देखभाल संबंधी कार्यों की रिपोर्ट राज्य नियंत्रण कक्ष को देगा तथा जिले में जनशक्ति, उपकरण, दवा, टीके आदि की समय पर आपूर्ति सुनिश्चित करेगा।

3. ब्लॉक स्तरीय नियंत्रण कक्षः नियंत्रण कक्ष ग्राम स्तरीय पशु चिकित्सालयों और औषधालयों को उपकरण, दवाइयां, टीके और स्थानीय स्तर पर मानव संसाधन की तैनाती के संबंध में समय पर सहायता सुनिश्चित करेगा।

4. पशु चिकित्सालयों और औषधालयों में जीवन रक्षक दवाओं, औषधियों, टीकों, उपभोग्य सामग्रियों, खनिज मिश्रणों, परजीवी रोधी दवाओं, टिक/मक्खी विकर्षकों आदि का पर्याप्त भंडार हर समय उपलब्ध होना चाहिए।

5. मानसून के दौरान पशुओं के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं और उनके उपचारों के बारे में किसानों को जागरूक करने और आवश्यक उपचार, टीकाकरण, कृमिनाशक दवाओं के लिए गांवों में नियमित पशु चिकित्सा शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए।

6. मोबाइल पशु चिकित्सा क्लीनिकों और विभाग के अन्य वाहनों की मानसून से पहले मरम्मत और रखरखाव किया जाना चाहिए और उन्हें हर समय परिचालन स्थिति में रखा जाना चाहिए।

7. पशु चिकित्सकों, अर्ध-पशु चिकित्सकों और सहायक कर्मचारियों की संपर्क जानकारी सहित सूची तैयार की जाएगी और अस्पताल/औषधालय स्तर पर प्रदर्शित की जाएगी ताकि किसान और पशु मालिक पहले से ही अधिकारियों से संपर्क कर सकें।

8. पशु आश्रय के लिए सुरक्षित क्षेत्रों को गैर-सरकारी संगठनों/नगरपालिकाओं/पंचायतों की सहायता से पहले से ही चिह्नित किया जाना चाहिए और पशु आश्रयों का निर्माण क्षेत्र की पशु आबादी और भौगोलिक स्थिति के आधार पर काफी पहले से किया जा सकता है।

9. जिला प्रशासन और अन्य हितधारकों की सहायता से चारा और पानी की उपलब्धता और आपूर्ति हर समय सुनिश्चित की जानी चाहिए। आपात स्थिति में चारे की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षित स्थानों पर चारा डिपो बनाए जा सकते हैं।

10. आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए जिला/ब्लॉक स्तर पर कर्मचारियों और पशु चिकित्सा सुविधाओं से लैस मोबाइल पशु चिकित्सा क्लीनिक उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

11. गौशालाओं/पशु फार्मों/शिविरों की देखभालः स्थानीय पशु चिकित्सालय/औषधालय गौशालाओं, पशु शिविरों और फार्मों में उचित पशु चिकित्सा देखभाल सुनिश्चित करेंगे, जिसमें उपचार, टीकाकरण, कृमिनाशक आदि शामिल हैं, और नियमित रूप से निरीक्षण करेंगे।

12. पशुओं की आवाजाही को कम से कम किया जाना चाहिए और आवाजाही की अनुमति देने से पहले पशुओं के स्वास्थ्य की जांच के लिए चेक पोस्ट स्थापित किए जाने चाहिए।

13. टीकाकरण और कृमिनाशकः मानसून के मौसम से पहले पशुओं के प्रमुख रोगों के कृमिनाशक और टीकाकरण के लिए टीकाकरण और कृमिनाशक कार्यक्रम पहले से तैयार किए जाने चाहिए। स्थानीय रोग की स्थिति के आधार पर आवश्यकता के अनुसार टीके का पर्याप्त स्टॉक सभी पशु चिकित्सालयों और औषधालयों में हर समय बनाए रखा जाना चाहिए।

14. मृत पशुओं का निपटानः मृत पशुओं का निपटान वैज्ञानिक तरीके से, गहरे दफन द्वारा किया जाना चाहिए और निपटान स्थलों की पहचान पहले से ही कर लेनी चाहिए। निपटान स्थलों को चिह्नित किया जाना चाहिए और सुरक्षा, प्रबंधन और कीटाणुशोधन के लिए नियमित रूप से उनकी जाँच की जानी चाहिए।

POP fusion
#Cornilicious
perfect snack
POP fusion
Classic Salted Butter Caramel Popcorn
POP fusion
Artisan Dark Chocolate Popcorn
POP fusion
Gourmet Makhana
Balances health and taste
Crunchy and munchy
www.popfusion.in

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

जून-2026

Participate into the Future of Agriculture & Agro Farming Technology

KISAN AGRI & AGRO TECH EXPO

ANDHRA PRADESH

The International B2B and B2C Exhibition and Conference on Agriculture & Horticulture Technologies

26-28 JUNE 2026

(10.30 am to 6.30 pm)

Vijayawada, Amaravathi, Andhra Pradesh

This Event Endorsement & Supported by*

* Confirmation awaited

- Farm Machinery
- Agriculture Inputs
- Cold Chain
- Processing Technologies
- Dairy, Poultry & Live Stock
- Organic Farming

Organised by:

SHINY TRADE EXHIBITIONS

Call/E-mail for more Information:

+91-9849583036, 9989113036

agri.agrotechexpo@gmail.com

Amaravati - The People's Capital of Andhra Pradesh, The Land of Infinite Opportunities

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)